उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

DIPLOMA IN MEDICAL ASTROLOJY

चिकित्सा ज्योतिष में डिप्लोमा

पाठ्यक्रम कोड़ –DMA-20

ग्रहोपचार के विविध आयाम

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी-263139

Toll Free : 1800 180 4025
Operator : 05946-286000
Admissions : 05946-286002
Book Distribution Unit : 05946-286001
Exam Section : 05946-286022
Fax : 05946-264232
Website : http://uou.ac.in

अध्ययन मण्डल

कुलपति (अध्यक्ष)
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी
प्रो0 देवीप्रसाद त्रिपाठी, कुलपति
उत्तराखण्ड संस्कृत विश्वविद्यालय, हरिद्वार
प्रो0 विनय कुमार पाण्डेय
अध्यक्ष, ज्योतिष विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय,वाराणसी
प्रो0 रामराज उपाध्याय
अध्यक्ष, पौरोहित्य विभाग,
श्री ला.बा.शा.क्रे.स.वि.वि. नई दिल्ली

प्रो0 एच0 पी0 शुक्ल (संयोजक)
निदेशक, मानविकी विद्याशाखा
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी
डॉ0 नन्दन कुमार तिवारी
असिस्टेन्ट प्रोफेसर, ज्योतिष विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी
डॉ0 प्रभाकर पुराहित
असिस्टेन्ट प्रोफेसर,ए.सी.ज्योतिष विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी

पाठ्यक्रम समन्वयक एवं सम्पादक
डॉ 0 प्रभाकर पुराहित
असिस्टेन्ट प्रोफेसर,ए.सी ज्योतिष विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

सह सम्पादन
डॉ 0 नीरज कुमार जोशी
असिस्टेन्ट प्रोफेसर,ए.सी. संस्कृत विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

इकाई लेखन
प्रोफे. श्याम देव मिश्र, विभागाध्यक्ष, ज्योतिष विभाग
केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय जयपुर परिसर, जयपुर राजस्थान
प्रोफे.अशोक थपलियाल, सह प्राध्यापक
वास्तु विभागाध्यक्ष, श्री लाल बहादुर शास्त्री केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय नई दिल्ली
प्रोफे. श्याम देव मिश्र, विभागाध्यक्ष, ज्योतिष विभाग
केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय जयपुर परिसर, जयपुर राजस्थान
डॉ. सुरेश शर्मा, सहायक प्रध्यापक
ज्योतिष विभाग, केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय,
रघुनाथ कीर्ति परिसर देवप्रयाग, पौड़ी गडवाल उत्तराखण्ड
डॉ0 प्रभाकर पुराहित, असिस्टेन्ट प्रोफेसर,ए.सी.ज्योतिष विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी
डॉ 0 नीरज कुमार जोशी, असिस्टेन्ट प्रोफेसर,ए.सी. संस्कृत विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

खण्ड एवं इकाई संख्या
प्रकाशक : उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी
कॉपीराइट @ उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय
पुस्तक का शीर्षक - **ग्रहोपचार के विविध आयाम**

मुद्रक : प्रकाशन वर्ष : 2022

नोट:-यह पुस्तक छात्र हित में शीघ्रता के कारण, प्रकाशित की गयी है। संशोधित व परिवर्द्धित संस्करण का प्रकाशन पाठ्यक्रम के पूर्ण लेखन व सम्पादन के पश्चात् किया जायेगा। इसका उपयोग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की लिखितअनुमति के बिना अन्यत्र किसी भी रूप में नहीं किया जा सकता।

अनुक्रम

खण्ड- त्रिविधकर्म जन्य फल विचार

इकाई-01 कर्मफल प्रकार

इकाई-02 कर्म फल विवेचन

इकाई-03 योगों पर आधारित फल

इकाई-04 दशा पर आधारित फल

इकाई-05 गोचर के अनुसार फल

खण्ड- मणि, मंत्र, रत्न , औषधी , दान स्ननादि रोगोपचार प्रविधि

इकाई-01 रत्न विज्ञान से ग्रह चिकित्सा

इकाई-02 मन्त्र अनुष्ठान विधि से रोग उपचार

इकाई-03 दान के माध्यम से रोग उपचार

इकाई- 04 रक्त एवं मूत्र जन्य व्याधियों के योग

इकाई - कर्मफल विचार

इकाई की संरचना-

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 ज्योतिष एवं कर्म सिद्धान्त
1.4 त्रिविध कर्मफल विचार
1.4.1 सञ्चित कर्म
1.4.2 प्रारब्ध कर्म
1.4.3 क्रियमाण कर्म
अभ्यास प्रश्न
1.5 कर्म एवं रोग
1.6 ज्योतिष में रोगविचार
1.7 ग्रहों के रोगकारकत्व में हेतु
1.7.1 रोग भाव का प्रतिनिधित्व
1.7.2 अष्टम एवं व्यय भाव का प्रतिनिधित्व
1.7.3 रोग (षष्ठ) भाव में स्थिति
1.7.4 लग्न में स्थिति या लग्नेश होना
1.7.5 नीच राशि, शत्रु राशि में स्थिति या निर्बलता
1.7.6 अवरोहीपन
1.7.7 क्रूरषष्ठ्यंश में स्थिति
1.7.8 पापग्रहों से प्रभावित होना
1.7.9 अरिष्ट (बालारिष्ट) कारकत्व या मारकत्व
अभ्यास प्रश्न
1.8 सारांश
1.9 कठिन शब्द
1.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.11 व्याख्यात्मक प्रश्न
1.12 सन्दर्भ सहायक ग्रन्थ सूची

1.1 प्रस्तावना

पूर्वपाठ के अध्ययन से आप जान चुके हैं कि न केवल इस जन्म अपितु जन्मान्तर में भी किये गये शुभाशुभ कर्मों का परिणाम हमें कभी न कभी अवश्य भोगना ही होगा। इन कर्मों का विपाक कब किस रूप में हमारे सामने उपस्थित होगा? यह ज्ञान केवल ज्योतिष शास्त्र के द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। भारतीय ज्योतिष शास्त्र ग्रह एवं नक्षत्रों के आधार पर ही कर्मफल का चिन्तन करता है। ग्रह एवं नक्षत्रों के प्रभाव को भली-भान्ति समझ कर आचार्यों द्वारा ज्योतिषशास्त्र के मानक ग्रन्थों में ग्रह योगों के फलों का वर्णन किया गया है। भारतीय ज्योतिष शास्त्र के प्रवर्तक आचार्यों के निजी अनुभव एवं शोधानुसन्धान से ही समस्त योगों एवं उनसे समुत्पन्न फलों का वर्णन मिलता है। फलित ज्योतिष के प्रमुख ग्रन्थ जैसे-बृहत्पाराशरहोराशास्त्र,फलदीपिका, लघुजातक, जातकालङ्कार, जैमिनीसूत्रम् इत्यादि ग्रन्थों में जातक की जन्मकुण्डली के आधार पर आधिभौतिक, आधिदैविक एवं आध्यात्मिक फल विवेचन में ग्रह योगादिक की चर्चा प्राप्त होती है, जिसमें मनुष्य के कर्म के आधार पर उत्पन्न होने वाले फलों पर भी दृष्टिपात किया गया है।

भारतीय परम्पराओं में पुनर्जन्म एवं कर्मवाद दोनों का विशेष स्थान है। जन्म-जन्मान्तर के कर्म एवं उनके फल के विषय में पौराणिक कथाओं में भी विशद वर्णन देखने को मिलता है। इन्हीं परम्पराओं एवं शास्त्र निर्दिष्ट कर्मों के प्रतिफल स्वरूप मानव जीवन में भोग्य कर्म परिलक्षित होते हैं। कर्मवाद का सम्बन्ध ज्योतिष, आयुर्वेद आदि में स्पष्ट रूप से देखने को भी मिलता है। यथा- यदुपचितमन्यजन्मनि तस्य कर्मणः पक्तिम्। इसी तरह आयुर्वेद में भी कर्माधारित साध्यासाध्य रोगों की उत्पत्ति का वर्णन भी मिलता है। सुश्रुत संहिता के इस वाक्य में कर्मजा व्याधयः केचिद् दोषजाः सन्ति चापरे कर्मजन्य व्याधियों के विषय में स्पष्ट प्रमाण मिलते हैं। प्रस्तुत पाठ में आप ज्योतिषीय दृष्टिकोण से कर्मफल विषय में विस्तृत अध्ययन कर सकेंगे।

1.2- उद्देश्य –

प्रस्तुत पाठ के अध्ययन से आप –

1. ज्योतिष एवं कर्म सिद्धान्त को समझ सकेंगे।
2. भारतीय दर्शन के अनुसार त्रिविध कर्मफल विचार को जान सकेंगे।
3. सञ्चित, प्रारब्ध एवं क्रियमाण कर्मफल पर विचार कर सकेंगे।
4. कर्मफल और रोग के सम्बन्ध पर अध्ययन कर सकेंगे।
5. ज्योतिषशास्त्र में रोगविचार पर अनुशीलन प्रस्तुत कर सकेंगे।
6. ग्रहों के फलविचार में रोगकारकत्व के कारणों की विवेचना कर सकेंगे।

1.3- ज्योतिष एवं कर्म सिद्धान्त

भारतीय ज्ञान परम्परा दर्शन एवं चिन्तन के आधार पर ही भारत को विश्वगुरु कहा गया है। ज्योतिष शास्त्र में भी दार्शनिक दृष्टि से देखा जाए तो ऋषियों की मेधा एवं दर्शन ही ज्ञान का मापदण्ड था। भारतीय दर्शन के अनुसार मानव आत्मा अजर –अमर एवं शरीर को तो एक दिन नष्ट होना है। केवल कर्म प्रभाव ही है, जो अजर-अमर आत्मा को विविध योनियों में जन्म लेने हेतु मजबूर करती है। केवल कर्मबन्धन के कारण ही स्वतन्त्र सत्ता रखने वाला आत्म तत्व दूसरे के अधीन एवं विनाशी प्रतीत होता है।

संचित-प्रारब्ध एवं क्रियमाण तीनों कर्म वैदिक दर्शन का प्रमुख चिन्तन रहा है। भारतीय ज्योतिष में भी चिन्तन के केन्द्रबिन्दु में इन्हीं कर्मों को रखा गया है। ज्योतिषशास्त्र काल की कलना करता है एवं कर्म काल के प्रत्येक क्षण अथवा मानक में कहीं न कहीं स्थिर रहता है। इसी के आधार पर समय और कर्म के सम्बन्ध के मध्य मानव उपस्थित रहता है। किसी समय में किया गया कर्म किसी अन्य दूसरे समय अन्तराल में मानव के शुभाशुभ फल की प्राप्ति कैसे करवाता है? यह सम्पूर्ण विषय ज्योतिषशास्त्र के अन्तर्गत आता है।

कर्म सिद्धान्त पर विचार करते हुए आचार्यों ने त्रिविध कर्मों पर विचार किया है। इसके लिए तीन भिन्न-भिन्न पद्धतियों का आश्रय लिया है। फलित शास्त्र में संचित कर्म के फल का विचार आधान कुण्डली एवं जन्मकुण्डली में बने योगों द्वारा, प्रारब्ध के फल का विचार दशाओं द्वारा तथा क्रियमाण के फल का विचार गोचर एवं प्रश्न कुण्डली द्वारा किया जाता है। इसलिए अन्धत्व, काणत्व, मूक्त्व, बधिरत्व आदि जन्मजात रोगों का विचार करते समय फलितशास्त्र के आचार्यों ने गर्भाधान एवं जन्मकुण्डली के योगों को विशेष महत्व दिया है। जन्मजात रोग दशा, अन्तर्दशा या प्रत्यन्तरदशा के विचार की अपेक्षा नहीं रखते। किन्तु वात, पित्त एवं कफ के विपर्यय द्वारा उत्पन्न रोग तथा शरीर के विविध अंगों में उत्पन्न होने वाले विकारों का विचार योगों के साथ दशा, अन्तर्दशा एवं प्रत्यन्तर दशा आदि की अपेक्षा रखता है। कारण यह है कि प्रारब्ध संचित का ही एक अंग है। अतः इसका विचार करते समय ज्योतिषशास्त्र के आचार्यों ने योग तथा दशा इन दोनों पद्धतियों का आश्रय लिया है। मिथ्या आहार-विहार आदि के द्वारा उत्पन्न रोगों को क्रियमाण का फल माना जाता है। किन्तु यह क्रियमाण भी संचित एवं प्रारब्ध के मिलाप से उत्पन्न होता है। अतः ऐसे रोगों का विचार करते समय योग एवं दशा के अलावा तात्कालिक गोचरीय ग्रह स्थिति का भी बारीकी से अध्ययन किया जाता है।

मनुष्य को जीवन में जो कुछ भी प्राप्त हो रहा है, वह कर्म के नियमों द्वारा सुनियोजित है। किए गए कर्म का फल अवश्य ही जातक के लिए भोग्य होता है, लेकिन कर्म को करने के लिए वह अपनी स्वतन्त्र इच्छा शक्ति का प्रयोग कर सकता है। लेकिन कर्म के अनिवार्य फल से बचने के लिए कोई मार्ग शास्त्रविहित नहीं है। स्पष्ट है कि मनुष्य अपने कर्मफल को कभी दूर नहीं कर सकता। किन्तु अपनी स्वतन्त्रबुद्धि द्वारा फल की अनुभूति में अंशात्मक तारतम्य उत्पन्न कर सकता है तथा सतत अभ्यास एवं प्रयास द्वारा भविष्य बना सकता है। इस प्रकार वह अपने भाग्य का सृजन करने में सक्षम हो सकता है। ज्योतिष शास्त्र प्रतिक्षण होने वाले क्रियमाण का विचार गम्भीरता से करता है। साथ ही संचित एवं प्रारब्ध का स्थान भी ज्योतिष शास्त्र में महत्त्वपूर्ण है।

1.4- त्रिविध कर्म फल विचार –

जैसा कि आप जानते हैं कि कर्मसिद्धान्त मुख्यरूप से तीन प्रकार के कर्मों की चर्चा करता है-1. संचित 2. प्रारब्ध 3. क्रियमाण। पूर्व जन्म के समस्त कर्म एवं वर्तमान क्षण तक किए गए समस्त कर्म संचित कर्म, संचित कर्म के जिस भाग का फल मिलना प्रारम्भ हो चुका हो वह प्रारब्ध, किए जा रहे अथवा भविष्य में किए जाने वाले समस्त कर्म क्रियमाण कहलाते हैं। दूसरे शब्दों में कहें तो आज से पूर्व अथवा पूर्वजन्म में किए गए कर्म सञ्चित कर्म, सञ्चित में से जो कर्मफल देने के लिए उपस्थित हो गए हों अर्थात् जन्म,आयु और अनुकूल या प्रतिकूल परिस्थिति के रूप में परिणत होने के लिए सामने आ गए हों वे प्रारब्ध कर्म कहलाते हैं। वर्तमान में किये जा रहे कर्म क्रियमाण होते हैं। जन्म-जन्मान्तर में किये गए कर्मों के फल अथवा वर्तमान समय तक

भोगे जा रहे कर्मों के फल संचित फल कहलाते हैं। इसी सन्दर्भ में कुछ संशय होना भी स्वभाविक है। यथा - एक जन्म के कर्म उसी जन्म में क्यों नहीं भोगे जा सकते? जन्म-जन्मान्तर के कर्मों के अनुसार किस प्रकार फल चिन्तन किया जा सकता है। वस्तुतः जन्म-जन्मान्तर के कर्मों के अनुसार ही उनके फल पर विचार किया जाना चाहिए। एक जन्म में समस्त कर्म फल को भोगना सम्भव नहीं है। क्योंकि इन कर्मों के परिणामस्वरूप मिलने वाले फल परस्पर विरोधी हैं। अतः कर्मों के क्रम से ही फल का विधान होता है। इस विषय में ज्योतिषशास्त्र ग्रह-नक्षत्रों के आधार पर कर्मफल विवेचित करता है।

1.4.1 सञ्चित कर्म

जैसा कि आप पढ चुके हैं कि मनुष्य द्वारा अनेक जन्मों में किए हुए जो कर्म (फल-अंश और संस्कार- अंश) अन्तः करण में संगृहीत रहते हैं वे सञ्चित कर्म कहलाते हैं। उनमें फल अंश से तो प्रारब्ध बनता है और संस्कार अंश से स्फुरणा होती रहती है। उन स्फुरणाओं में भी वर्तमान में किए गए जो नए क्रियमाण सञ्चित होते हैं प्रायः उनकी ही स्फुरणा होती है। इसी प्रकार जब नींद आती है तो उसमें भी स्फुरणा होती है। नींद में जाग्रत अवस्था के दब जाने के कारण सञ्चित की वह स्फुरणा स्वप्न रूप में दिखने लगती है जिसे स्वपनावस्था कहते हैं। संचित कर्म के फल का विचार आधान कुण्डली एवं जन्मकुण्डली में बने योगों द्वारा किया जाता है। अन्धत्व, काणत्व, मूक्त्व, बधिरत्व आदि जन्मजात रोगों का विचार इसी सञ्चित कर्मविपाक को प्रस्तुत करता है।

1.4.2 प्रारब्ध कर्म

आप जानते ही हैं कि सञ्चित में जो कर्म फल देने के लिए सम्मुख होते हैं, उन कर्मों को प्रारब्ध कर्म कहते हैं। प्रकर्षेण आरब्धः प्रारब्धः। प्रारब्ध कर्मों का फल तो अनुकूल या प्रतिकूल परिस्थिति के रूप में सामने आता है, परन्तु उन प्रारब्ध कर्मों को भोगने के लिए प्राणियों की प्रवृत्ति तीन प्रकार से होती है- 1. स्वेच्छापूर्वक 2.अनिच्छा (दैवेच्छा) 3.परेच्छापूर्वक।

प्रारब्ध कर्म से मिलने वाले फल के दो भेद होते हैं – प्राप्त फल एवं अप्राप्त फल। अभी प्राणियों के सामने जो अनुकूल या प्रतिकूल परिस्थित आ रही है वह प्राप्त फल है। इसी जन्म में जो अनुकूल या प्रतिकूल परिस्थिति भविष्य में आने वाली है वह अप्राप्त फल है। क्रियमाण कर्मों का जो फल-अंश सञ्चित में जमा रहता है वही प्रारब्ध बनकर अनुकूल या प्रतिकूल अथवा मिश्रित परिस्थिति के रूप में मनुष्य के सामने आता है। अतः जब तक सञ्चित रहते हैं तब तक प्रारब्ध बनता ही रहता है और प्रारब्ध परिस्थिति के रूप में परिणत होता ही रहता है। यह परिस्थिति मनुष्य को सुखी-दुःखी होने के लिए बाध्य नहीं करती। सुखी-दुःखी होने में मुख्य कारण परिस्थिति के साथ सम्बन्ध जोड़ना मुख्य है। सम्बन्ध जोड़ने में मनुष्य सदैव स्वाधीन है। प्रारब्ध के फल की प्राप्ति काल को जानने के लिए दशा, अन्तर्दशा एवं प्रत्यन्तर दशा आदि का विचार ज्योतिष शास्त्र करता है। दशायें भी कई प्रकार की कही गयी हैं जिनमें विंशोत्तरी, अष्टोत्तरी, योगिनी, चरदशा इत्यादि हैं परन्तु इनमें विंशोत्तरी दशा का प्राधान्य ऋषि पाराशर ने स्वीकार किया है। यथा-

फलानि नक्षत्रदशा प्रकारेण विवृण्महे।
दशा विंशोत्तरी चात्र ग्राह्या नाष्टोत्तरी मता।।

सम्भवतः इसी कारण दैवज्ञसमाज में विंशोत्तरी दशा, अन्तर्दशादि का अधिक सम्मान है।

1.4.3 क्रियमाण कर्म-

आप पहले ही अध्ययन कर चुके हैं कि क्रियमाण कर्म दो प्रकार के होते हैं। शुभ और अशुभ। जो कर्म शास्त्रानुसार विधि-विधान से किए जाते हैं, वे शुभ कर्म कहलाते हैं। काम- क्रोध- लोभ–आसक्ति आदि को लेकर जो शास्त्र निषिद्ध कर्म किए जाते हैं वे अशुभ कर्म कहलाते हैं। शुभ तथा अशुभ प्रत्येक क्रियमाण कर्म का एक तो फल-अंश बन जाता है और एक संस्कार अंश। ये दोनों भिन्न-भिन्न हैं।

इसके दो भेद हैं-दृष्ट और अदृष्ट। इनमें से दृष्ट के भी दो भेद हैं- तात्कालिक एवं कालान्तर। जैसे भोजन करते समय रस की अनुभूति होना, प्रसन्नता होना एवं तृप्ति होना- यह दृष्ट फल का तात्कालिक उदाहरण है। कुपथ्य के कारण उदर में होने वाले रोग जैसे- उदर में जलन, दुःख इत्यादि कालान्तरित दृष्ट फल होता है।

इसी प्रकार अदृष्ट के भी दो भेद होते हैं लौकिक एवं पारलौकिक। जैसे यज्ञ- दान- तप- तीर्थ- व्रत- मन्त्रजप आदि का विधान शास्त्रविहित किया जाए तो इसी जन्म में पुत्र, धन, यश, प्रतिष्ठा आदि के रूप में इसका फल मिलने की सम्भावना रहती है, जिसे लौकिक फल के अन्तर्गत माना जाता है। शास्त्रनिषिद्ध कर्मों के विधान से रोग, निर्धनता आदि प्रतिकूल फल मिलने की सम्भावना भी लौकिक फल के अन्तर्गत ही मानी जाती है।

इसी प्रकार इन कर्मों का फल मृत्यु के पश्चात् मिलकर स्वर्ग की प्राप्ति करवाए तो इसे पारलौकिक फल की श्रेणी में गिना जाता है। इसी प्रकार अनैतिक कार्य करना एवं तत् फलस्वरूप दण्ड की प्राप्ति होना अदृष्ट लौकिक फल है। मृत्यु के पश्चात् यदि इन कर्मों के फल की प्राप्ति होती है तो नरकादि गमन अदृष्ट पारलौकिक फल की श्रेणी के फल कहे गए हैं। यहाँ दृष्ट का कालान्तरित फल एवं अदृष्ट का लौकिक फल दोनों एक समान दिखते हैं लेकिन दोनों में अन्तर है। जो कालान्तरिक फल है वह सीधे मिलता है, प्रारब्ध बनकर नहीं। परन्तु जो लौकिक फल है वह प्रारब्ध बनकर ही मिलता है।

क्रियमाण कर्म के संस्कार अंश के भी दो भेद हैं। शुद्ध अथवा पवित्र संस्कार एवं अशुद्ध अथवा अपवित्र संस्कार। शास्त्रविहित कर्म करने से जो संस्कार उत्पन्न होते हैं वे शुद्ध एवं पवित्र कहलाते हैं। इन विभिन्न स्वभावों के कारण ही उनके द्वारा विभिन्न कर्म होते हैं पर वे कर्म दोषी नहीं होते, प्रत्युत सर्वथा शुद्ध होते हैं। शास्त्रनिषिद्ध, नीति एवं लोकमर्यादा से विरुद्ध कर्म करने से जो संस्कार उत्पन्न होते हैं वे अशुद्ध अथवा अपवित्र संस्कार कहलाते हैं। इन दोनों शुद्ध एवं अशुद्ध संस्कारों से स्वभाव एवं प्रकृति जन्म लेती है। संस्कार अंश से जो स्वभाव बनता है, वह प्रबल रहता है।

ज्योतिषशास्त्र में क्रियमाण के फल का विचार गोचर एवं प्रश्न कुण्डली द्वारा किया जाता है। इसमें अष्टकविचार भी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्बहण करता है।

अभ्यास प्रश्न

1- स्वतन्त्र सत्ता रखने वाला आत्म तत्व किस कारण से दूसरे के अधीन एवं विनाशी प्रतीत होता है?

2- फलित शास्त्र में संचित कर्म के फल का विचार किससे किया जाता है?

3- प्रारब्ध किस कर्म का एक अंग है?

4- जो कर्म जन्म, आयु और अनुकूल या प्रतिकूल परिस्थिति के रूप में परिणत होने के लिए सामने आ गए हों वे क्या कहलाते हैं?

5- ज्योतिषशास्त्र किनके आधार पर कर्मफल विवेचित करता है?

6- प्रारब्ध कर्मों को भोगने के लिए प्राणियों की प्रवृत्ति कितने प्रकार से होती है?

7- प्रारब्ध के फल की प्राप्ति काल को जानने के लिए ज्योतिष शास्त्र किस का विचार करता है?

8- नक्षत्र दशाओं में किस दशा का प्राधान्य ऋषि पाराशर ने स्वीकार किया है?

9- कुपथ्य के कारण उदर में होने वाले रोग किस कालान्तरित दृष्ट फल के उदाहरण हैं ?

10- शास्त्रनिषिद्ध कर्मों के विधान से रोग, निर्धनता आदि प्रतिकूल फल मिलने की सम्भावना किस फल के अन्तर्गत ही मानी जाती है?

11- नरकादि गमन किस श्रेणी के फल में माने जाते हैं?

12- शुद्ध एवं पवित्र संस्कार किस कर्म से उत्पन्न होते हैं?

13- क्रियमाण के फल का विचार किसके द्वारा किया जाता है?

14- अष्टकविचार किस कर्मफल निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्बहण करता है?

1.5. कर्म एवं रोग

कर्म एवं रोग के विषय में सैद्धान्तिक एवं व्यावारिक दोनों पक्षों को देखना अति महत्त्वपूर्ण हो जाता है। जब ज्योतिषशास्त्र के अन्तर्गत कर्म सिद्धान्त एवं रोगों के विषय में विश्लेषण किया जाता है तो सर्वप्रथम प्रारब्ध का ही चिन्तन किया जाता है। प्रारब्ध ही अनुकूल एवं प्रतिकूल फल का निर्धारण करता है, जैसा कि पूर्व पाठ में आपने अध्ययन किया है। ज्योतिषशास्त्र होरा स्कन्ध में प्रारब्ध के आधार पर ही उत्पन्न जन्मजात अथवा दशावशात् रोग प्राप्ति का वर्णन प्राप्त होता है। यदुपचिन्तमन्यजन्मनि शुभाशुभं तस्य कर्मणः पक्तिम् इसमें पङ्क्ति शब्द से स्पष्ट है कि पूर्वनिर्धारित कर्म से ही फल उद्घाटित होते हैं। इन्हीं का वर्णन ज्योतिषशास्त्र दीपक की भान्ति दृष्टिगम्य बनाता है। ज्योतिषशास्त्र में ग्रहों की प्रकृति (कफ-वात-पित्त) के अनुसार फल का वर्णन प्राप्त होता है। ग्रह सत्व, रज, एवं तम गुण वशात् फल देने में सक्षम होते हैं। साथ ही ग्रहों की नैसर्गिक एवं तात्कालिक परिस्थिति का भी विचार किया जाता है। जो अलग-अलग अवस्थाओं एवं कालान्तर में फल को देते हैं।

मानव शरीर में भी इन तीनों गुणों की न्यूनाधिक मात्रा रहती है। इन्हीं के साथ ग्रहों के संयोगवशात् शरीर में परिवर्तन, रोगादि का प्रवेश भी होता है। जिनमें से कुछ रोग जन्म से अथवा कुछ आयु के विभिन्न वर्गों में प्राप्त होते हैं, जिनमें ग्रहों की दशाओं की मुख्य भूमिका रहती है। इन्हीं गुणों एवं प्रकृति को शरीर के साथ स्पष्ट करते हुए गीता में भी कर्म करने की प्रवृत्ति वर्णित है-

सदृशं चेष्टते स्वस्याः प्रकृतेर्ज्ञानवानपि।
प्रकृतिं यान्ति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति।

इसका अर्थ है कि सभी प्राणी प्रकृति को प्राप्त होते हैं अर्थात् अपने स्वभाव के परवश हुए कर्म करते हैं। ज्ञानवान् भी अपनी प्रकृति के अनुसार ही चेष्टा करता है। फिर इसमें किसी का निग्रह (हठ) क्या करेगा?

उक्त श्लोक में प्रकृति एवं गुण के अनुरूप कार्य करने की प्रवृत्ति को स्पष्ट किया गया है। जिसमें कर्माधारित फल भी स्पष्ट हो जाता है। इन्हीं कर्मों के आधार पर ज्योतिषशास्त्र में योगों के आधार पर उत्पन्न रोगों का वर्णन प्राप्त होता है। ज्योतिष शास्त्र के विविध ग्रन्थों में वर्णित योगों से कर्मसिद्धान्त के प्रारब्ध का स्वरूप देखने को मिलता है।

1.6 ज्योतिष में रोग विचार

ज्योतिषशास्त्र के ग्रन्थों में रोगों को दो प्रकार का माना गया है। (क) सहज एवं (ख) आगन्तुक।

(क) सहज रोग - सहज रोगों को जन्मजात रोग भी कहते हैं तथा जन्म के बाद होने वाले रोगों को आगन्तुक रोग कहते हैं। सहज रोगों के दो भेद होते हैं-१-- शारीरिक तथा २-मानसिक। लुलापन, लंगड़ापन, कुबड़ापन, अन्धत्व, मूकत्व, बधिरत्व, नपुंसकत्व. हीनांग एवं अधिकांग आदि कुछ शारीरिक रोग जन्मजात होते हैं। जड़ता, उन्माद एवं पागलपन आदि कुछ मानसिक रोग भी जन्मजात होते हैं। इस प्रकार के समस्त जन्मजात रोगों को महज रोग कहा जाता है।

जन्मजात रोगों का कारण जातक का पूर्वजन्मकृत कर्म एवं माता-पिता द्वारा किया गया कर्म माना गया है। अतः ज्योतिष शास्त्र में जन्मजात रोगों का विचार गर्भाधान कुण्डली एवं जन्मकुण्डली से किया जाता है। उन कुण्डलियों में अष्टम स्थान, अष्टमेश ग्रह, अष्टम स्थान में स्थित ग्रह, अष्टम स्थान को देखने वाला ग्रह एवं अन्य योगों के द्वारा जन्मजात शारीरिक रोगों का विचार होता है। जिन योगों में अष्टमेश एवं अष्टम स्थान के साथ स्पष्ट सम्बन्ध दिखलाई दे, उन योगों के प्रभाववश होने वाले शारीरिक रोग असाध्य होते हैं तथा जिन योगों का अष्टमेश या अष्टम स्थान के साथ कोई सम्बन्ध न हो वे शारीरिक रोग साध्य माने गये हैं। ऐसे रोग चिकित्सा द्वारा ठीक हो जाते हैं किन्तु जन्मजात रोगों में हीनांग योग द्वारा उत्पन्न होने वाले रोग असाध्य ही माने गये हैं। अतः लूलापन, लंगड़ापन, अन्धत्व, व्रणत्व, मूकत्व एवं बधिरत्व आदि रोगों के साध्यासाध्यत्व का उक्त रीति से विचार नहीं करना चाहिए।

जन्मजात मानसिक रोगों का विचार उक्त कुण्डलियों में अष्टमेश एवं चतुर्थेश की युति एवं दृष्टि के आधार पर उन रोगों के योगों के द्वारा करना चाहिए। मानसिक रोगों के जिन योगों में अष्टमेश एवं चतुर्थेश की युति या दृष्टि प्रत्यक्षतः दिखलायी दे, वे मानसिक रोग असाध्य होते हैं तथा जिन योगों में अष्टमेश एवं चतुर्थेश की दृष्टि या युति न हो वे मानसिक रोग जन्मजात होने पर भी चिकित्सा द्वारा साध्य होते हैं।

(ख) आगन्तुक रोग - आगन्तुक रोग भी दो प्रकार के होते हैं- १- दृष्टनिमित्तजन्य एवं २ अदृष्ट निमित्तजन्य। शाप, अभिचार, घात, संसर्ग, महामारी एवं दुर्घटना आदि प्रत्यक्ष घटनाओ द्वारा उत्पन्न होने वाले रोगों को दृष्टनिमित्तजन्य रोग कहते हैं तथा बाधक ग्रहयोगों के द्वारा उत्पन्न रोग अदृष्टनिमित्तजन्य रोग कहलाते हैं। इन रोगों का कारण पूर्वार्जित कर्म माना गया है। दृष्टनिमितजन्य रोगों का विचार जन्मकुण्डली के षष्ठ स्थान, षष्ठेश ग्रह, षष्ठ स्थान में स्थित ग्रह तथा षष्ठ स्थान को देखने वाला ग्रह इन चारों से करना चाहिये।

जिन रोगों का कारण प्रत्यक्ष रूप से दिखलाई नहीं देता, उन रोगों को अदृष्टनिमित्तजन्य रोग कहते हैं। ज्वर, अतिसार आदि समस्त रोग इस वर्ग में आते हैं। इस प्रकार के रोगों के कारण आचार्यों ने बाधक ग्रहों का प्रभाव माना है। सूर्यादि ग्रह मनुष्य के शरीर के समस्त अंग, धातु, वात पित्त एवं कफ आदि दोष, आन्तरिक संरचना एवं संचालन प्रक्रिया का प्रतिनिधित्व करते हैं। कुण्डली में जो ग्रह बाधक होता है, वह शरीर के जिस अंग, धातु या दोष आदि का प्रतिनिधित्व करता है, उसमें बाधा या विकार की सूचना देता है और इस प्रकार के विकारों से उक्त रोगों की उत्पत्ति होती है। अतः अदृष्टनिमित्तजन्य रोगों की उत्पत्ति का मुख्य कारण बाधक ग्रहों को माना गया है।

ज्योतिष शास्त्र की मान्यतानुसार रोग का विचार करने में ये बातें भी अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं- षष्ठ (रोग) भाव, षष्ठ भाव में स्थित ग्रह, व्यय तथा अष्टम स्थान में स्थित ग्रह और इन भावों के स्वामी ग्रह, षष्ठेश (रोगेश ग्रह), षष्ठेश (रोगेश) से युक्त या दृष्ट ग्रह एवं भाव। इसके अतिरिक्त

पाप-प्रभावयुक्त राशियों एवं भाव में स्थित ग्रह, नीचराशिगत ग्रह, अस्तंगत ग्रह तथा निर्बल ग्रह, लग्न और लग्नेश ग्रह, अवरोही ग्रह, क्रूरषष्ठ्यंशगत ग्रह, मारक ग्रह एवं बालारिष्टकारक ग्रह भी रोगों के कारक माने गये हैं। इन ग्रहों के शुभाशुभत्व एवं बलाबलत्व के आधार पर रोग तथा रोगी की चर्या, प्रभाव और कालावधि का निर्धारण किया जाता है। साथ में रोग के साध्यत्व असाध्यत्व का निर्णय भी किया जाता है।

ग्रह फलाफल के नियामक नहीं है, किन्तु सूचक है अर्थात् ग्रह किसी को सुख दुःख नहीं देते हैं, अपितु आने वाले सुख-दुःख की सूचना देते हैं। वस्तुतः ग्रह अपनी गति स्थिति एवं युति के द्वारा यह व्यक्त करते हैं कि उनकी रश्मियों या रश्मि-विश्लेषण का प्रभाव किस प्रकार वातावरण तैयार कर रहा है ? यद्यपि ग्रह-रश्मियों का हम पर सतत एवं सुनिश्चित प्रभाव पड़ता है, पर यह स्मरण रखने योग्य बात है कि हम इस प्रभाव के हेतुभूत भौतिक एवं मनोवैज्ञानिक कारणों में विपर्यय कर इसे अन्यथा सिद्ध कर सकते हैं। ग्रह चिकित्सा या दूषित फल को दूर करने के सभी उपाय इस सिद्धान्त पर आधारित है।

1.7 ग्रहों के रोगकारकत्व में हेतु

ज्योतिषशास्त्र में ग्रहों के रोगकारकत्व में वाले निम्नलिखित हेतु बतलाये गये हैं -

1- रोग भाव का प्रतिनिधित्व।
2- अष्टम एवं व्यय भाव का प्रतिनिधित्व।
3- रोग भाव में स्थिति।
4- लग्न में स्थिति या लग्नेश होना।
5- नीचराशि, शत्रु राशि में स्थिति या निर्बलता।
6- अवरोहीपन।
7- क्रूरषष्ठ्यंश में स्थिति।
8- पाप ग्रहों से प्रभावित होना।
9- अरिष्टकारकत्व या मारकत्व।

1.7.1 रोग भाव का प्रतिनिधित्व –

षष्ठ स्थान तो रोग का स्थान ही है, अतः षष्ठेश रोगप्रद होता है। ग्रह छठें स्थान में स्थित होकर स्वयं की प्रकृति एवं कारकत्व के अनुसार रोग देता है। जैसे- षष्ठ स्थान में स्थित चन्द्रमा कफ विकार, शीतज्वर एवं नेत्र विकार करता है। किन्तु यदि षष्ठेश का किसी अन्य भाव से स्थान परिवर्तन योग हो तो उस भाव से सम्बद्ध व्यक्ति या अंगको रोग देगा। जैसे षष्ठेश का चतुर्थेश से स्थान परिवर्तन होने पर माता को रोग दे सकता है और अष्टमेश से स्थान परिवर्तन योग कर नेत्र पीड़ा या गुप्तांग में रोग उत्पन्न कर सकता है। छठे या आठवें स्थान में स्थित षष्ठेश विभिन्न ग्रहों से युक्त होकर विभिन्न स्थानों में व्रण या रोग उत्पन्न करता है। यथा-सूर्य से युक्त हो तो शिर पर, चन्द्र युक्त हो तो मुख में, मंगल से युक्त होकर कण्ठ में, बुध से युक्त हो नाभि प्रदेश में, गुरु से युक्त होकर नासिका में, शुक्र से युक्त होकर नेत्र में, शनि से युक्त होकर पैर में तथा राहु या केतु से युक्त होकर पेट में व्रण या रोग उत्पन्न करता है। यह अपनी दृष्टि द्वारा भी इसी प्रकार रोगोत्पत्ति में सहायक होता है।

षष्ठभाव रोग भाव है। इस भाव पर पाप-प्रभाव रोग उत्पन्न नहीं होने देता। किन्तु शुभ प्रभाव रोगोत्पत्ति में सहज वृद्धि कारक माना गया है। आचार्य वराहमिहिर के सुपुत्र पृथुयशा ने भाव

से फल ज्ञान के प्रकार का विश्लेषण करते हुए कहा है कि "जो भाव शुभग्रह या अपने स्वामी से दृष्ट या युत हो, वह अपने प्राकृतिक फल की वृद्धि करता है, किन्तु वही भाव पाप-प्रभाववश प्राकृतिक फल की हानि करता है। क्योंकि छठाँ भाव रोग भाव है और इसका प्राकृतिक फल रोगोत्पत्ति एवं रोगवृद्धि है। अतः शुभ प्रभाव इस प्राकृतिक फल को वृद्धिगत कर रोगोत्पत्ति में सहायक माना गया है।

इस भाव में स्थित बलवान् ग्रह ही रोगोत्पत्ति कारक होते हैं, निर्बल नहीं। | शुभाशुभ फल देने की क्षमता बलवान् ग्रह में ही होती है। इसी प्रकार छठे भाव में नीच राशि एवं शत्रुराशि गत ग्रह रोग विनाशक माने गये हैं, जब कि उच्च राशि एवं मित्र राशिगत ग्रह रोगकर्ता होते हैं। अनेक व्यक्तियों की कुण्डलियों में देखा गया है कि छठे भाव में कर्क राशिगत मंगल होने पर वे स्वस्थ, साहसी एवं स्वाभिमानी होते हैं। वस्तुतः इस सिद्धान्त की पृष्ठभूमि में भी ज्योतिष का यह सर्वमान्य सिद्धान्त है कि नीच और शत्रु राशिगत ग्रह भाव के नैसर्गिक फल का विनाश करता है, किन्तु मूलत्रिकोण, उच्च एवं मित्र राशि गत ग्रह उसके फल में परम वृद्धि करता है। इस भाव में मेषादि राशियाँ पाप-प्रभाववश इस प्रकार से रोगों को उत्पन्न करती हैं -

राशियां	रोग
मेष	पित्तज्वर, उष्णता, तृष्णा, दाह, व्रण, स्फोट, अग्निभय, लू लगना एवं जठराग्नि सम्बन्धी रोग
वृषभ	त्रिदोषजन्य रोग, सन्निपात, नपुंसकता एवं अग्निदाह (जलना)
मिथुन	श्वास, कास, दमा, उष्णशूल (पित्तजन्य तीव्रदर्द) एवं कामुकता |
कर्क	पागलपन, उन्माद, वातरोग एवं अरुचि।
सिंह	ज्वर, स्फोट, शिर-शूल एवं स्नायविक तनाव।
कन्या	स्त्रियों के कारण गुप्त रोग
तुला	धीज्वर, सन्निपात, प्रमेह, शरीर का सन्तुलन न बनने के कारण गिरना आदि।
वृश्चिक	प्लीहा, तिल्ली, संग्रहणी एवं पाण्डु रोग।
धनु	आन्त्र विकार, पेड़ से गिरना, पैर एवं कमर में चोट
मकर	शूल (पेटदर्द-एपिण्डीसाइटिज) पेट में फोडा, अरुचि, मन्दाग्नि, बुद्धिश्रम एवं स्नायविक रोग
कुम्भ	खांसी, ज्वर, (कफज), प्रतिश्याय (इन्फ्लूएंजा) एवं क्षय |
मीन	जलोदर, कफ एवं शीत विकार।

1.7.2 अष्टम एवं व्यय भाव का प्रतिनिधित्व-

अष्टम एवं व्यय स्थान रोग कारक स्थान है, अतः इनके स्वामी ग्रह भी रोग-कारक होते हैं। यहाँ इतना और स्मरण रखना चाहिए कि कदाचित् इन स्थानों के स्वामी मंगल या शनि हो तो वे और अधिक शक्ति प्राप्त कर जिस भाव-राशि से अपना युति या दृष्टि द्वारा प्रभाव का विनियोग करेंगे,उस राशि भाव सम्बन्धी अंग में रोगोत्पन्न कर देंगे। केवल अष्टमेश या द्वादशेश का प्रभाव रोग के आधारभूत कारणों को ही उत्पन्न करने का कुछ प्रयास कर सकता है, जब तक कि उनमें किसी प्रकार का प्रभाव निहित न हो चुका हो। महर्षि पाराशर के अनुसार व्ययेश त्रिक (6,8,12) भाव का स्वामी होने पर शुभफलदायक हो जाता है। सूर्य, चन्द्र एवं लग्नेश अष्टम भाव के स्वामी होने पर भी अशुभ फलदाता नहीं होते। यदि सूर्य और चन्द्रमा व्ययेश होकर त्रिकोणेश से सम्बन्ध करें, तो वे अशुभ फल नहीं देते। अतः अष्टमेश एवं व्ययेश में रोग देने की क्षमता का निश्चय करते समय यह सब ध्यान में रखना चाहिए।

अष्टम भाव, मृत्यु या नाश भाव होने के कारण स्वास्थ्य या देहसुख का ह्रास करने वाला होता है। यह भाग्य स्थान का व्यय स्थान होने के कारण संचित या प्रारब्ध कर्म की अशुभता का सूचक है। व्यय स्थान लग्न से १२ वाँ भाव होने के कारण स्वास्थ्य एवं शरीर के ह्रास का प्रतिनिधि-स्थान है। अतः व्यय एवं अष्टम स्थान रोग के कारक माने गये हैं। इन दोनों भावों में स्थित ग्रह अपनी राशि, भाव एवं कारकत्व के अनुसार अशुभ फलदायक होकर रोगोत्पत्ति करते हैं। सभी आचार्यों ने यह नियम स्थिर किया है कि '६वें एवं ८वें भाव में स्थित सभी ग्रह नेष्ट होते हैं। जातक पारिजात में शरीर-सुख के विचार प्रसंग में कहा गया है कि - क्रूर ग्रह से लग्नेश ६वें, 8वें अथवा १२ वें स्थान में हो तो शरीर-सुख की हानि होती है। अतः स्पष्ट है कि स्वास्थ्य एवं शरीर-सुख का प्रतिनिधि ग्रह या लग्नेश जब ८ वें या १२ वें स्थान में स्थित होगा, तो अवश्य देह-सुख का नाश करेगा। यहाँ 'क्रूर' ग्रह केवल इस योग को बल दे रहा है, क्योंकि शुभयुत या शुभ दृष्ट होने पर कोई रोगविषयक प्रबल योग नहीं बन सकता। उदाहरण के लिए 6वें अथवा १२ वें भाव में स्थित चन्द्रमा शरीर की दुर्बलता, अनेक रोग, मन में व्याकुलता, उद्वेग एवं नेत्रपीड़ा करता है। इन्हीं स्थानों में स्थित सूर्य नेत्रकारक होने के कारण नेत्र पीडा करता है।

1.7.3. रोग (षष्ठ) भाव में स्थिति –

आप जानते ही हैं कि छठें (रोग) भाव में स्थित ग्रह भी रोग कारक होता है। यह जिस राशि एवं भाव का स्वामी हो या कारक हो, वह राशि और भाव काल पुरुष के जिस अग में पड़ती हो, अथवा किस अंग आदि का कारक हो, उस अंग में रोगोत्पत्ति करता है। किन्तु स्मरण रखना चाहिए कि ऐसा ग्रह जब पाप-प्रभाव में हो तभी रोग उत्पन्न कर सकता है. शुभ प्रभाव होने पर नहीं। किसी भाव का स्वामी ६, ८ एवं १२ वें भाव में स्थित होकर उस भाव के शुभ फल को नष्ट कर देता है। तात्पर्य यह है कि छठा भाव शारीरिक प्रगति, उन्नति एवं पुष्टि सबको रोकता है। अतः यह दौर्बल्यवश रोग कारक हो जाता है। जैसे कि पंचम भाव का स्वामी छठें भाव में होकर पुत्रकारक गुरु एवं सूर्य से युक्त हो तो उसकी पत्नी को गर्भस्राव रोग होता है अथवा मृत सन्तान होती है। आशय स्पष्ट है कि सन्तति भाव का स्वामी एवं कारक ये दोनों जब छठे भाव में रहेंगे तब गर्भ की पुष्टि या वृद्धि सम्भव नहीं है, अपितु उपर्युक्त सिद्धान्तानुसार पंचम भाव का शुभ फल नष्ट होने से गर्भस्राव या गर्भस्थ शिशु की मुत्यु होना स्वाभाविक है।

1.7.4. लग्न में स्थिति या लग्नेश होना-

ज्योतिष शास्त्र के आचार्यों ने लग्न को सामूहिक रूप से शरीर माना है। अतः लग्न एवं लग्नेश पर पाप प्रभाव शरीर एवं स्वास्थ्य के लिए हितकर नहीं होता। जब कोई ग्रह लग्न में स्थित हो जाता है तो वह अपनी अस्थि आदि धातुओं का विशेष या पूर्णरूपेण प्रतिनिधित्व करता है। जैसे लग्नस्थ सूर्य अस्थि का, चन्द्र रक्त का, मंगल मांस, बुध त्वचा,गुरु वसा (चर्बी), शुक्र वीर्य तथा शनि स्नायु का विशेष प्रतिनिधित्व करता है

जब कोई ग्रह लग्न में स्थित हो या लग्नेश हो तो वह शरीर के उन तत्वों का विशेष प्रतिनिधित्व करता है, जो शरीर में अधिक व्याप्त हैं। उदाहरणार्थ, सूर्य, आँख, हृदय एवं हड्डी इन सब का कारक या प्रतिनिधि है। यह लग्न में स्थिति या लग्नेश होकर हड्डी का विशेष प्रतिनिधित्व करेगा क्योंकि शरीर मे हड्डी, आँख एवं हृदय की अपेक्षा अधिक व्यापक है। इसी प्रकार चन्द्रमा मन फेफड़े एवं रक्त इन सबका प्रतिनिधि है परन्तु यह लग्न में स्थिति लग्नेश होने पर रक्त का विशेष प्रतिनिधि होगा। मंगल मांस एवं मज्जा (अस्थिसार) का प्रतिनिधि है परन्तु मांस का विशेष प्रतिनिधि, बुध वाक् शक्ति, श्रवण शक्ति एवं त्वचा का प्रतिनिधि है परन्तु त्वचा का विशेष प्रतिनिधि, गुरु उदर, आन्त्र, जिगर एवं मेदा (चर्बी) का प्रतिनिधि है परन्तु मेदा (चर्बी) का विशेष, शुक्र नेत्र, मूत्र एवं वीर्य का प्रतिनिधि है परन्तु वीर्य का विशेष तथा शनि पैर एवं नसे, स्नायु का प्रतिनिधि है परन्तु स्नायु का विशेष प्रतिनिधि है। उपर्युक्त स्थिति में यदि सूर्यादि ग्रह निर्बल एवं पाप-प्रभाव युक्त हो तो अपने कारकत्व (विशेष प्रतिनिधित्व) के अनुसार निश्चित रूप से रोग देते हैं।

लग्न के स्वामी का हीनत्व भी रोग का सूचक होता है, क्योंकि लग्नाधिपति व्यक्ति का सामूहिक शरीर है और नीचराशि में होना दुर्बलता का द्योतक है। अस्तु, सूर्यादि ग्रहों के लग्नेश होकर नीच राशि में जाने पर भी रोगों की सम्भावना जाननी चाहिए, परन्तु रोगों की निश्चितता के लिए इन ग्रहों पर पाप-प्रभाव का होना परमावश्यक है।

सूर्य लग्नेश होकर नीचराशिस्थ हो तो कर्ण रोग, चन्द्र लग्नपति होकर नीचराशिस्थ हो तो जलोदर, मंगल यदि मेष लग्न का स्वामी होकर नीचराशिस्थ हो तो हृदय रोग एवं फेफड़ों में विकार, वृश्चिक लग्न का स्वामी होकर नीचराशिस्थ हो तो नितम्ब एवं उरु प्रदेश में व्रण, बुध मिथुन लग्न का स्वामी होकर नीचराशिस्थ हो तो घुटनों में दर्द, कन्या लग्न का स्वामी होकर नीचराशिस्थ हो तो मूत्र रोग, गुरु धनु लग्न का स्वामी होकर नीचराशिस्थ हो तो मुख रोग, मीन लग्न का स्वामी होकर नीचराशिस्थ हो तो कर्ण रोग, फाइलेरिया, शुक्र वृष लग्न का स्वामी होकर नीचराशिस्थ हो तो उदर विकार, तुला लग्न का स्वामी होकर नीचराशिस्थ हो तो नेत्र रोग, शनि मकर लग्न का स्वामी होकर नीचराशिस्थ हो तो हृदय शूल तथा कुम्भ लग्न का स्वामी होकर नीचराशिस्थ हो तो सांस की नली में विकार, गल रोग होता है।

1.7.5 नीच राशि, शत्रु राशि में स्थिति या निर्बलता-

नीच राशि, शत्रु राशिगत एवं अन्य प्रकार से निर्बल ग्रह शरीर में अपनी धातु की अपेक्षित पूर्ति नहीं कर पाता तथा वह जिन अंगों का प्रतिनिधित्व करता है, उनका भी विकास नहीं होने देता। फलतः इस प्रकार का ग्रह अपने तत्व के अभाव द्वारा कारकत्व के अनुसार अंग धातु में विकार उत्पन्न कर रोग देता है।

1.7.6. अवरोहीपन-

जो ग्रह अपने परमोच्च से आगे तथा परमनीच से पहिले अर्थात् परमोच्च एवं परमनीच के बीच की 6 राशियों में कहीं भी स्थित हो वह अवरोही कहलाता है। अवरोही ग्रह की दशा को अवरोहिणी कहते हैं तथा प्रत्येक ग्रह की अवरोहिणी दशा का समय रोगोत्पत्ति होती है। अतः अवरोही ग्रह रोग कारक माना जाता है।

1.7.7. क्रूरषष्ट्यंश में स्थिति –

प्रत्येक राशि में ६० षष्ट्यंश होते हैं तथा एक राशि में ३० अंश होते हैं। अतः आधे अंश या ३० कला का एक षष्ठयंश होता है। इन ६० षष्ट्यंश के स्वामियों के नाम प्रकार हैं- १ -घोर, २-राक्षस, ३-देव, ४-कुबेर, ५-यक्षोगण, ६- किन्नर, ७ भ्रष्ट,८कुलघ्न, ९-गरल, १०-अग्नि, ११ - माया, १२ - यम, १३ वरुण, १४-इन्द्र १५ कला १६ –सर्प, १७ -अमृत, १८-चन्द्र, १९ - मृदु, २० कोमल, २१ पद्म, २२ - विष्णु, २३- गुरु २४ - शिव, २५-देव, २६ आर्द्र, २७ कलिनाश, २८-क्षितीश, २९-कमलाकर, ३०. मन्दात्मज, ३१-मृत्युकर, ३२ काल, ३३-दावाग्नि, ३४-घोरा, ३५ अधम, ३६ कण्टक ३७-सुधा, ३८-अमृत, ३९- पूर्णचन्द्र ४० विषदग्ध, ४१- कुलनाश, ४२ मुख्य ४३. वंशक्षय, ४४ उत्पातक, ४५ काल, ४६ सौम्य ४७ मृदुष्ट्र ४८-सुशीतल, ४९-दंष्ट्राकराल ५०-इन्दुमुख ५१ प्रवीण, ४२-कालाग्नि, ५३ दण्डायुध ५४-निर्मल, ५५ शुभाकर, ५६ - अशोधन, ५७ - शीतल, ५८-सुधा समुद्र, ५९ - भ्रमण एवं ६०-इन्दुरेखा। विषम राशियों में षष्ट्यंश के स्वामियों की गणना घोर से इन्दुरेखा तक यथा क्रमेण तथा सम राशियों में षष्ट्यंश के स्वामियों की गणना इन्दुरेखा से घोर पर्यन्त व्युत्क्रम से की जाती है। उक्त ६० षष्ट्यंशों के स्वामियों में से जिनके नाम शुभ हैं, उन्हें शुभ षष्ट्यंश तथा जिनके अशुभ हैं उन्हें क्रूरषष्ट्यंश कहते हैं। इस क्रूरषष्ट्यंश में स्थित ग्रह की दशा में रोग होते है। अतः क्रूरषष्ट्यंश में स्थित ग्रह रोगकारक कहलाता है।

1.7.8. पापग्रहों से प्रभावित होना –

पापग्रहों के साथ होना या पाप ग्रहों से दृष्ट होना पाप प्रभाव कहलाता है। जिस भाव का प्रतिनिधि ग्रह पापग्रहों से दृष्ट या युत होता है, वह अपने भाव से सम्बन्धि अंग में रोग उत्पन्न करता है।

1.7.9. अरिष्ट (बालारिष्ट) कारकत्व या मारकत्व –

ज्योतिष के सभी प्रामाणिक ग्रंथों में बालारिष्ट अर्थात् बाल्यावस्या में अकाल मृत्यु का विस्तृत विवेचन मिलता है। इस अरिष्ट योग के प्रमुख कारण निम्नलिखित है –

(क) लग्न एवं लग्नेश की स्थिति निर्बल हो - लग्न एवं लग्नेश के बलावल से स्वास्थ्य, शारीरिक वृद्धि एवं आयु का विचार करते हैं। अतः इन दोनों की निर्बलता से मानव को जीवन मिलने की सम्भावना नष्ट हो जाती है।

(ख) अष्टम भाव एवं अष्टमेश निर्बल हों - अष्टम स्थान को आयु का स्थान माना गया है।अतः इसकी निर्बलता भी जीवन के लिए हानिकारक है।

(ग) चन्द्र क्षीण एवं पाप प्रभावयुक्त हो - चन्द्रमा बाल्यावस्था का प्रतिनिधि ग्रह है।

(घ) लग्न,चन्द्र एवं अरिष्टकारक ग्रहों पर शुभ प्रभाव का अभाव - शुभ ग्रहों की युति या दृष्टि द्वारा पड़ने वाला प्रभाव सभी अनिष्टों को दूर कर देता है। इस प्रभाव का न होना अनिष्टों को निश्चयता प्रदान करता है।

(ङ) पाप ग्रहों का बलवान् एवं शुभ ग्रहों का निर्बल होना - शुभ ग्रहों की निर्बलता इस बात की द्योतक है कि जातक पर उनको अमृतमय रश्मियों का कम प्रभाव है तथा पापग्रहों का बलशाली होना, उनकी विषमय किरणों की प्रचण्डता द्योतक है।

आचार्य वराहमिहिर ने उपर्युक्त लगभग सभी बातों का समावेश कर कहा है कि यदि किसी जातक की कुण्डली में क्षीण चन्द्रमा द्वादश स्थान में हो. पाप ग्रह लग्न तथा अष्टम में हों, केन्द्र स्थानों में कोई शुभ ग्रह न हो, तो ऐसी स्थिति में उत्पन्न जातक की तुरन्त मृत्यु हो जावेगी ।

इसी सन्दर्भ में ध्यातव्य है कि लग्न आदि द्वादश भाव तथा मेष आदि द्वादश राशियां निम्नलिखित कारणों से रोग-कारक बन जाती हैं -

१ – पाप ग्रहों के मध्य में स्थिति।

२- पापग्रहों से युति या पाप ग्रहों की दृष्टि

३ – त्रिक (6, 8, 12) स्थान से सम्बन्ध।

४- स्वामियों की अनिष्ट स्थान में स्थिति।

५- भाव, राशि या इनके स्वामियों की निर्बलता।

६-भाव से चतुर्थ, अष्टम एवं द्वादश स्थान में या त्रिकोण स्थान में पापग्रहों का होना।

७- रोगकारक ग्रहों से सम्बन्ध।

८- शुभग्रहों का प्रभाव न होना।

इस प्रकार जिस राशि या भाव के फल में विकार या हानि का कोई स्पष्ट कारण दिखलाई दे, वह राशि या भाव शरीर के शीर्ष आदि जिस अंग या वात आदि जिस विकार का प्रतिनिधित्व करता हो, शरीर के उस अंग में वात पित्त आदि के प्रकोपवश रोग होता है। किन्तु किसी भी भाव या राशि पर शुभ ग्रहों का प्रभाव (दृष्टि या युति) हो तो वह रोग उत्पन्न नहीं होने देगा। इसलिए भाव या राशि पर शुभग्रहों का प्रभाव न होने पर ही वे रोगकारक बनते हैं। इस प्रकार ज्योतिषशास्त्र रोगविचार के प्रमुख सिद्धान्तों पर प्रकाश डालता है, जो कर्मफल पर गहन विचार से समुत्पन्न है।

अभ्यास प्रश्न –

15- ग्रहों की कफादिप्रकृति कितनी हैं? नाम लिखिये।

16- सहजरोग किसे कहते हैं?

17- ज्योतिष शास्त्र की मान्यतानुसार रोग का विचार करने में अत्यन्त महत्वपूर्ण बातें कौन कौन सी हैं?

18- कौन फलाफल के सूचक हैं, नियामक नहीं?

19- ग्रहों के रोगकारकत्व में हेतु कौन से कारण हैं ?

20- षष्ठेश का चतुर्थेश से स्थान परिवर्तन होने पर किसको रोग दे सकता है?

21- षष्ठेश सूर्यादि ग्रहों से युक्त होकर किन किन स्थानों में व्रण या रोग उत्पन्न करता है?

22- अष्टम भाव के स्वामी होने पर भी कौन से ग्रह अशुभ फलदाता नहीं होते हैं?

23- सन्तति भाव का स्वामी एवं कारक ये दोनों जब छठे भाव में रहेंगे तब क्या सम्भव नहीं है?

24- सूर्यादि ग्रह शरीर के किन किन अंगों का विशेष प्रतिनिधित्व करते हैं?

25- सामान्यतः सूर्य शरीर में किस किस अंग का प्रतिनिधित्व करता हैं ?

26- सूर्य लग्नेश होकर नीचराशिस्थ हो तो कौन सा रोग उत्पन्न करता है?

27- कौन से ग्रह जातक के शरीर में अपनी धातु की अपेक्षित पूर्ति नहीं कर पाते?

28- अवरोही ग्रह क्या है ?
29- आधे अंश या ३० कला का एक षष्ठयंश का मान कितना होता है?
30- अरिष्ट किस प्रकार से उत्पन्न हो सकता है ?
31- लग्न एवं लग्नेश के बलाबल से किन किन बातों का विचार करते हैं?
32- किस स्थान को आयु का स्थान माना गया है ?
33- बाल्यावस्था का प्रतिनिधि ग्रह कौन है ?
34- सभी अनिष्टों को कौन दूर कर देता है ?
35- आचार्य वराहमिहिर द्वारा कथित अरिष्ट योग का वर्णन कीजिए?

1.8 सारांश –

भारतीय परम्पराओं में पुनर्जन्म एवं कर्मवाद दोनों का विशेष स्थान है। जन्म-जन्मान्तर के कर्म एवं उनके फल के विषय में पौराणिक कथाओं ज्योतिष, आयुर्वेद आदि में स्पष्ट रूप से देखने को भी मिलता है। कर्म सिद्धान्त पर विचार करते हुए ज्योतिष के आचार्यों ने त्रिविध कर्मों पर विचार किया है। इसके लिए तीन भिन्न-भिन्न पद्धतियों का आश्रय लिया है। फलित शास्त्र में संचित कर्म के फल का विचार आधान कुण्डली एवं जन्मकुण्डली में बने योगों द्वारा, प्रारब्ध के फल का विचार दशाओं द्वारा तथा क्रियमाण के फल का विचार गोचर एवं प्रश्न कुण्डली द्वारा किया जाता है। ज्योतिषशास्त्र में ग्रहों की प्रकृति (कफ-वात-पित्त) के अनुसार फल का वर्णन प्राप्त होता है। ग्रह सत्व, रज, एवं तम गुण वशात् फल देने में सक्षम होते हैं। साथ ही ग्रहों की नैसर्गिक एवं तात्कालिक परिस्थिति का भी विचार किया जाता है। जो अलग-अलग अवस्थाओं एवं कालान्तर में फल को देते हैं। मानव शरीर में भी इन तीनों गुणों की न्यूनाधिक मात्रा रहती है। इन्हीं के साथ ग्रहों के संयोगवशात् शरीर में परिवर्तन, रोगादि का प्रवेश भी होता है। जिनमें से कुछ रोग जन्म से अथवा कुछ आयु के विभिन्न वर्गों में प्राप्त होते हैं, जिनमें ग्रहों की दशाओं की मुख्य भूमिका रहती है।

रोग का विचार करने में - षष्ठ (रोग) भाव, षष्ठ भाव में स्थित ग्रह, व्यय तथा अष्टम स्थान में स्थित ग्रह और इन भावों के स्वामी ग्रह, षष्ठेश (रोगेश ग्रह), षष्ठेश (रोगेश) से युक्त या दृष्ट ग्रह एवं भाव अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। इसके अतिरिक्त पाप-प्रभावयुक्त राशियों एवं भाव में स्थित ग्रह, नीचराशिगत ग्रह, अस्तंगत ग्रह तथा निर्बल ग्रह, लग्न और लग्नेश ग्रह, अवरोही ग्रह, क्रूरषष्ठ्यंशगत ग्रह, मारक ग्रह एवं बालारिष्टकारक ग्रह भी रोगों के कारक माने गये हैं। इन ग्रहों के शुभाशुभत्व एवं बलाबलत्व के आधार पर रोग तथा रोगी की चर्या, प्रभाव और कालावधि का निर्धारण किया जाता है। साथ में रोग के साध्यत्व असाध्यत्व का निर्णय भी किया जाता है। ग्रहों के रोगकारकत्व हेतु में ये कारण महत्वपूर्ण हैं - रोग भाव का प्रतिनिधित्व, अष्टम एवं व्यय भाव का प्रतिनिधित्व, रोग भाव में स्थिति, लग्न में स्थिति या लग्नेश होना, नीचराशि, शत्रु राशि में स्थिति या निर्बलता, अवरोहीपन, क्रूरषष्ठ्यंश में स्थिति, पाप ग्रहों से प्रभावित होना तथा अरिष्टकारकत्व या मारकत्व। इस प्रकार ज्योतिषशास्त्र रोगविचार के प्रमुख सिद्धान्तों पर प्रकाश डालता है, जो कर्मफल पर गहन विचार से समुत्पन्न है।

1.9 कठिनशब्द –

विपाक	-	फलप्राप्ति, परिणाम, दशा
मानक	-	कसौटी, प्रतिमान, आदर्श
समुत्पन्न	-	पैदा हुए

आधिभौतिक	-	सांसारिक, पञ्चमहाभूतों से सम्बन्धित
आधिदैविक	-	पारलौकिक, परलोक से सम्बन्धित, देवतादि से प्राप्त
आध्यात्मिक	-	आत्मा से सम्बन्धित
कलना	-	गणना
दृष्टिपात	-	अवलोकन करना, देखना
विशद	-	विस्तारपूर्वक, व्यापक
निर्दिष्ट	-	निर्देशित किये गये
प्रतिफल	-	परिणाम
साध्यासाध्य न किया जा सके)	-	साध्य (जिसे साधित किया जा सके) एवं असाध्य (और जिसे साधित
कर्मजन्य	-	कर्म से उत्पन्न
सत्ता	-	राज्य, अधिकार
व्ययस्थान	-	द्वादशवां भाव
षष्ठेश	-	छठवें भाव में स्थित राशि का स्वामी
अस्तंगत ग्रह है तो वह अस्तंगत ग्रह कहते हैं।	-	पृथिवी से देखने पर जब कोई ग्रह सूर्य के अत्यधिक निकट आ जाता दिखाई नहीं देता, तब उस ग्रह को
निर्बल	-	बलहीन
लग्नेश	-	लग्न या प्रथम भाव में स्थित राशि का स्वामी
चर्या	-	वह जो किया जाय, आचरण, गतिविधि
नियामक	-	नियमों के क्षेत्र या बन्धन में बांधने वाला
सूचक	-	सूचना देने वाला
रश्मि	-	किरण
विश्लेषण	-	तथ्यों की छानबीन करना
सतत	-	लगातार
सुनिश्चित	-	अच्छी तरह तय करना
विपर्यय	-	विपरीत करना
हेतुभूत	-	कारण
व्रण	-	चोट या घाव
कण्ठ	-	गला
नासिका	-	नाक
विनियोग	-	नियुक्ति, फल प्राप्ति के उद्देश्य से किसी वस्तु का उपयोग।
त्रिकोणेश ग्रह	-	त्रिकोण स्थान अर्थात् पञ्चम तथा नवम भाव में स्थित राशि के स्वामी
गर्भस्राव	-	कम समय के गर्भ का बहना या गिरना, गर्भपात
अस्थि	-	हड्डी
स्नायु	-	नाडी, पेशी, Ligament
व्याप्त	-	फैला हुआ

मज्जा - हड्डियों के अन्दर स्थित द्रव्य, अस्थिसार

परमोच्च - ग्रह का पृथिवी से अधिकतम दूरी पर होना। फलित ज्योतिष में इन्हें स्थिर माना गया है। जैसे

सूर्य का परमोच्च मेष राशि के 10 अंश पर कहा गया है।

परमनीच - परमोच्च स्थान से 6 राशि की दूरी

गहन - गहरा, गम्भीर

1.10- अभ्यास प्रश्नों के उत्तर -

1- कर्मबन्धन के कारण

2- आधान कुण्डली एवं जन्मकुण्डली में बने योगों द्वारा

3- संचित का

4- प्रारब्ध कर्म

5- ग्रह-नक्षत्रों के आधार पर

6- तीन प्रकार से - 1. स्वेच्छापूर्वक 2.अनिच्छा (दैवेच्छा) 3.परेच्छापूर्वक।

7- दशा, अन्तर्दशा एवं प्रत्यन्तर दशा आदि का

8- विंशोत्तरी दशा

9- कालान्तरित दृष्टफल

10- लौकिक फल

11- अदृष्ट पारलौकिक फल

12- शास्त्रविहित कर्म करने से

13- गोचर एवं प्रश्न कुण्डली

14- क्रियमाण के फलविचार में

15- ग्रहों की तीन प्रकति है – कफ, वात और पित्त

16- जन्म जात रोगों को सहजरोग कहते हैं।

17- षष्ठ (रोग) भाव, षष्ठ भाव में स्थित ग्रह, व्यय तथा अष्टम स्थान में स्थित ग्रह और इन भावों के स्वामी ग्रह, षष्ठेश (रोगेश ग्रह), षष्ठेश (रोगेश) से युक्त या दृष्ट ग्रह एवं भाव। इसके अतिरिक्त पाप-प्रभावयुक्त राशियों एवं भाव में स्थित ग्रह, नीचराशिगत ग्रह, अस्तंगत ग्रह तथा निर्बल ग्रह, लग्न और लग्नेश ग्रह, अवरोही ग्रह, क्रूरषष्ठ्यंशगत ग्रह, मारक ग्रह एवं बालारिष्टकारक ग्रह भी रोगों के कारक माने गये हैं।

18- ग्रह फलाफल के नियामक नहीं है, किन्तु सूचक है।

19- ग्रहों के रोगकारकत्व हेतु में ये कारण हैं - रोग भाव का प्रतिनिधित्व, अष्टम एवं व्यय भाव का प्रतिनिधित्व, रोग भाव में स्थिति, लग्न में स्थिति या लग्नेश होना, नीचराशि, शत्रु राशि में स्थिति या निर्बलता, अवरोहीपन, क्रूरषष्ठ्यंश में स्थिति, पाप ग्रहों से प्रभावित होना तथा अरिष्टकारकत्व या मारकत्व ।

20- षष्ठेश का चतुर्थेश से स्थान परिवर्तन होने पर माता को रोग दे सकता है।

21- सूर्य से युक्त हो तो शिर पर, चन्द्र युक्त हो तो मुख में, मंगल से युक्त होकर कण्ठ में, बुध से युक्त हो नाभि प्रदेश में, गुरु से युक्त होकर नासिका में, शुक्र से युक्त होकर नेत्र में, शनि से युक्त होकर पैर में तथा राहु या केतु से युक्त होकर पेट में व्रण या रोग उत्पन्न करता है।

22- सूर्य, चन्द्र एवं लग्नेश।

23- गर्भ की पुष्टि या वृद्धि।

24- लग्नस्थ सूर्य अस्थि का, चन्द्र रक्त का, मंगल मांस, बुध त्वचा,गुरु वसा (चर्बी), शुक्र वीर्य तथा शनि स्नायु का विशेष प्रतिनिधित्व करता है।

25- सूर्य आँख, हृदय एवं हड्डी इन सब का कारक या प्रतिनिधि है।

26- सूर्य लग्नेश होकर नीचराशिस्थ हो तो कर्ण रोग होता है।

27- नीच राशि, शत्रु राशिगत एवं अन्य प्रकार से निर्बल ग्रह।

28- जो ग्रह अपने परमोच्च एवं परमनीच के बीच की 6 राशियों में कहीं भी स्थित हो वह अवरोही कहलाता है।

29- आधे अंश या ३० कला का एक षष्ठयंश होता है।

30- अरिष्ट होने के प्रमुख कारण - लग्न एवं लग्नेश की निर्बल स्थिति, अष्टम भाव एवं अष्टमेश का निर्बल होना, चन्द्र का क्षीण एवं पाप प्रभावयुक्त होना, लग्न,चन्द्र एवं अरिष्टकारक ग्रहों पर शुभ प्रभाव का अभाव होना तथा पाप ग्रहों का बलवान् एवं शुभ ग्रहों का निर्बल होना है।

31- - लग्न एवं लग्नेश के बलाबल से स्वास्थ्य, शारीरिक वृद्धि एवं आयु का विचार करते हैं।

32- अष्टम स्थान को आयु का स्थान माना गया है।

33- चन्द्रमा बाल्यावस्था का प्रतिनिधि ग्रह है।

34- शुभ ग्रहों की युति या दृष्टि द्वारा पड़ने वाला प्रभाव सभी अनिष्टों को दूर कर देता है।

35- यदि किसी जातक की कुण्डली में क्षीण चन्द्रमा द्वादश स्थान में हो. पाप ग्रह लग्न तथा अष्टम में हों, केन्द्र स्थानों में कोई शुभ ग्रह न हो, तो ऐसी स्थिति में उत्पन्न जातक की तुरन्त मृत्यु हो जावेगी।

1. 11. व्याख्यात्मक प्रश्न-

1- ज्योतिष एवं कर्म सिद्धान्त में क्या सम्बन्ध है? वर्णन कीजिए।

2- त्रिविध कर्मफल विचार पर सुविस्तृत प्रकाश डालिए।

3- सञ्चित कर्म एवं उसके फलविचार पर चर्चा कीजिए।

4. प्रारब्ध कर्म एवं उसके फलविचार प्रकाश डालिए।

5- क्रियमाण कर्म एवं उसके फलविचार का वर्णन कीजिए।

6- कर्म एवं रोग पर चर्चा कीजिए।

7- सहज एवं आगन्तुक रोगों पर प्रकाश डालिए।

8 - ज्योतिष में रोगविचार पर सुविस्तृत निबन्ध लिखिए।

9- रोगविचार में षष्ठ, अष्टम एवं द्वादश भावों के महत्व पर सुविस्तृत चर्चा कीजिए।

9 - ग्रहों के रोगकारकत्व में हेतुओं पर विस्तार से विचार प्रस्तुत कीजिए।

1.12 . सन्दर्भ सहायक ग्रन्थ सूची

1- ज्योतिष शास्त्र में रोग विचार-डॉ. शुकदेव चतुर्वेदी-मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1992

2- कर्मरहस्य – स्वामी रामसुखदास- गीताप्रेस गोरखपुर

3- आर्योद्देश्यरत्नमाला– स्वामी दयानन्द सरस्वती-परोपकारिणी सभा, 1873

4- योग दर्शन- गीताप्रेस गोरखपुर

5- यजुर्वेद- सम्पा. रेखा व्यास- संस्कृत साहित्य प्रकाशन, दिल्ली, 2015
6- श्रीरामचरितमानस- गीताप्रेस गोरखपुर
7- श्रीमद्भगवद्गीता- गीताप्रेस गोरखपुर
8- नारदपुराण– प्रकाशक खेमराज श्रीकृष्णदास, श्रीवेंकटेश्वरप्रैस, मुम्बई
9- चरक संहिता- सम्पा. पी वी शर्मा- चौखम्भा ओरियेन्टालिया वाराणसी, 1998
10- जातकालङ्कार-सम्पा.स्व. पं. सीताराम झा- मास्टर खेलाडीराम एण्ड सन्स, वाराणसी
11- बृहज्जातक- सम्पा. केदारदत्त जोशी-मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी 2016
12- लघुजातक- सम्पा. के एस.चरक-यू एम ए पब्लिकेसन्स, दिल्ली, 2008
13- जातकतत्त्वम् - दैवज्ञ महादेव शर्मा-भुवनेश्वरी यंत्रालय, रतलाम, सन् 1915
14- संस्कृत हिन्दी कोश- वामन शिवराम आप्टे-मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 2001
15- जातक पारिजातः-वैद्यनाथ - चौखम्बा संस्कृत सीरिज, वाराणसी, 1942
16- सर्वार्थ चिन्तामणि – गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास- कल्याण , बम्बई, 1956
17- लघुपाराशरी- गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास, कल्याण, बम्बई, 1937
18- फलदीपिका-आचार्य मन्त्रेश्वर- मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1975
19- बृहत्पाराशर होरा शास्त्र- मा.खेलाडीलाल संकटाप्रसाद, वाराणसी, 1968

इकाई-02 कर्मफल के प्रकार

इकाई की रूपरेखा

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 कर्म की परिभाषा
2.4 कर्म की अवधारणा
    2.4.1 गीता में कर्म
    2.4.2 दार्शनिक दृष्टि में कर्मफल
अभ्यास प्रश्न
2.5 कर्म के प्रभेद
2.6 कर्म, रोग और ज्योतिष
अभ्यास प्रश्न
2.7 सारांश
2.8 कठिन शब्द
2.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
2.10 व्याख्यात्मक प्रश्न
2.11 सन्दर्भ एवं सहायक ग्रन्थ सूची

2.1 प्रस्तावना

कर्मफल एक अतिसूक्ष्म, गहन एवं दुर्गम विषय है। हमारे ऋषियों ने वेद और आर्षग्रन्थों के आधार पर कर्मफल के कुछ सिद्धांत स्थापित करने के प्रयास किए हैं। जिज्ञासु जनों की शंकाओं का समाधान पूर्णतया नहीं हो सकता। जीव अल्पज्ञ है। केवल ईश्वर ही सर्वज्ञ है और पूर्ण है। वही जानता है कि जीवों को उनके कर्मों का फल कब, कैसे, कहाँ और किस रूप में प्राप्त होना है? ज्योतिष शास्त्र इस दिशा में कार्य करता है। वह प्रतिपादित करता है कि इस विश्व में जो भी घटना होती है, वह अकारण नहीं होती। उसका कहीं कुछ कारण अवश्य होना चाहिए। ज्योतिष के अन्तर्गत सूर्य स्वज्योति से युक्त होने के कारण आत्मा व प्राणों का आधार तथा चन्द्र को चलायमान होने के कारण मन का कारक कहा गया है। व्यक्ति के जन्म के समय ग्रहों की विभिन्न राशि भागों में अवस्थिति आदि के आधार पर निर्मित योगों से ज्योतिषशास्त्र जन्म-जन्मान्तर में विहित शुभ व अशुभ कर्मों को प्रकाशित करने का प्रयास करता है। इसलिए आचार्य वराहमिहिर कहते हैं – **कर्मार्जितं पूर्वभवे सदादि यत्तस्य पङ्क्तिं समभिव्यनक्ति।(बृ.जा.1/3)**

प्रस्तुत पाठ में आप कर्म की अवधारणा, कर्म के प्रभेद, कर्मों का रोग से सम्बन्ध, कर्म पर ज्योतिषीय चिन्तन आदि के बारे में अध्ययन करेंगे। हमें आशा है कि इस पाठ के अध्ययन से आप कर्म के स्वरूप, ज्योतिष, रोग एवं कर्म इत्यादि विषयों को समझ सकेंगे।

2.2 उद्देश्य

प्रस्तुत पाठ के अध्ययन से आप –

1. कर्म की परिभाषा एवं अवधारणा को समझ सकेंगे।
2. भारतीय दर्शन के अनुसार कर्म के स्वरूप को जान सकेंगे।
3. कर्म के प्रभेदों पर विचार कर सकेंगे।
4. कर्म और रोग के सम्बन्ध पर चर्चा कर सकेंगे।
5. ज्योतिषशास्त्र और कर्मफल पर विचार प्रस्तुत कर सकेंगे।
6. कर्म सिद्धान्त के आधार पर रोग को समझ सकेंगे।
7. ग्रहों को रोगकारक बनाने वाले हेतुओं पर चर्चा कर सकेंगे।

2.3 कर्म की परिभाषा

कृ धातु से कर्मन् शब्द की उत्पत्ति है, जिसका प्रथमा विभक्ति एकवचन में कर्म शब्द बनता है। वह कृत्य जो फल को उत्पन्न करने में समर्थ हो, उसे कर्म कहते हैं। किसी कार्य का प्रारम्भ करना भी कर्म कहलाता है। हिरण्य के मतानुसार विधि द्वारा निर्दिष्ट को करना ही कर्म है (हि.श्रौ.सू.1.1.6)।

स्वामी दयानंद सरस्वतीजी कर्म की परिभाषा बड़े ही सुन्दर ढंग से करते हैं - "जीवात्मा मन, वाणी और शरीर से जो चेष्टा विशेष करता है, उसे कर्म कहते हैं। वह शुभ,अशुभ और मिश्रित भेद से तीन प्रकार का है।" जो सुख-दुःख जीव भोगता है, वह उसके कर्मों का फल है।

ऋषि पतंजलि जी योगदर्शन के द्वितीयपाद में कर्मफल का सूत्र देते हैं कि- सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगा: ।अर्थात् जब तक व्यक्ति में अविद्या आदि क्लेश रहते हैं, तब तक उन अविद्या आदि क्लेशों से प्रेरित होकर वह जो भी अच्छे-बुरे कर्म करता है, उनका फल जाति, आयु

और भोग के रूप में मिलता है। जाति के अन्तर्गत मनुष्यजाति, पशुजाति, पक्षीजाति और कीट इत्यादि शरीरों को लिया गया है। आयु का तात्पर्य इन शरीरों के अनुसार जीवनकाल और इन शरीरों के अनुसार भोग्यपदार्थ अर्थात् घास, अन्न, फल, सब्जियां, मांस आदि खाद्य पदार्थ और घर की अन्य सुख-सुविधाओं की सामग्री का उपलब्ध होना भोग है । जाति जन्म से मृत्यु पर्यन्त बनी रहती है, परन्तु आयु, भोग को बढ़ाया और घटाया जा सकता है। दीर्घ आयु के लिए ब्रह्मचर्य, आहार, निद्रा और व्यायाम जो नीरोगता के स्तंभ माने जाते हैं, व्यक्ति इनका पालन यथावत करता हुआ आयु को बढ़ा सकता है। आजकल परिवेश अर्थात् आसपास के वातावरण का भी स्वास्थ्य पर भारी मात्रा में प्रभाव पड़ता है। प्रदूषण अनेक असाध्यरोगों की जननी है। फलस्वरूप आयु पूरी तरह से प्रभावित हो रही है और लोगों का गलत रहन-सहन और आहार का प्रभाव भी आयु को घटा रहा है। भोग को भी बढ़ाना व कम करना व्यक्ति के अपने अधिकार में है। आलस्य, प्रमाद, दुर्गुणों और दुर्व्यसनों के कारण व्यक्ति मिली सुख-सम्पदा को नष्ट-भ्रष्ट कर लेता है। दूसरी ओर पुरुषार्थ से, सात्विक जीवन शैली से व्यक्ति प्रचुर मात्रा में धन और ऐश्वर्य का स्वामी बन जाता है। आचार्य शंकर ने कर्म विधान को स्वीकार करते हुए व्यक्तित्व का आधार कर्म को ही माना है। कर्म अविद्या की उपज है। जिस जगत में हम उत्पन्न हुए हैं वह कर्ता के ऊपर उसके पूर्व कर्मों का प्रतिपादन मात्र है। **'' स्वयं वाजिंस्तन्वं कल्पयस्व स्वयं यजस्व स्वयं जुषस्व महिमा ते अन्येन न सन्नशे। ''**

अर्थात् कर्म और ज्ञान से सम्पन्न मनुष्य। तू अपने शरीर को समर्थ बना, स्वयं उत्तम कर्म कर, समर्थशाली बन। आचार्य शंकर के अनुसार समस्त क्रियमाण व्यापार कर्म है। कर्म के लिए देहादि चेष्टाएं अनिवार्य है। कर्म नैसर्गिक हैं और इसी को संसार अथवा विश्व के नाम से अभिहित किया जाता है। कर्म की उत्पति में गुण और स्वभाव ये दो सहकारी कारण हैं। कर्म नियम समस्त लौकिक व व्यावहारिक सत्य की प्रतिष्ठा करता है। और जगत को क्रम का विभाजन प्रदान करता है। गुण प्रकृति के अन्तर्भूत हैं और गुणों का समुच्चय ही प्रकृति है, उसी प्रकार कर्मों में गुणों की क्रिया और उसका प्रभाव स्वाभाविक है। शंकरके अनुसार पूर्व जन्मान्तरों में किए गए कर्म संस्काररूप में रहते हैं। वे संस्कार ही वर्तमान जन्म में कार्यरूप में व्यक्त होते हैं। संस्कारों की यह अभिव्यक्ति ही स्वभाव है। इसी अभिव्यक्ति से प्रेरित हो कर जीव कर्म करता है।

2.4 कर्म की अवधारणा-

विश्व की रचना में दो प्रमुख घटक हैं- पुरुष और प्रकृति। इनमें पुरुष में कभी परिवर्तन नहीं होता और प्रकृति कभी परिवर्तनरहित नहीं होती है। जब प्रकृति के साथ पुरुष का सम्बन्ध स्थापित होता है,तब प्रकृति की क्रिया पुरुष का कर्म बन जाती है, क्योंकि प्रकृति के साथ सम्बन्ध मानने से तादात्म्य हो जाता है। तादात्म्य होने से जो प्राकृत वस्तुएं प्राप्त हैं, उनमें ममता होती है और उस ममता के कारण अप्राप्त वस्तुओं की कामना होती है। इस प्रकार जब तक कामना, ममता और तादात्म्य रहता है, तब तक जो कुछ परिवर्तनरूप क्रिया होती है, उसका नाम कर्म है। यह विश्व कर्मप्रधान है। अतः गोस्वामी तुलसीदास कहते हैं – **करम प्रधान बिस्व करि राखा। जो जस करइ सो तस फलु चाखा।**

कर्म तीन तरह के होते हैं – संचित, प्रारब्ध और क्रियमाण। वर्तमान से पहले इस जन्म में और पूर्व जन्मों में किये शुभ व अशुभ कर्म का संग्रह संचित कर्म है। संचित कर्म में से जो कर्म फल देने के लिए प्रस्तुत हो गये हैं अर्थात् जन्म, आयु और अनुकूल परिस्थिति में परिणत होने के

लिए सम्मुख आ गये हैं, वे प्रारब्ध कर्म हैं तथा अभी वर्तमान में जो कर्म किये जा रहे हैं, वे क्रियमाण कर्म होते हैं। यहाँ ध्यातव्य है कि भारतीय दर्शन के अनुसार मनुष्य की योनि को ही कर्मयोनि माना गया है। पशुओं की योनि भोगयोनि होती है। जो पूर्वार्जित कर्मफल के भोगों के लिए जन्म धारण की हुई हैं। अतः क्रियमाण कर्म या जो भी नये कर्म तथा संस्कार हैं, वह केवल मानवों के लिए है, पशु आदि के लिए नहीं। आइए अब कर्म सिद्धान्त की अवधारणा को विस्तार से समझते हैं।

2.4.1 गीता में कर्म

कर्म मनुष्य का परमधर्म है। पूरी गीता ही निष्काम कर्म योग का शास्त्र है। गीता के अनुसार-

न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः ॥

बिना ज्ञान के केवल कर्म संन्यास मात्र से मनुष्य निष्कर्मतारूप सिद्धि को क्यों नहीं पाता इसका कारण जानने की इच्छा होने पर श्रीभगवान् कहते हैं कि कोई भी मनुष्य कभी क्षण मात्र भी कर्म किये बिना नहीं रहता क्योंकि सभी प्राणी प्रकृति से उत्पन्न सत्त्व, रज और तम इन तीन गुणों द्वारा प्रवेश हुए अवश्य ही कर्मों में प्रवृत्त कर दिये जाते हैं। यहाँ सभी प्राणी के साथ अज्ञानी (शब्द) और जोड़ना चाहिये क्योंकि आगे जो गुणों से विचलित नहीं किया जा सकता इस कथन से ज्ञानियों को अलग किया है। अतः अज्ञानियों के लिये ही कर्मयोग है, ज्ञानियों के लिये नहीं, क्योंकि जो गुणों द्वारा विचलित नहीं किये जा सकते उन ज्ञानियों में क्रिया का अभाव होने से उनके लिये कर्मयोग सम्भव नहीं है। अतः गीता कहती है-

कर्मण्यकर्म यः पश्येदकर्मणि च कर्म यः।
स बुद्धिमान्मनुष्येषु स युक्तः कृत्स्नकर्मकृत्।।

वेद उपनिषद और गीता सभी कर्म को कर्तव्य मानते हुए इसके महत्व को बताते हैं। कर्म के आधार पर चातुर्वर्ण्य (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र) को बांटा गया है। यथा –

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः।
तस्य कर्तारमपि मां विद्ध्यकर्तारमव्ययम्।।

यदि बताए गए माध्यम से सही सही कर्म करते रहें तब वही कर्म धर्म बन जाएंगे और मनुष्य धार्मिक कहलायेंगे। कर्म ही पुरुषार्थ है, धर्मशास्त्र और नीतिशास्त्रों में कहा गया है कि कर्म के बगैर गति नहीं। गीता में तीन प्रकार के कर्म विवेचित हैं –

1- कर्म – वेदादि शास्त्रों के अनुकूल किये गये कार्य।

2- अकर्म – कर्म का अभाव अर्थात् आसक्ति, फलेच्छा, ममता त्याग कर दूसरों के हित में किये गये कार्य।

3- विकर्म - वेदादि शास्त्रों द्वारा निषिद्ध कार्य। दूसरों को पीड़ा देने हेतु किये गये कार्य।

इन कर्मों का संग्रह तीन प्रकार से होता है- **करणं कर्म कर्तेति त्रिविधः कर्मसंग्रहः।**

1- करण – जिसके द्वारा कर्म किया जाय अर्थात् श्रौत्रादि दश इन्द्रियाँ एवं मन, बुद्धि. चित्त तथा अहंकार।

2- कर्म – जो कर्ता को अभीष्ट हो और क्रिया द्वारा सम्पादन किया जाय।

3- कर्ता –श्रौत्रादि करणों को अपने अपने व्यापार में नियुक्त करने वाला उपाधिस्वरूप जीव।

इस प्रकार मनुष्य को कर्म करना ही पड़ता है। उसका कर्म पर ही अधिकार व नियन्त्रण है, उसके फल पर उसका नियन्त्रण नहीं है। अतः भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि –

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोस्त्वकर्मणि।।

अर्थात् तुम्हारा कर्म पर ही अधिकार है। अतः कर्म करते हुए कर्मफल पर अधिकार मत रख अर्थात् कर्मफल की तृष्णा न हो। जब कर्मफलतृष्णा होगी तो तू कर्मफलप्राप्ति का कारण होगा।अतः इस प्रकार कर्मफलप्राप्ति का कारण तू मत बन। यदि कर्मफल की इच्छा न करें तो दुःखरूप कर्म करने की क्या आवश्यकता है? इस प्रकार कर्म न करने में भी तेरी आसक्ति नहीं होनी चाहिए।

2.4.2 दार्शनिक दृष्टि में कर्मफल

दर्शनशास्त्रों में कर्म के फल के साथ कर्म के परिणाम और प्रभाव को भी अत्यंत महत्वपूर्ण समझा गया है। फल, परिणाम और प्रभाव को इस एक घटनाक्रम से सुगमता व सरलता से समझने का प्रयास करें- बालक चाकू से खेल रहा था, माँ ने मना किया। माँ को अनसुना कर दिया। चाकू से उँगली कट गई और पास खड़ी बहन, बहते रक्त को देखकर रोने लगी। रोने की आवाज़ सुनकर माँ दौड़ी आई और आते ही बालक को चांटा मारा।

इस घटनाक्रम में विशेष तीन क्रियाओं (उँगली का कटना, बहन का रोना, माँ का बच्चे को चांटा मारना) को लेकर विश्लेषण करें, तो चाकू से उँगली का कटना कर्म का परिणाम है, पास खड़ी बहन का रोना प्रभाव है और माँ का बालक को चांटा मारना कर्म का फल है। कर्म की निकटतम प्रतिक्रिया परिणाम है और परिणाम को जानकर जो मानसिक सुख-दुःख, भय और शिक्षा का मिलना है, वह प्रभाव है।

कर्म का फल केवल कर्म करने वाले को ही मिलता है, अन्य को नहीं, जबकि कर्म का परिणाम और प्रभाव अन्यों पर होता है। आधिभौतिक दुःख जो दूसरे प्राणियों से मिलते हैं, सड़क व रेलदुर्घटनाओं आदि का होना, जिस कारण यात्रियों को जान-माल की क्षति को झेलना, प्राकृतिक आपदाएँ जैसे अतिवृष्टि, बाढ़, भूकम्प, सूखा पड़ना इत्यादि घटनाओं से बहुत बड़े जनसमूह का इनकी चपेट में आना। इस प्रकार की घटनाओं से जिनसे लोगों के एक बड़े जनसमूह को दु:ख का मिलना, कर्मों के फल नहीं हैं, घटनाओं के परिणाम व प्रभाव के कारण व्यक्ति को दु:ख भोगना पड़ता है। जो कर्ता को सुख-दुःख न्यायपूर्वक मिले, उसे कर्मफल और जो सुख-दुःख अन्याय से मिलता है, वह कर्मों का फल नहीं है। ऐसे कर्मों को कर्म का परिणाम और प्रभाव कहा जाता है। इस अन्याय की क्षतिपूर्ति करने का प्रावधान भी ईश्वर की व्यवस्था में है। इस व्यवस्था को ठीक-ठीक समझ सकें, ऐसी अल्प बुद्धिवाले जीवात्माओं का सामर्थ्य भी नहीं है। कई बार व्यक्ति को कम पुरुषार्थ से कार्यों की सिद्धि अनायास होती ही जाती है, तो समझना चाहिए कि ईश्वर की व्यवस्था के अन्तर्गत क्षतिपूर्ति हो रही है। इस क्षति पूर्ति को लोग अपनी भाषा में प्रायः कहा करते हैं कि ईश्वर जब भी देता है तो छप्पर फाड़कर देता है।

जीवात्मा कर्म करने में स्वतंत्र है। कर्म करने में कर्ता स्वतंत्र है। कर्ता कहते ही उसे हैं, जो कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं समर्थ हो। चाहे तो करे, चाहे तो न करे अथवा विपरीत करे। कर्मफल भोगने में जीवात्मा परतंत्र है। कर्मों का फल जो कर्मों को जानता है, वह ही दे सकता है। एक चोर ने एक धनी के यहाँ चोरी की, यदि ऐसा माना जाए कि चोर ने धनी को उसके किसी पूर्व कर्म का फल दिया है, तो यह न्यायसंगत नहीं है और वैदिक सिद्धांत के विरूद्ध है। क्योंकि चोर धनी के कर्मों को जानता नहीं है। यदि यह माना जाए कि चोर तो नहीं जानता कि वह धनी के किस कर्म का फल दे रहा है, परन्तु ईश्वर तो धनी के उस पूर्व कर्म को जानता है। ईश्वर ने चोर के माध्यम से धनी के

पूर्वकर्म का फल दिलाया है। यदि चोर को ईश्वर के आदेशानुसार कार्य करने वाला साधन मात्र मान लिया जाए तो चोर दोषी सिद्ध नहीं हो सकता। कारण कि उसने तो ईश्वर के आदेश का पालन किया है। ऐसा मानना भी अनुचित है, क्योंकि लोक में हम देखते हैं कि चोर के विरुद्ध कार्रवाई की जाती है और न्यायालय उसे दण्ड भी देता है। कई बार चोर पुलिस की पकड़ में नहीं आता, इसका यह अर्थ नहीं कि वह सज़ा से बच गया है। यह चोर का एक नया कर्म है, जिसका फल उसे ईश्वर की न्याय व्यवस्था के अनुसार अवश्य ही मिलेगा। न्यायाधीश के आदेशानुसार जल्लाद किसी अपराधी को फांसी पर चढ़ा देता है, तो जल्लाद को उसकी हत्या का दोष नहीं लगता। उसने तो न्यायाधीश की आज्ञा का पालन किया है, जो उसका कर्तव्य है।

ईश्वर सर्वव्यापक व सर्वज्ञ है। वह जीवों के मन, वाणी और शरीर से किए जाने वाले सभी कर्मों को जानता है। उसे प्रत्यक्ष प्रमाणों की आवश्यकता नहीं है, वह स्वयं ही प्रत्यक्ष साक्षी है और जीवों को उनके कर्मों का फल केवल ईश्वर ही देता है। हम लोक में देखते हैं कि अपराधी को उसके अपराध के सिद्ध होने पर ही न्यायाधीश उसे दंड देते हैं। न्यायाधीश के पास प्रत्यक्ष प्रमाण न होने के कारण उन्हें अनेकों अन्य प्रमाण जुटाने पड़ते हैं और यह एक बहुत लम्बी प्रक्रिया बन जाती है, जिस कारण फैसला आने में विलंब हो जाता है। न्यायाधीश के लिए गए निर्णय में भूल चूक की संभावना सदा बनी रहती है। ईश्वर की व्यवस्था में साक्षी व प्रमाणों की आवश्यकता नहीं होती, ईश्वर सर्वज्ञ है, प्रत्यक्ष रूप में सब जानता है। उसके लिए गए निर्णयों में किसी भी प्रकार के भूल की संभावना नहीं है।

कर्म का फल कर्ता को ही मिलता है, यह ईश्वरीय नियम अटल है और क्षमा का प्रावधान नहीं है। अज्ञानी और दुष्टबुद्धिवाले स्वार्थी व्यक्ति स्वेच्छा से स्वयं ही बुरे कर्मों को करते हैं, किन्तु उन कर्मों के दुखदायी फलों से बचने के लिए मन्दिर, मस्जिद, चर्च तथा अन्य धार्मिकस्थल पर जाकर कुछ दान-पुण्य करके कर्मफल से बचने का प्रयास करते हैं। अतः कई मत-मतान्तरों के तथाकथित अधिकारी, इन लोगों को, किए गए पापों से बचने के लिए तथा पाप नष्ट करने के लिए टोना टोटका, पूजा पाठ आदि के नाम पर ठगी करते हैं। यदि ऐसे सरल उपायों से पाप क्षमा होने लगें, तो जो लोग पापकर्म नहीं करते वे भी करने लग जाएँगे और पापकर्मों की वृद्धि होगी। प्रायश्चित हेतु अनुष्ठान आदि आत्मिक शान्ति अवश्य प्रदान करते हैं परन्तु कर्म का फल तो अवश्य भोगना ही पड़ेगा -

नाभुक्तं क्षीयते कर्म जन्मकोटिशतैरपि।।
अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।

अभ्यास प्रश्न

1- कर्मशब्द की व्युत्पत्ति बताईये?
2- हिरण्य के मतानुसार कर्म क्या है?
3- स्वामी दयानंद सरस्वतीजी के अनुसार कर्म की परिभाषा बताईये?
4- सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगा: यह किसका कथन है?
5- आचार्य शंकर ने व्यक्तित्व का आधार किसको माना है
6- विश्व की रचना में दो प्रमुख घटक कौन हैं
7- कर्म कितने तरह के होते हैं – संचित, प्रारब्ध और क्रियमाण
8- गीता के अनुसार मनुष्य किसके विना क्षण मात्र भी नहीं रह सकता है
9- प्रकृति के तीन गुण कौन से हैं

10- किनमें क्रिया का अभाव होने से उनके लिये कर्मयोग सम्भव नहीं है

11- किस के आधार पर चातुर्वर्ण्य को बांटा गया है

12- गीता में कितने प्रकार के कर्म विवेचित हैं

13- कर्मों का संग्रह कितने प्रकार से होता है

14- कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन। यह कथन किसका है

15- कर्म की निकटतम प्रतिक्रिया क्या है

16- परिणाम को जानकर जो मानसिक सुख-दुःख, भय और शिक्षा मिलती है, वह क्या है

17- कर्ता किसे कहते हैं

18- जीवात्मा किस हेतु परतन्त्र है

19- कौन सर्वव्यापक व सर्वज्ञ है, जो जीवों के मन, वाणी और शरीर से किए जाने वाले सभी कर्मों को जानता है।

20- अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्। इसका क्या अर्थ है

2.5 कर्म के प्रभेद-

कर्मसिद्धान्त मुख्यरूप से त्रिविध कर्मों की चर्चा करता है – (क). संचित, (ख). प्रारब्ध एवं (ग). क्रियमाण।

क- संचित - पूर्व जन्म के समस्त कर्म एवं वर्तमान क्षण तक किए गए समस्त कर्मो का संग्रह को ही संचित कर्म कहा जाता है। स्पष्ट अर्थ किया जाए तो वर्तमान से पूर्व किये गये अथवा मूल रूप से पूर्वजन्म- जन्मान्तरों में किए गए कर्म ही सञ्चित कर्म हैं। क्योंकि मनुष्य प्रति क्षण शुभ या अशुभ कर्मों में निमग्न रहता है अतः सभी कर्मों का फल उसे तुरन्त मिलना सम्भव नहीं है। जिस कारण उसके कर्मों का संग्रह होता रहता है। यही संचित कर्म है।

अनेक जन्मों में किए हुए जो कर्म मनुष्य के अन्तः करण में संग्रहीत रहते हैं वे सञ्चित कर्म कहलाते हैं। ये सञ्चित कर्म भी फल-अंश और संस्कार- अंश के रूप में दो प्रकार के होते हैं। उनमें फल अंश से तो प्रारब्ध बनता है और संस्कार अंश से स्फुरणा होती रहती है। उन स्फुरणाओं में भी वर्तमान में किए गए जो नए क्रियमाण सञ्चित होते रहते हैं, प्रायः उनकी ही स्फुरणा होती है। इसी प्रकार जब नींद आती है तो उसमें भी स्फुरणा होती है। नींद में जाग्रत अवस्था के दब जाने के कारण सञ्चित की वह स्फुरणा स्वप्न रूप में दिखने लगती है जिसे स्वप्नावस्था कहते हैं।

संचित कर्म को दृष्टान्त द्वारा इस प्रकार समझा जा सकता है कि कोई व्यक्ति नौकरी आदि कार्य कर धन प्राप्त करता है, परन्तु उस प्राप्त धन का पूरा उपभोग वह तुरन्त नहीं करके कुछ धन किसी बैंक में संचित कर लेता है। वही संचित धन वह बाद में उपभोग हेतु प्रयोग कर सकता है। इस तरह वह समय समय पर बैंक में धन एकत्रित करता रहता है। जो उसका संचित धन है। इसी प्रकार बैंक से ऋण (लोन) लेने पर देय धन भी उसके खाते में जमा होता रहता है, जिसका भुगतान उसे बाद में करना ही होता है। इसी प्रकार संचित कर्म भी मनुष्य के धनात्मक या शुभ कर्म तथा ऋणात्मक या अशुभ कर्म का संग्रह मात्र है। इन संचित कर्मों का व्याज या फल मनुष्य को एक विशेष प्रकार के वातावरण में, विशेष प्रकार की रूपरेखा आकृति तथा विशेष मनोवृत्तियों के साथ एक परिवार विशेष में जन्म लेने के रूप में प्राप्त होता है।

ख- प्रारब्ध - संचित कर्म के जिस भाग का फल मिलना प्रारम्भ हो चुका हो वह प्रारब्ध कहलाता है। इसे ही भाग्य के नाम से भी जाना जाता है। स्पष्ट अर्थ किया जाए तो सञ्चित में से जो कर्मफल

देने के लिए उन्मुख हो गए हों अर्थात् जन्म,आयु और अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थिति के रूप में परिणत होने के लिए सामने आ गए हों वे प्रारब्ध कर्म कहलाते हैं। प्रकर्षेण आरब्धः प्रारब्धः। प्रारब्ध कर्मों का फल तो अनुकूल या प्रतिकूल परिस्थिति के रूप में सामने आता है, परन्तु उन प्रारब्ध कर्मों को भोगने के निए प्राणियों की प्रवृत्ति तीन प्रकार से होती है- 1. स्वेच्छापूर्वक 2.अनिच्छा (दैवेच्छा) 3.परेच्छापूर्वक।

प्रारब्ध कर्म से मिलने वाले फल के दो भेद होते हैं – प्राप्त फल एवं अप्राप्त फल। अभी प्राणियों के सामने जो अनुकूल या प्रतिकूल परिस्थिति आ रही है वह प्राप्त फल है। इसी जन्म में जो अनुकूल या प्रतिकूल परिस्थिति भविष्य में आने वाली है वह अप्राप्त फल है। किये गये कर्मों का जो फल-अंश सञ्चित में जमा रहता है वही प्रारब्ध बनकर अनुकूल या प्रतिकूल अथवा मिश्रित परिस्थिति के रूप में मनुष्य के सामने आता है। अतः जब तक सञ्चित रहते हैं तब तक प्रारब्ध बनता ही रहता है और प्रारब्ध परिस्थिति के रूप में परिणत होता ही रहता है। यह परिस्थिति मनुष्य को सुखी-दुःखी होने के लिए बाध्य नहीं करती। सुखी-दुःखी होने में मुख्य कारण परिस्थिति के साथ सम्बन्ध जोड़ना मुख्य है। सम्बन्ध जोड़ने में मनुष्य सदैव स्वाधीन है।

पूर्वोक्त दृष्टान्त को आगे बढ़ाते हुए प्रारब्ध को इस प्रकार से समझा जा सकता है कि बैंक में संचित धन में से समय समय पर जितने धन को वह व्यक्ति अपने उपभोग हेतु निकालता है, वह उसके संचित धन का ही भाग है। इसी प्रकार बैंक से लिये ऋण (लोन) की जितनी धनराशि उसके खाते में जमा है, उसमें से जितनी राशि का भुगतान उसने कर लिया है, उतना उसका ऋणभार कम होगा। इसी प्रकार प्रारब्ध या भाग्य भी मनुष्य के धनात्मक या शुभ कर्म तथा ऋणात्मक या अशुभ कर्म के कारण ही सुख या दुःख के रूप में प्राप्त होता है। प्रारब्ध मनुष्य के जन्म के साथ ही प्रारम्भ हो जाता है। जन्म लेने के बाद बालक कुछ क्रियायें करने लगता है। इनमें से कुछ क्रियाविशेष का कारण उसकी सहजात रुचि है, जो संचित कर्म के परिणामस्वरूप होती हैं। कुछ क्रियाओं का कारण उसकी स्वतन्त्र इच्छा शक्ति होती है, जिनमें से आंशिक पुराने कर्मों के अधीन सहजात रुचि तथा आंशिक उसमें स्वतन्त्र होती हैं। सहजात रुचि के कारण होने वाली समस्त क्रियायें प्रारब्ध का परिणाम कहलाती हैं। बच्चों की पूर्ण स्वतन्त्रता पर आधारित क्रियायें क्रियमाण का रूप होती हैं। यह क्रियमाण भी संचित एवं प्रारब्ध के मिलाप से उत्पन्न होता है।

ग- क्रियमाण - किए जा रहे अथवा भविष्य में किए जाने वाले समस्त कर्म क्रियमाण कहलाते हैं। स्पष्ट अर्थ किया जाए तो वर्तमान में किये जा रहे कर्म क्रियमाण हैं। क्रियमाण कर्म दो प्रकार के होते हैं। शुभ और अशुभ। जो कर्म शास्त्रानुसार विधि-विधान से किए जाते हैं, वे शुभ कर्म कहलाते हैं। काम, क्रोध, लोभ, आसक्ति आदि को लेकर जो शास्त्र निषिद्ध कर्म किए जाते हैं वे अशुभ कर्म कहलाते हैं। क्रियमाण कर्म भी फल अंश तथा संस्कार अंश भेद से दो प्रकार के माने गये हैं।

फल-अंश – इसके भी दो भेद हैं-दृष्ट और अदृष्ट। इनमें से दृष्ट के भी दो भेद हैं- तात्कालिक एवं कालान्तर। जैसे भोजन करते समय रस की अनुभूति होती है, प्रसन्नता होती है एवं तृप्ति होती है तो यह दृष्ट फल का तात्कालिक उदाहरण है। कुपथ्य के कारण उदर में होने वाले रोग जैसे- उदर में जलन, दुःख इत्यादि कालान्तरित दृष्ट फल होता है।

इसी प्रकार अदृष्ट के भी दो भेद होते हैं लौकिक एवं पारलौकिक। जैसे यज्ञ, दान, तप, तीर्थ, व्रत, मन्त्रजाप आदि का विधान शास्त्रविहित किया जाए तो इसी जन्म में पुत्र, धन, यश, प्रतिष्ठा आदि के रूप में इसका फल मिलने की सम्भावना रहती है, जिसे लौकिक फल के अन्तर्गत

माना जाता है। शास्त्रनिषिद्ध कर्मों के विधान से रोग, निर्धनता आदि प्रतिकूल फल मिलने की सम्भावना भी लौकिक फल के अन्तर्गत ही माना जाता है।

इसी प्रकार इन कर्मों का फल मृत्यु के पश्चात् स्वर्ग की प्राप्ति करवाए तो इसे पारलौकिक फल की श्रेणी में गिना जाता है। इसी प्रकार अनैतिक कार्य करना एवं तत्फलस्वरूप दण्ड की प्राप्ति होना अदृष्ट लौकिक फल है। मृत्यु के पश्चात् यदि इन कर्मों के फल की प्राप्ति होती है तो नरकादि गमन अदृष्ट पारलौकिक फल की श्रेणी के फल कहे गए हैं। यहाँ दृष्ट का कालान्तरित फल एवं अदृष्ट का लौकिक फल दोनों एक समान दिखते हैं लेकिन दोनों में अन्तर है। जो कालान्तरित फल है वह सीधे मिलता है, प्रारब्ध बनकर नहीं। परन्तु जो लौकिक फल है वह प्रारब्ध बनकर ही मिलता है।

संस्कार अंश- क्रियमाण कर्म के संस्कार अंश के भी दो भेद हैं। शुद्ध अथवा पवित्र संस्कार एवं अशुद्ध अथवा अपवित्र संस्कार। शास्त्रविहित कर्म करने से जो संस्कार उत्पन्न होते हैं वे शुद्ध एवं पवित्र कहलाते हैं। इन विभिन्न स्वभावों के कारण ही उनके द्वारा विभिन्न कर्म होते हैं पर वे कर्म दोषी नहीं होते, प्रत्युत सर्वथा शुद्ध होते हैं।

शास्त्रनिषिद्ध नीति एवं लोकमर्यादा से विरुद्ध कर्म करने से जो संस्कार उत्पन्न होते हैं वे अशुद्ध अथवा अपवित्र संस्कार कहलाते हैं। इन दोनों शुद्ध एवं अशुद्ध संस्कारों से स्वभाव एवं प्रकृति जन्म लेती है। संस्कार अंश से जो स्वभाव बनता है, वह एक दृष्टि से महान प्रबल होता है स्वभावो मूर्ध्नि वर्तते अतः उसे मिटाया नहीं जा सकता। इसीलिए भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा गीता में अर्जुन को बताया गया कि – जिस कर्म को तू मोहवश नहीं करना चाहता उसको भी अपने स्वाभाविक कर्म से बँधा हुआ परवश होकर अवश्य करेगा-

स्वभावजेन कौन्तेय़ निबद्धः स्वेन कर्मणा।
कर्तुं नेच्छसि यन्मोहात्करिष्यस्यवशोऽपि तत्।।

2.6 कर्म, रोग और ज्योतिष

धी धृति स्मृति विभ्रष्टः कर्म यत् कुरुतेऽशुभम्।
प्रज्ञापराधं तं विद्यात् सर्वदोषप्रकोपणम्।।

अर्थात् धी (बुद्धि), धृति (धारण करने की क्रिया, गुण या शक्ति/धैर्य) और स्मृति (स्मरण शक्ति) के भ्रष्ट हो जाने पर मनुष्य जब अशुभ कर्म करता है तब सभी शारीरिक और मानसिक दोष प्रकुपित हो जाते हैं। इन अशुभ कर्मों को प्रज्ञापराध कहा जाता है। जो प्रज्ञापराध करेगा उसके शरीर और स्वास्थ्य की हानि होगी और वह रोगग्रस्त हो ही जाएगा।

जन्म-जन्मान्तर में किये गए कर्मों के फल अथवा वर्तमान समय तक किये जा रहे कर्मों के फल संचित फल कहलाते हैं। इसी सन्दर्भ में कुछ संशय होना भी स्वभाविक होता है कि एक जन्म के कर्म उसी जन्म में क्यों नहीं भोगे जा सकते? साथ इसके उत्तर के लिए भी चिन्तन करना होगा कि कैसे जन्म-जन्मान्तर को जानकर उनके कर्मफल पर विचार कर उसे जाना जाए? एक जन्म में समस्त कर्म फल को भोगना सम्भव नहीं है, क्योंकि इन कर्मों के परिणामस्वरूप मिलने वाले फल परस्पर विरोधी हैं। अतः कर्मों के क्रम से ही फल का विधान होता है। कुछ परिभाषाओं में इसे भाग्य की संज्ञा भी दी जाती है।

भारतीय ज्ञान परम्परा दर्शन एवं चिन्तन के आधार पर ही भारत को विश्वगुरु की सत्ता देने का सामर्थ्य रखती है। ज्योतिष शास्त्र में भी दार्शनिक दृष्टि से देखा जाए तो ज्ञान का मापदण्ड

ऋषियों की मेधा एवं दर्शन ही था। भारतीय दर्शन के अनुसार मानव शरीर नश्वर एवं आत्मा अजर –अमर है। मात्र कर्म प्रभाव से ही आत्मा विविध योनियों में शरीर सहित जन्म लेती है। स्वतन्त्र सत्ता रखने वाला आत्म तत्त्व केवल कर्मबन्धन के कारण ही परतन्त्र एवं विनाशी प्रतीत होता है।

संचित-प्रारब्ध एवं क्रियमाण तीनों कर्म वैदिक दर्शन का प्रमुख चिन्तन रहा है। भारतीय ज्योतिष में भी इन्हीं कर्मों के चिन्तन को केन्द्र में रखा गया है। क्योंकि ज्योतिषशास्त्र काल की बात करता है एवं कर्म काल के प्रत्येक क्षण अथवा मानक में कहीं न कहीं स्थिर रहता है। इसी के आधार पर समय और कर्म सम्बन्ध के मध्य मानव उपस्थित रहता है। किसी समय में किया गया कर्म, किसी अन्य अन्तराल में मानव को शुभाशुभ फल की प्राप्ति कैसे करवाता है? यह सम्पूर्ण विषय ज्योतिषशास्त्र के अन्तर्गत आता है।

कर्म सिद्धान्त पर विचार करते हुए त्रिविध कर्मों पर विचार करने के लिए तीन भिन्न-भिन्न पद्धतियों का आश्रय लिया है। फलित शास्त्र में संचित कर्म के फल का विचार आधान कुण्डली एवं जन्मकुण्डली में बने योगों द्वारा, प्रारब्ध के फल का विचार दशाओं द्वारा तथा क्रियमाण के फल का विचार गोचर एवं प्रश्न कुण्डली द्वारा किया जाता है। इसलिए अन्धत्व, काणत्व, मूकत्व, बधिरत्व आदि जन्मजात रोगों का विचार करते समय फलितशास्त्र के आचार्यों ने गर्भाधान एवं जन्मकुण्डली के योगों को ही महत्व दिया है। जन्मजात रोग दशा, अन्तर्दशा या प्रत्यन्तरदशा के विचार की अपेक्षा नहीं रखते। किन्तु वात, पित्त एवं कफ के विपर्यय द्वारा उत्पन्न रोग तथा शरीर के विविध अंगों में उत्पन्न होने वाले विकारों का विचार योगों के साथ दशा, अन्तर्दशा एवं प्रत्यन्तर दशा आदि की भी अपेक्षा रखता है। कारण यह है कि प्रारब्ध संचित का ही एक अंग है। अतः इसका विचार करते समय ज्योतिषशास्त्र के आचार्यों ने योग तथा दशा इन दोनों पद्धतियों का आश्रय लिया है। मिथ्या आहार-विहार आदि के द्वारा उत्पन्न रोगों को क्रियमाण का फल माना जाता है। किन्तु यह क्रियमाण भी संचित एवं प्रारब्ध के मिलाप से उत्पन्न होता है। अतः ऐसे रोगों का विचार करते समय योग एवं दशा के अलावा तात्कालिक गोचरीय ग्रह स्थिति का भी बारीकी से अध्ययन किया जाता है।

कर्म एवं रोग के विषय में सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक दोनों पक्षों को देखना अति महत्त्वपूर्ण हो जाता है। जब ज्योतिषशास्त्र के अन्तर्गत कर्म सिद्धान्त एवं रोगों के विषय में विश्लेषण किया जाता है तो सर्वप्रथम कर्म फल का ही चिन्तन किया जाता है। कर्म ही अनुकूल एवं प्रतिकूल फलों का निर्धारण करता है। ज्योतिषशास्त्र के होरा स्कन्ध में कर्म के आधार पर ही उत्पन्न जातक के रोग प्राप्ति का वर्णन प्राप्त होता है। स्पष्ट है कि पूर्वनिर्धारित कर्म से ही फल उद्घाटित होते हैं। इन्हीं का वर्णन कर ज्योतिष शास्त्र दीपक की भान्ति कर्मपङ्क्ति को दृष्टिगम्य बनाता है। ज्योतिषशास्त्र में ग्रहों की प्रकृति (कफ-वात-पित्त) अनुसार फल का वर्णन प्राप्त होता है। ग्रह सत्व, रज एवं तम गुण वशात् फल देने में सक्षम होते हैं। साथ ही ग्रहों की नैसर्गिक एवं तात्कालिक परिस्थिति का भी विचार किया जाता है। जो अलग-अलग अवस्थाओं एवं कालान्तर में फल को देते हैं।

मानव शरीर में भी तीनों गुणों की मात्रा रहती है। इन्हीं के साथ ग्रहों के संयोगवशात् शरीर में परिवर्तन, रोगादि का आधान भी होता है। जिनमें से कुछ रोग जन्म से अथवा कुछ आयु के विभिन्न वर्गों में प्राप्त होते हैं जिनमें ग्रहों की दशाओं की मुख्य भूमिका रहती है। गीता में भी इन्हीं गुणों एवं प्रकृति को शरीर के साथ स्पष्ट करते हुए कर्म करने की प्रवृत्ति का वर्णन प्राप्त होता है-

सदृशं चेष्टते स्वस्याः प्रकृतेर्ज्ञानवानपि।

प्रकृतिं यान्ति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति।

उक्त श्लोक में प्रकृति एवं गुण के अनुरूप कार्य करने की प्रवृत्ति को स्पष्ट किया गया है। जिसमें कर्माधारित फल भी स्पष्ट हो जाता है। इन्हीं कर्मों के आधार पर ज्योतिषशास्त्र में योगों के आधार पर उत्पन्न रोगों का वर्णन प्राप्त होता है। ज्योतिष शास्त्र के विविध ग्रन्थों में ऐसे योगों का वर्णन है जिसमें स्पष्ट रूप से कर्मसिद्धान्त का स्वरूप देखने को मिलता है। इनमें परजात योग , पङ्गु एवं मूर्ख योग , काण योग , प्लीहा तिल्ली रोग योग , शरीर विकल योग आदि हैं।

मनुष्य के कर्म उसके भाग्य का निर्धारण करते हैं। उनको सही ढंग से प्रभावी बनाने के लिए ग्रहों, नक्षत्रों आदि की स्थिति और उनकी गति भी उन्हीं के अनुरूप बनती है, जिससे हमें उनका फल मिल सके। ग्रह हमारे कर्मों का प्रतिनिधित्व करते हैं। उनकी गति यह निर्धारित करती है कि कब किस समय की ऊर्जा हमारे लिए लाभदायक है या हानिकारक है। त्रिगुणात्मक प्रकृति के द्वारा निर्मित समस्त जगत भी सत्व, रज एवो तमोमय है। ज्योतिषशास्त्र में भी सूर्यादि ग्रहों का इन तीनों गुणों में वर्गीकरण किया गया है। जिन ग्रहों में सत्व गुण अधिक रहता है, उनकी अमृतमय किरणें, जिनमें तमोगुण अधिक रहता है उनकी विषमय-किरणें, जिनमें रजोगुण अधिक रहता है, उनकी उभय गुणमिश्रित किरणें एवं जिनमें तीनों गुणों की अल्पता रहती है, उनकी गुणहीन किरणें मानी गयी हैं। ग्रहों के शुभाशुभत्व का विभाजन भी किरणों के इन्हीं गुणों से हुआ है। आकाश में ग्रहों की गति एवं युति से रश्मियाँ परस्पर मिलती रहती हैं और एक दूसरे के गुणों को प्रभावित करती रहती हैं। रश्मिविश्लेषण का सिद्धांत बतलाता है कि प्रत्येक ग्रह की रश्मियों में स्थान एवं काल विशेष का प्रभाव पड़ता है जिससे उनके गुणों में ह्रास वृद्धि होती रहती है। इसे ही ज्योतिष शास्त्र में स्थानबल, दिक्बल, कालबल, चेष्टा बल आदि कहा जाता है। अतः ग्रहों के शुभाशुभत्व का विचार करते समय उनके बलाबल का विचार भी किया जाता है। वस्तुतः समय की एक निश्चित्त प्रवृत्ति होने के कारण एक कुशल ज्योतिषी उसकी चाल को पहचान कर भूत, वर्तमान और भविष्य में होने वाली घटनाओं का विश्लेषण कर सकता है।

एक ही ग्रह जातकों के विभिन्न स्वरूपों को प्रदर्शित करता है। अपने निम्नतम (अशुभतम) स्वरूप में ग्रह जातक के अशुभ स्वभाव/ राक्षसी प्रवृत्ति को दर्शाते हैं। अपने निम्न (अशुभ) स्वरूप में अस्थिर और स्वेच्छाचारी स्वभाव को बताते हैं। सम (शुभ व अशुभ का मिश्रण) स्वरूप में सम (कभी अच्छी प्रवृत्ति तो कभी कुत्सित) स्वभाव को प्रदर्शित करता है। अपने अच्छे (शुभ) स्वरूप में मन की अच्छी प्रवृत्तियों, ज्ञान, बुद्धि और अच्छी रुचियों के विषय में बताते हैं। अपनी उच्चतम स्थिति में दिव्य गुणों को प्रदर्शित करते हैं और चेतना को परम सत्य से अवगत कराते हैं।

उदाहरण के लिए मंगल ग्रह साधारण रूप में लाल रंग की ऊर्जा का प्रतिनिधित्व करता है। अपनी निम्नतम स्थिति में वह अत्यधिक उपद्रवी बनाता है। निम्न स्थिति में व्यर्थ के झगड़े कराता है। अपनी सही स्थिति में यही मंगल ऐसी शक्ति प्रदान करता है कि असंभव कार्य भी संभव बना देता है। अब इसका अर्थ हुआ कि वे हमारे कर्म के फल ही है जो भाग्य कहलाते हैं और उनको सही रूप से क्रियान्वित करने के लिए जो सटीक गणना या विज्ञान है वही ज्योतिष है।

यदुपचितमन्यजन्मनि शुभाशुभं तस्य कर्मणः पक्तिम् ।
व्यञ्जयति शास्त्रमेतत् तमसि द्रव्याणि दीप इव ॥

होराशास्त्र पिछले जन्मों में किए गए कर्मों के फल के रूप में अर्जित अच्छे और बुरे परिणामों को ठीक उसी तरह प्रकट करती है, जैसे दीपक का प्रकाश अंधेरे में रखी गई वस्तुओं को प्रकट करता है।

आज सामान्य जन ज्योतिषी के पास इसलिए जाता है कि वह कोई ऐसा उपाय बताये कि जिससे उसका भाग्य बदल जाये। जबकि वास्तविकता यह है कि भाग्य कभी बदला नहीं जा सकता। केवल अच्छे के प्रभाव को बढ़ा कर बुरे के असर को कम किया जा सकता है। कर्म एक सतत और सर्वकालिक प्रक्रिया है, जिस प्रकार पिछले कर्मों का फल सुख-दुःख के रूप में भोगते हैं, वही आगे भी होना है अतः कर्म का ध्यान रखना चाहिए।

अभ्यास प्रश्न –

21. त्रिविध कर्म कौन कौन से हैं?
22. सञ्चित कर्म की परिभाषा लिखिए।
23. सञ्चित कर्म कितने प्रकार के होते हैं ?
24. सञ्चित कर्म के फल अंश और संस्कार अंश से क्या होता है?
25. इन संचित कर्मों का फल मनुष्य को किस प्रकार प्राप्त होता है?
26. प्रारब्ध कर्मों से क्या अभिप्राय है?
27. सञ्चित कर्म का स्वप्नावस्था से क्या सम्बन्ध है
28. प्रारब्ध कर्मों को भोगने के निए प्राणियों की प्रवृत्ति कितने प्रकार व कौन कौन सी होती हैं?
29. प्रारब्ध कर्म से मिलने वाले फल के दो भेद कौन कौन से होते हैं ?
30. क्रियमाण किन के मिलाप से उत्पन्न होता है?
31. क्रियमाण कर्म की परिभाषा लिखिए।
32. शुभ कर्म कौन से कहलाते हैं?
33. लौकिक एवं पारलौकिक कर्मफल में क्या अन्तर है?
34. क्रियमाण कर्म के भेदोपभेदों वर्णन कीजिए।
35. शास्त्रनिषिद्ध कर्म कौन सी श्रेणी के कर्म होते हैं?
36. क्रियमाण कर्मों के फल अंश के कितने भेद हैं?
37. प्रज्ञापराध किसे कहा जाता है?
38. ज्योतिषशास्त्र में प्रारब्ध के फल का विचार किस माध्यम से किया जाता है?
39. गोचर से क्या अभिप्राय है?
40. यदुपचितमन्यजन्मनि शुभाशुभं तस्य कर्मणः पङ्क्तिम् इस का आशय स्पष्ट कीजिए।
41. मानव शरीर में तीन प्रकार की प्रकृति के नाम लिखिए।
42. कर्मसिद्धान्त के अनुसार होने वाले मुख्य रोगों के नाम लिखिए।

2.7- सारांश –

वह कृत्य जो फल को उत्पन्न करने में समर्थ हो, उसे कर्म कहते हैं। जीव जो भी सुख-दुःख भोगता है, वह उसके कर्मों का फल है। जब तक व्यक्ति में अविद्या आदि क्लेश रहते हैं, तब तक उन अविद्या आदि क्लेशों से प्रेरित होकर वह जो भी अच्छे-बुरे कर्म करता है, उनका फल उसे मनुष्यादि जाति, आयु और भोग के रूप में मिलता है। भोग को बढ़ाना व कम करना व्यक्ति के अपने अधिकार में है। आलस्य, प्रमाद, दुर्गुणों और दुर्व्यसनों के कारण व्यक्ति प्राप्त सुख-सम्पदा को नष्ट-भ्रष्ट कर लेता है। दूसरी ओर पुरुषार्थ से, सात्विक जीवन शैली से व्यक्ति प्रचुर मात्रा में धन और ऐश्वर्य का स्वामी बन जाता है। यह विश्व कर्मप्रधान है। वेद उपनिषद और गीता सभी कर्म को

कर्तव्य मानते हुए इसके महत्व को बताते हैं। कर्म के आधार पर चातुर्वर्ण्य (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र) को बांटा गया है। मनुष्य का कर्म पर ही अधिकार व नियन्त्रण है, उसके फल पर उसका नियन्त्रण नहीं है। दर्शनशास्त्रों में कर्म के फल के साथ कर्म के परिणाम और प्रभाव को भी अत्यंत महत्वपूर्ण समझा गया है। कर्म की निकटतम प्रतिक्रिया परिणाम है और परिणाम को जानकर जो मानसिक सुख-दुःख, भय और शिक्षा का मिलना है, वह प्रभाव है। कर्म तीन तरह के होते हैं – संचित, प्रारब्ध और क्रियमाण। वर्तमान से पहले इस जन्म में और पूर्व जन्मों में किये शुभ व अशुभ कर्म का संग्रह संचित कर्म है। संचित कर्म में से जो कर्म फल देने के लिए प्रस्तुत हो गये हैं अर्थात् जन्म, आयु और अनुकूल परिस्थिति में परिणत होने के लिए सम्मुख आ गये हैं, वे प्रारब्ध कर्म हैं तथा अभी वर्तमान में जो कर्म किये जा रहे हैं, वे क्रियमाण कर्म होते हैं। ज्योतिष शास्त्र में संचित कर्म के फल का विचार आधान कुण्डली एवं जन्मकुण्डली में बने योगों द्वारा, प्रारब्ध के फल का विचार दशाओं द्वारा तथा क्रियमाण के फल का विचार गोचर एवं प्रश्न कुण्डली द्वारा किया जाता है। हमारे कर्म के फल ही है जो भाग्य कहलाते हैं और उनको सही रूप से क्रियान्वित करने के लिए जो सटीक गणना या विज्ञान है वही ज्योतिष है।

2.8- कठिनशब्द-

आर्षग्रन्थ	-	ऋषिप्रणीत ग्रन्थ
जीव	-	प्राणी, देहधारी
अल्पज्ञ	-	कम ज्ञान वाला
सर्वज्ञ	-	सब कुछ जानने वाला
अकारण	-	विना कारण के
स्वज्योति	-	अपने प्रकाश से
चलायमान	-	स्थिर न रहने वाला, गतिशील
अवस्थिति	-	स्थिति का होना
जन्मान्तर	-	पूर्व जन्म
विहित	-	किये गये
अवधारणा	-	विचार, सुविचारित धारणा
धातु	-	पदार्थ या शब्द का मूल तत्त्व
विधि	-	नियम
अविद्या	-	परम ज्ञान (विद्या) का अभाव
परिवेश	-	वातावरण
असाध्य	-	जिनको साध नहीं सकते अथवा जिनकी चिकित्सा नहीं हो सकती
प्रमाद	-	मद, अनवधानता, असावधानी
दुर्व्यसन	-	बुरी आदतें
नष्ट-भ्रष्ट	-	नाश
पुरुषार्थ	-	मनुष्योचित बल, पौरुष
सात्विक	-	सत्त्वगुण सम्पन्न
प्रचुर मात्रा	-	बहुत अधिक मात्रा में
क्रियमाण	-	किये जाने वाले

चेष्टा	-	प्रयत्न
अनिवार्य	-	अटल, जिसका निवारण न हो सके
नैसर्गिक	-	प्राकृतिक
सहकारी	-	साथ कार्य करने सम्बन्धी, सहकार सम्बन्धी
समुच्चय	-	समूह, राशि
तादात्म्य	-	तल्लीनता
संचित	-	एकत्रित
प्रारब्ध	-	भाग्य
परिणत	-	झुकाया हुआ, परिवर्तित
निष्काम	-	निर्लिप्त, वासना या कामना से रहित
विचलित	-	डिग जाना
तृष्णा	-	प्यास, चाह, इच्छा
सुगमता	-	अच्छे प्रकार से समझने लायक, सरल मार्ग
प्रतिक्रिया	-	क्रिया के विरोध में होने वाली घटना, प्रतिकार
परिणाम	-	फल
आधिभौतिक	-	पंच महाभूतों से सम्बन्धित, सांसारिक
अतिवृष्टि	-	अत्यधिक वर्षा का होना
क्षतिपूर्ति	-	घाटा पूरा होना, नुकसान की भरपाई
जीवात्मा	-	प्राणी
सामर्थ्य	-	योग्यता, शक्ति, समर्थ होने का भाव
न्यायसंगत	-	समुचित, न्याय के आधार पर युक्तियुक्त
अनुचित	-	ठीक नही
सर्वव्यापक	-	सभी स्थानों में फैला या व्याप्त
साक्षी	-	गवाह
विलंब	-	देर
अटल	-	ध्रुव, जो टल नही सकता
प्रति क्षण	-	हर एक समय
निमग्न	-	डूबा हुआ
अन्तः करण	-	हृदय में, भीतर
स्फुरणा	-	धडकना, फडकना, अचानक स्मरण होना, उदित होना
दृष्टान्त	-	उदाहरण
उन्मुख	-	मुँह ऊपर की ओर उठाये हुए, तैयार
अनुकूल	-	मनोवाञ्छित, अनुरूप
प्रवृत्ति	-	निरन्तर प्रगमन, उदय, प्रवाह, व्यवहार
बाध्य	-	कष्ट देना, मजबूर करना
सहजात	-	साथ में उत्पन्न
निषिद्ध	-	वर्जित,मना करना
प्रत्युत	-	इसके विपरीत, बल्कि

सर्वथा	-	सभी प्रकार से
लोकमर्यादा	-	समाज के व्यवस्थित नियम
मेधा	-	धारणाशक्ति, बुद्धि
नश्वर	-	नष्ट होने वाला
विविध	-	अनेक प्रकार के
आधान	-	गर्भ का आधान, बीजारोपण
गोचर	-	तात्कालिक ग्रहस्थिति
विपर्यय	-	विपरीत
उद्घाटित	-	खुलना
रश्मि	-	किरण

2.9- अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1-कृ धातु से कर्मन् शब्द की उत्पत्ति है, जिसका प्रथमा विभक्ति एकवचन में कर्म शब्द बनता है।
2-हिरण्य के मतानुसार विधि द्वारा निर्दिष्ट को करना ही कर्म है।
3-स्वामी दयानंद सरस्वतीजी के अनुसार - "जीवात्मा मन, वाणी और शरीर से जो चेष्टा विशेष करता है, उसे कर्म कहते हैं।"
4-महर्षि पतञ्जलि।
5-कर्म को।
6-पुरुष और प्रकृति।
7-कर्म तीन तरह के होते हैं।
8-कोई भी मनुष्य कभी क्षण मात्र भी कर्म किये बिना नहीं रह सकता है।
9-सत्त्व, रज और तम।
10- ज्ञानियों में।
11- गुण और कर्म।
12- गीता में तीन प्रकार के कर्म विवेचित हैं –कर्म, अकर्म और विकर्म।
13- कर्मों का संग्रह तीन प्रकार से होता है- करण, कर्म और कर्ता।
14- गीता में भगवान श्रीकृष्ण का।
15- कर्म की निकटतम प्रतिक्रिया परिणाम है।
16- परिणाम को जानकर जो मानसिक सुख-दुःख, भय और शिक्षा मिलती है, वह प्रभाव है।
17- कर्ता उसे कहते हैं, जो कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं समर्थ हो। चाहे तो करे, चाहे तो न करे अथवा विपरीत करे।
18- कर्मफल भोगने में।
19- ईश्वर।
20- शुभ या अशुभ किये गये कर्म का फल तो अवश्य ही भोगना पड़ता है।
21- संचित, प्रारब्ध और क्रियमाण।
22- पूर्व जन्म के समस्त कर्म एवं वर्तमान क्षण तक किए गए समस्त कर्मो का संग्रह को ही संचित कर्म कहा जाता है। मनुष्य के अनेक जन्मों में किए हुए जो कर्म अन्तः करण में संग्रहीत रहते हैं वे सञ्चित कर्म कहलाते हैं।

23- सञ्चित कर्म भी फल-अंश और संस्कार- अंश के रूप में दो प्रकार के होते हैं।

24- सञ्चित कर्म के फल अंश से तो प्रारब्ध बनता है और संस्कार अंश से स्फुरणा होती रहती है।

25- इन संचित कर्मों का फल मनुष्य को एक विशेष प्रकार के वातावरण में, विशेष प्रकार की रूपरेखा आकृति तथा विशेष मनोवृत्तियों के साथ एक परिवार विशेष में जन्म लेने के रूप में प्राप्त होता है।

26- जब नींद आती है तो उसमें भी स्फुरणा होती है। नींद में जाग्रत अवस्था के दब जाने के कारण सञ्चित की वह स्फुरणा स्वप्न रूप में दिखने लगती है जिसे स्वप्नावस्था कहते हैं।

27- सञ्चित में जो कर्म फल देने के लिए सम्मुख होते हैं, उन पर कर्मों को प्रारब्ध कर्म कहते हैं।

28- प्रारब्ध कर्मों को भोगने के निए प्राणियों की प्रवृत्ति तीन प्रकार से होती है- 1. स्वेच्छापूर्वक 2.अनिच्छा (दैवेच्छा) 3.परेच्छापूर्वक।

29- प्रारब्ध कर्म से मिलने वाले फल के दो भेद होते हैं – प्राप्त फल एवं अप्राप्त फल।

30- क्रियमाण संचित एवं प्रारब्ध के मिलाप से उत्पन्न होता है।

31- किए जा रहे अथवा भविष्य में किए जाने वाले समस्त कर्म क्रियमाण कहलाते हैं। अर्थात् वर्तमान में किए जा रहे कर्म क्रियमाण कर्म कहलाते हैं।

32- जो कर्म शास्त्रानुसार विधि-विधान से किए जाते हैं, वे शुभ कर्म कहलाते हैं।

33- जन्म पश्चात् किए गए यज्ञ-दानादि कर्मों के फल की प्राप्ति मृत्यु से पहले होना लौकिक एवं मृत्यु पश्चात् स्वर्गादि की प्राप्ति पारलौकिक कर्मफल होते हैं।

34- क्रियमाण कर्म के शुभ एवं अशुभ दो भेद हैं। जिनके फल-अंश एवं संस्कार-अंश उपभेद होते हैं।

35- शास्त्रनिषिद्ध कर्म अशुद्ध अथवा अपवित्र अंश फल कहलाते हैं।

36- इसके दो भेद हैं-दृष्ट और अदृष्ट।

37- धी (बुद्धि), धृति (धारण करने की क्रिया, गुण या शक्ति/धैर्य) और स्मृति (स्मरण शक्ति) के भ्रष्ट हो जाने पर मनुष्य जब अशुभ कर्म करता है तब इन अशुभ कर्मों को प्रज्ञापराध कहा जाता है।

38- ज्योतिषशास्त्र में प्रारब्ध के फल का विचार दशाओं के माध्यम से किया जाता है।

39- ग्रहों का तात्कालिक स्थिति गोचर कहलाती है।

40- पूर्वार्जित कर्मफल से ही जातक शुभाशुभ फल की प्राप्ति करता है।

41- मानव शरीर में कफ- पित्त एवं वात तीन प्रकार की प्रकृति होती है।

42- परजात योग, पङ्गु एवं मूर्ख योग, काण योग, प्लीहा तिल्ली रोग योग, शरीर विकल योग।

2.10- व्याख्यात्मक प्रश्न-

1- विभिन्न मतों से कर्म की परिभाषा देते हुए इसकी अवधारणा स्पष्ट करें।

2- गीता में कर्म की विवेचना पर प्रकाश डालिए।

3- दार्शनिक दृष्टि से कर्मफल की विवेचना कीजिए।

4- कर्म के प्रभेदों पर विस्तृत निबन्ध लिखिए।

5- संचित कर्म की अवधारणा पर चर्चा कीजिए।
6- प्रारब्ध कर्म क्या है? सुविस्तृत प्रकाश डालिए।
7- क्रियमाण कर्मफल का वर्णन कीजिए।
8- कर्म एवं रोग के सम्बन्ध पर चर्चा कीजिए।
9- कर्म, रोग एवं ज्योतिष पर निबन्ध लिखिए।
10- कर्मफलसिद्धान्त पर सुविस्तृत आलेख लिखिए।

2.11- सन्दर्भ सहायक ग्रन्थ सूची-

1- ज्योतिष शास्त्र में रोग विचार-डॉ. शुकदेव चतुर्वेदी-मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1992
2- कर्मरहस्य – स्वामी रामसुखदास- गीताप्रेस गोरखपुर
3- आर्योद्देश्यरत्नमाला – स्वामी दयानन्द सरस्वती-परोपकारिणी सभा, 1873
4- योग दर्शन- गीताप्रेस गोरखपुर
5- यजुर्वेद- सम्पा. रेखा व्यास- संस्कृत साहित्य प्रकाशन, दिल्ली, 2015
6- श्रीरामचरितमानस- गीताप्रेस गोरखपुर
7- श्रीमद्भगवद्गीता- गीताप्रेस गोरखपुर
8- नारदपुराण – प्रकाशक खेमराज श्रीकृष्णदास, श्रीवेंकटेश्वरप्रैस, मुम्बई
9- चरक संहिता- सम्पा. पी वी शर्मा- चौखम्भा ओरियेन्टालिया वाराणसी, 1998
10- जातकालङ्कार- सम्पा.स्व. पं. सीताराम झा- मास्टर खेलाडीराम एण्ड सन्स, वाराणसी
11- बृहज्जातक- सम्पा. केदारदत्त जोशी- मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी 2016
12- लघुजातक- सम्पा. के एस.चरक-यू एम ए पब्लिकेसन्स, दिल्ली, 2008
13- जातकतत्त्वम् - दैवज्ञ महादेव शर्मा- भुवनेश्वरी यंत्रालय, रतलाम, सन् 1915
14- संस्कृत हिन्दी कोश- वामन शिवराम आप्टे- मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 2001

इकाई-03 योगों पर आधारित फल

इकाई की रूपरेखा
3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 योग अर्थ एवं परिभाषा
3.4 ग्रह-राशि एवं भावों का परिचय
    3.4.1 ग्रह
    3.4.2 राशि
    3.4.3 भाव
अभ्यास प्रश्न
3.5 रोगकारक प्रमुख योग
    3.5.1 सहज रोग
    3.5.2 दृष्टनिमित्तजन्य (आकस्मिक) रोग
    3.5.3 अदृष्टनिमित्तजन्य शारीरिक रोग
    3.5.4 वातपित्तादि विकार से उत्पन्न रोग
    3.5.5 मानसिक रोग
3.6 अरिष्टयोग
3.7 अरिष्टभङ्ग योग
अभ्यास प्रश्न
3.8 सारांश
3.9 शब्दावली
3.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.11 निबन्धात्मक प्रश्न
3.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

3.1 प्रस्तावना

आप जानते ही हैं कि ज्योतिषशास्त्र के आधार ग्रह एवं नक्षत्र ही, शुभाशुभ फल के सूचक हैं। मूलतः ज्योतिषशास्त्र ग्रहादिकों के आधार पर शुभाशुभ कर्मों के फल का बोध करवाने वाला शास्त्र ही है। ज्योतिषां ग्रहनक्षत्राणां बोधकं शास्त्रं ज्यौतिषम्। ग्रह शुभाशुभ फल का निरूपण करने में कारक होते हैं अथवा सूचक यह तो ज्योतिष के मर्म का विषय है। जहाँ एक ओर ग्रह व नक्षत्र फल को उत्पन्न करने में सक्षम कहे जाते हैं तो दूसरी ओर जनमानस को प्रभावित करने व होने वाली घटनाओं के सूचक भी। उदाहरण के लिए सूर्य ग्रह को देखा जाए तो सूर्य अलग अलग स्थिति अथवा राशि में स्थित होने से काल नियामक होने के साथ साथ फल का कारक भी हो जाता है। मकर, मिथुन, मेष अथवा तुला राशि के सङ्क्रमण में सूर्य का फल प्रत्यक्ष भी किया जाता है जो पूर्णतया उसकी स्थिति पर आधारित है। यहाँ राशि से अभिप्राय अश्विन्यादि नक्षत्रों के समूह से है जिसमें प्रत्येक ग्रह के सङ्क्रमण होने पर पृथक् पृथक् फल का विवेचन ज्योतिषशास्त्र में वर्णित है।

योग अथवा योगों से उत्पन्न होने वाला फल सूर्य, चन्द्र इत्यादि ग्रहों के राशि में स्थिति अथवा ग्रहों के परस्पर संयोग होने वाले फल से है। इसी विषय को केन्द्र मानकर विभिन्न योगों पर आधारित फल का विस्तार से यहाँ विवेचन किया जा रहा है। प्रस्तुत पाठ में आप ज्योतिषीय दृष्टिकोण से कर्मफल पर आधारित रोग के योगों के विषय में विस्तृत अध्ययन कर सकेंगे।

3. 2 उद्देश्य-

1. पाठकगण योग का अर्थ जानने व योग को परिभाषित करने में सक्षम होंगें।
2. ग्रह, राशि व भाव के अन्तः सम्बन्ध को समझने में समर्थ होंगें।
3. अरिष्ट योगों के लक्षण व उनको परिभाषित कर सकेंगें।
4. शुभाशुभ योगों के लक्षण व फल को जान सकेंगें।
5. कर्मफल पर आधारित रोग के योगों पर चर्चा कर सकेंगे।
6. कुण्डली के माध्यम से योगों को स्पष्ट व परिभाषित कर सकेंगें।
7. योगों के फल का समय ज्ञान कर सकेंगें।

3.3 योग- अर्थ एवं परिभाषा

योग का सामान्य अर्थ जोड़ से है। जोड़ अर्थात् ग्रहों या नक्षत्रों अथवा राशि का जोड़। जब कोई एक या एक से अधिक ग्रह किसी राशि अथवा नक्षत्र में परस्पर युति- दृष्टि अथवा स्थित को प्राप्त करते हैं तो उसे उन ग्रहों का योग कहा जाता है। जिनके फलस्वरूप उत्पन्न होने वाला शुभाशुभ फल जनसामान्य को प्रभावित करता है। नौ ग्रहों, बारह राशियों, सत्ताईस नक्षत्रों तथा 12 भावों के परस्पर सम्बन्ध से नाना प्रकार के योगों का वर्णन ज्योतिषशास्त्र में प्राप्त होता है। प्रायः इनकी स्थिति का सूक्ष्मतया अध्ययन कर ही विविध प्रकार के योगों के फलकथन में सक्षमता होती है।

3.4 ग्रह, राशि एवं भावों का परिचय

ग्रहों से जनित फल ज्ञान हेतु कुण्डली निर्माण कर भावों में राशि एवं ग्रह स्थिति का अवलोकन कर ही फलकथन किया जाता है। जिसमें यथार्थ फलकथन हेतु ग्रह, राशि एवं भावों का परिचय जानना बहुत आवश्यक है। इसमें ग्रहों अथवा राशियों व भावों से सम्बन्धित विषयों का ज्ञान भी आवश्यक है।

3.4.1 ग्रह

भारतीय ज्योतिष में सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु एवं केतु इन नौ ग्रहों को स्थान दिया गया है। खगोल में इन ग्रहों की स्थिति वशात् उत्पन्न होने वाला फल प्रत्येक प्राणी को प्रभावित करता है। जिससे जीवन में होने वाली घटनाओं के सूचक यह ग्रह होते हैं। ग्रहों की प्रकृति के अनुसार ही उनका फल भी होता है। ग्रहों का राशियों में भ्रमण करना व राशि स्थान भेद से फल में परिवर्तन की प्रक्रिया को समझना ही ज्योतिषशास्त्र का मर्म है। जिसमें ग्रहों की अहम भूमिका होती है। उत्पत्ति के समय जिन-जिन ग्रहों की प्रधानता होती है, जातक का स्वभाव वैसा ही बन जाता है-

एते ग्रहाः बलिष्ठाः प्रसूतिकाले नृणां स्वमूर्तिसमम्।
कुर्युर्देहं नियतं बहवश्च समागता मिश्रम्।।

भारतीय ज्योतिर्विदों का अभिमत है कि मानव जिस नक्षत्र-ग्रह वातावरण के तत्त्व-प्रभाव विशेष में उत्पन्न एवं पोषित होता है, उसमें उसी तत्त्व की विशेषता रहती है। इसी आधार पर ग्रहों के शुभाशुभत्व का निरीक्षण कर उनसे उत्पन्न होने वाले योगों का फलकथन किया जाता है।
रोगविचार की दृष्टि से जातकपारिजात में सूर्यजनित रोग इस प्रकार कहे गये हैं-

सदाग्निरोगज्वरवृद्धिदीपनक्षयातिसारादिकरोगसंकुलम्।

इसी प्रकार जातकपारिजात में चन्द्रादि ग्रहों द्वारा सम्भावित रोगों के बारे में विस्तार से वर्णन मिलता है। फलदीपिका, गदावली आदि ग्रन्थों में इस सन्दर्भ में सुविस्तृत वर्णन है। संक्षेप में सूर्यादि ग्रह रोगकारक या अरिष्टकारक होने पर निम्न प्रकार के रोगों से कष्ट देते हैं –

सूर्य - अग्निदाह, उष्णज्वर, पित्त, क्षोभ, जलन, ब्रेन हैमरेज इत्यादि
चन्द्र - विषूचिका, जलोदर, प्ल्यूरेसी या अन्य बीमारी जिसमें शरीर में कहीं जल इकट्ठा हो
जाये, तपेदिक एवं निम्न रक्त चाप।
मंगल - जलना, दुर्घटना, रक्तविकार, बवासीर, सूजाक, अतिसार, संग्रहणी, अधिक
रक्तचाप, बिजली का करेण्ट लगना।
बुध - पाण्डु, भ्रान्ति, यकृतरोग एवं त्रिदोष
गुरु - कफविकार, (उदररोग, पाचनतन्त्र में गड़बड़ी एवं पीलियारोग)
शुक्र - वीर्यविकार, प्रमेह, मधुमेह एवं अन्य मूत्ररोग
शनि - सन्निपात, वातज रोग (लकवा, फालिस आदि) एवं कैंसर, (स्नायुविकार)
राहु - कुष्ठ, छूतरोग, विष तथा कीटाणुरोग एवं सर्पदंश
केतु - आकस्मिक दुर्घटना, सेप्टिक, हृदयगति रुकना, विषाक्त जीवाणुओं जनित रोग

3.4.2 राशि

नक्षत्राणां समूहः राशिः। नक्षत्रों के समूह को राशि कहा जाता है। मेषादि बारह राशियाँ राशि चक्र में विद्यमान हैं, जो कुण्डली में प्रत्येक भाव में स्थित होकर फल देने में सहायक होतीं हैं। प्रत्येक राशि में 30 अंश होते हैं। $12 \times 30 = 360$ अंश का एक राशि चक्र बनता है। जैसा कि

आप पूर्व में पढ़ चुके हैं कि 6वें भाव में पापप्रभाववश राशियाँ भी निम्नप्रकार से रोगकारक हो जाती हैं-

राशियां	रोग
मेष	पित्तज्वर, उष्णता, तृष्णा, दाह, व्रण, स्फोट, अग्निभय, लू लगना एवं जठराग्नि सम्बन्धी रोग
वृषभ	त्रिदोषजन्य रोग, सन्निपात, नपुंसकता एवं अग्निदाह (जलना)
मिथुन	श्वास, कास, दमा, उष्णशूल एवं कामुकता (पित्तजन्य तीव्रदर्द)|
कर्क	पागलपन, उन्माद, वातरोग एवं अरुचि।
सिंह	ज्वर, स्फोट, शिरशूल एवं स्नायविक तनाव ।-
कन्या	स्त्रियों के कारण गुप्त रोग
तुला	धीज्वर, सन्निपात, प्रमेह, शरीर का सन्तुलन न बनने के कारण गिरना आदि ।
वृश्चिक	प्लीहा, तिल्ली, संग्रहणी एवं पाण्डु रोग ।
धनु	आन्त्र विकार, पेड़ से गिरना, पैर एवं कमर में चोट
मकर	शूल पेट में फोडा (एपिण्डीसाइटिज-पेटदर्द), अरुचि, मन्दाग्नि, बुद्धिश्रम एवं स्नायविक रोग
कुम्भ	खांसी, ज्वर, (कफज (, प्रतिश्याय एवं क्षय (इन्फ्लूएंजा)|
मीन	जलोदर, कफ एवं शीत विकार ।

3.4.3 भाव

कुण्डली में तन्वादि द्वादश भाव होते हैं। भावों में राशियों व ग्रहों की स्थितिवशात् उनसे प्राप्त फल ज्ञात किया जाता है। भाव में स्थित राशि का स्वामी उस भाव का स्वामी कहा जाता है, जिसे भावेश कहा जाता है। लग्न का स्वामी लग्नेश, द्वितीय भाव का स्वामी द्वितीयेश, व तृतीय भाव का स्वामी तृतीयेश कहा जाता है। इसी तरह अन्य भावों से भी ज्ञात करना चाहिए। भावों की कुछ संज्ञाएँ होती हैं जैसे त्रिकोण (5,9 स्थान)- त्रिक (6,8,12 स्थान)- केन्द्र (1,4,7,10 स्थान)- उपचय (3, 6, 10 11 स्थान) इत्यादि। भाव अपनी संज्ञावशात् फल में न्यूनता व अधिकता देने में सक्षम होते हैं। इसी तरह ग्रह, राशि व भावों की संज्ञाओं की भूमिका भी योगजन्य फल को दर्शाने में अपनी भूमिका निभाते हैं।

आप अध्ययन कर चुके हैं कि षष्ठ स्थान रोग का स्थान है, अतः षष्ठेश रोगप्रद होता है। ग्रह छठें स्थान में स्थित होकर स्वयं की प्रकृति एवं कारकत्व के अनुसार रोग देता है। जैसे- षष्ठ स्थान में स्थित चन्द्रमा कफ विकार, शीतज्वर एवं नेत्र विकार करता है। षष्ठभाव पर पाप-प्रभाव रोग उत्पन्न नहीं होने देता। किन्तु शुभ प्रभाव रोगोत्पत्ति में सहज वृद्धि कारक माना गया है। इसी प्रकार अष्टम एवं व्यय स्थान रोग कारक स्थान है, अतः इनके स्वामी ग्रह भी रोग-कारक होते हैं। अन्य लग्नादि भाव तथा मेषादि राशियाँ पापग्रहों के मध्य रहने से, पापग्रहों से युति या दृष्टि सम्बन्ध

रखने से, त्रिक स्थान से सम्बन्ध रखने से, राशिस्वामी के अशुभ स्थान में रहने से, भाव राशि या इनके स्वामियों के बलहीन होने से, भाव से चौथे, आठवें एवं बारहवें स्थान में या त्रिकोण स्थान में पापग्रहों के होने से, रोग कारकग्रहों से सम्बन्ध होने से तथा शुभग्रहों के प्रभाव से मुक्त होने से रोगकारक बनती हैं।

अभ्यास प्रश्न

1. योग का अर्थ व परिभाषा को स्पष्ट कीजिए।
2. ज्योतिष के अनुसार ग्रहों की संख्या कितनी है?
3. राशि किसे कहते हैं?
4. एक राशि में कितने अंश होते हैं?
5. कुण्डली में भावों की संख्या कितनी होती है?
6. रोगकारक होने पर सूर्यजनित रोग कौन कौन से हैं?
7. त्रिदोषकारक ग्रह कौन है?
8. लग्नादि भाव तथा मेषादि राशियाँ किन कारणों से रोगकारक बनती हैं?

3.5 रोगकारक प्रमुख योग –

जैसा कि आप पहले अध्ययन कर चुके हैं कि ज्योतिषशास्त्र में रोगों का विचार करने के लिए उसको मुख्य रूप से दो भागों में विभक्त किया गया है – सहज या जन्मजात रोग तथा आगन्तुक रोग। पुनः इन्हें निम्नलिखित प्रकार से बाँटा गया है –

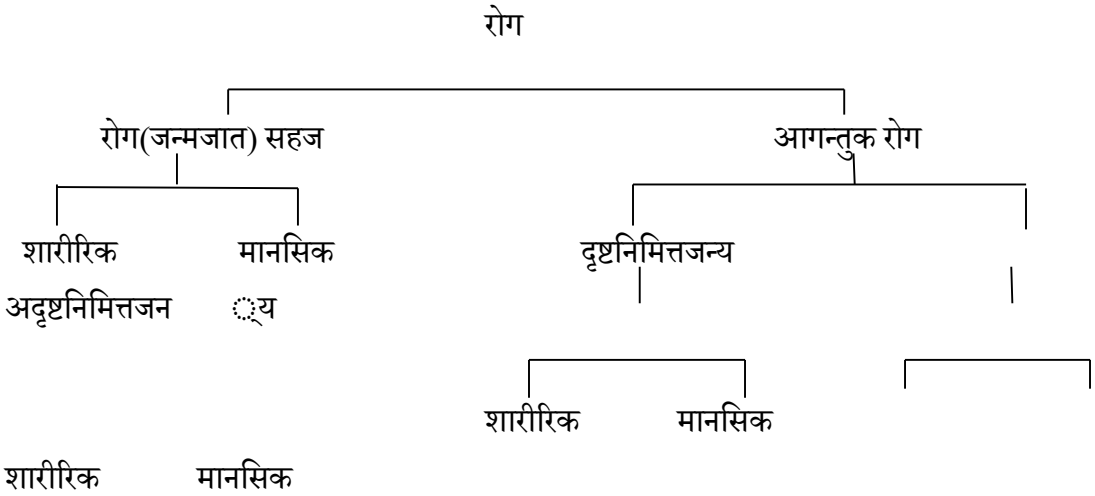

अब इन रोगों के योगों पर सुविस्तृत अध्ययन करते हैं।

3.5.1 सहज रोग –

जैसा कि आप जानते हैं कि सहज रोगों को जन्मजात रोग भी कहते हैं। सहज रोगों के दो भेद होते हैं-१-- शारीरिक तथा २-मानसिक । लूलापन, लंगड़ापन, कुबड़ापन, अन्धत्व, मूकत्व, बधिरत्व, नपुंसकत्व. हीनांग एवं अधिकांग आदि कुछ शारीरिक रोग जन्मजात होते हैं। जड़ता, उन्माद एवं पागलपन आदि कुछ मानसिक रोग भी जन्मजात होते हैं। जन्मजात रोगों का कारण जातक का पूर्वजन्मकृत कर्म एवं माता-पिता द्वारा किया गया कर्म माना गया है। अतः ज्योतिष शास्त्र में जन्मजात रोगों का विचार गर्भाधान कुण्डली एवं जन्मकुण्डली से किया जाता है। कुण्डली में बनने वाले सहजरोगों के कुछ महत्वपूर्ण योगों का अब अध्ययन करते हैं ।

1-लूलापन (बाहुहीनता) –

(क)-दिन में जन्म हो, शुक्र चतुर्थभाव में और शनि, मंगल, बुध व गुरु एक साथ हों।

(ख)- शनि व मंगल षष्ठभाव में राहु के भाग्यांश हों।

(ग)- षष्ठस्थान में शत्रुराशिगत शनि शुक्र के साथ हो।

(घ)- सूर्य, चन्द्र व शनि षष्ठ या अष्टम भाव में हो।

2- लंगड़ापन (पंगुत्व) –

(क)- गर्भाधान कुण्डली में लग्नस्थ मीनराशि पर चन्द्र, मंगल व शनि की दृष्टि हो।

(ख)- जन्मकुण्डली में चन्द्र एवं शनि पापग्रहों के साथ मीन, वृश्चिक, मेष, कर्क या मकर राशि में हों।

(ग)- चन्द्र एवं शनि पापग्रहों के साथ पंचम या नवम भाव में हों।

(घ)- पापग्रहों से दृष्ट शनि एवं षष्ठेश बारहवें भाव में हों।

(ङ)- षष्ठ भाव में सूर्य, मंगल व शनि हों।

(च)-मीनराशि, 12वें भाव तथा शनि पर पापग्रहों का प्रभाव हो या षष्ठ भाव से सम्बन्ध हो।

3- कुबड़ापन -

(क)- गर्भाधान कुण्डली में शनि व मंगल से दृष्ट चन्द्र कर्क लग्न में हो।

(ख)- जन्मकुण्डली में लग्नेश चतुर्थ भाव में मेष या वृश्चिक राशि में स्थित होकर वृश्चिक के नवांश में हो।

4- हीनांगयोग –

गर्भाधान कुण्डली में हीनांग योग -

(क) लग्न में मंगल का द्रेष्काण हो तथा उस पर पापग्रहों की दृष्टि हो तो सिर नहीं होता।

(ख) पंचम भाव में मंगल का द्रेष्काण हो तथा उस पर पापग्रहों की दृष्टि हो तो हाथ नहीं होता।

(ग) नवम भाव में मंगल का द्रेष्काण हो तथा उस पर पापग्रहों की दृष्टि हो तो पैर नहीं होता।

(घ) लग्न से दशम चन्द्र, सप्तम मंगल, द्वितीय सूर्य हो।

(ङ) राहु या मंगल के साथ निर्बल शनि सप्तम भाव में हो।

(च) लग्न में पापग्रहों से दृष्ट बुध या शनि हो।

जन्मकुण्डली में हीनांग योग इस प्रकार से होते हैं-

(क)- पंचम भाव में पापग्रहों से दृष्ट मंगल हो।

(ख)- नवम भाव में पापग्रहों से दृष्ट मंगल हो।

5- जन्मान्धयोग –

गर्भाधान कुण्डली में जन्मान्ध योग -

(क)- मंगल व शनि से दृष्ट सूर्य व चन्द्र सिंह लग्न में हों।

(ख)- बारहवें भाव में सूर्य व चन्द्र हों।

(ग)- एक साथ स्थित सूर्य व चन्द्र से षष्ठ ,अष्टम या द्वादश भाव में द्वितीयेश मंगल स्थित हो।

जन्मकुण्डली में जन्मान्ध योग इस प्रकार से होते हैं-

क)- सूर्य, शुक्र एवं लग्नेश के साथ द्वितीयेश षष्ठ ,अष्टम या द्वादश भाव में हो।

ख)- लग्नेश में ग्रहणकालीन सूर्य हो तथा मंगल व शनि त्रिकोण में हो।

ग)- सूर्य, शुक्र एवं लग्नेश त्रिक स्थान में हो।

घ)- लग्न से द्वितीय में मंगल, षष्ठ में चन्द्र, अष्टम में सूर्य तथा द्वादश में शनि हो।

6- काणत्वयोग -

गर्भाधान कुण्डली में योग-

(क)- द्वादशभाव में क्षीणचन्द्र हो तो बायें नेत्र से तथा द्वादशभाव में सूर्य हो तो दाहिने नेत्र से काणा होता है।

(ख)- षष्ठ भाव में पापग्रह हो तो बायें नेत्र से तथा अष्टम भाव पापग्रह तो दाहिने नेत्र से काणा होता है।

जन्मकुण्डली में योग –

(क)- द्वादशभाव में मंगल हो तो बायें नेत्र से तथा द्वादशभाव में शनि हो तो दाहिने नेत्र से काणा होता है।

(ख)- सप्तम भाव में सिंहराशिस्थ चन्द्र पर मंगल की दृष्टि हो।

(ग)- सप्तम भाव में कर्कराशिस्थ सूर्य पर मंगल की दृष्टि हो।

7- गूंगापन (मूकता) योग –

(क)- गर्भाधान कुण्डली में वृषराशिस्थ चन्द्र तथा सब पापग्रह भसन्धि में स्थित हों तो मूकयोग होता है। इस योग में चन्द्र पर शुभग्रहों की दृष्टि होने पर बालक जन्म से 4 या 5 वर्षों में बोलने लगता है।

(ख)- जन्मकुण्डली में कर्क, वृश्चिक या मीन राशि में स्थित बुध को अमावस्या का चन्द्र देखता हो।

(ग)- जन्मकुण्डली में षष्ठेश एवं बुध दोनों ही लग्न में हो।

(घ)- जन्मकुण्डली में षष्ठेश एवं गुरु दोनों ही लग्न में हो।

(ङ)- जन्मकुण्डली में धनेश एवं गुरु दोनों ही त्रिकस्थान में हो।

8-बहिरापन (बधिरता)- बहिरापन जन्मजात भी होता है तथा बाद में भी हो सकता है। जन्मजात बधिरता के कुछ योग इस प्रकार हैं –

(क)- पापग्रहों के साथ चन्द्र लग्न , तृतीय या एकादश भाव में हो और उस पर पापग्रहों की दृष्टि भी हो।

(ख)- पंचम व नवम भाव में पापग्रह से दृष्ट पापग्रह विद्यमान हों।

(ग)- शनि से चतुर्थ में बुध तथा षष्ठेश त्रिक (6,8,12) स्थान में हो।

(घ)- रात्रि में जन्म हो, बुध षष्ठ भाव में तथा शुक्र दशम भाव में हो।

(ङ)- पूर्णचन्द्र एवं शुक्र अपने शत्रुग्रहों के साथ स्थित हों।

(च)-षष्ठेश एवं बुध पर पापग्रहों की दृष्टि हो।

(छ)-षष्ठेश त्रिकस्थानों में हो और उन पर शनि की दृष्टि हो।

इसी प्रकार नपुंसकता, बन्ध्यता (बांझपन), जडता आदि जन्मजात योगों के विषय में भी शास्त्रों में विस्तृत वर्णन मिलता है। आचार्यों का मत है कि इन जन्मजात रोगों के योग पर यदि शुभग्रहों की दृष्टि हो तो चिकित्सा द्वारा इन रोगों का उपचार हो जाता है। अतः इन योगों में शुभग्रहों एवं पापग्रहों की दृष्टि का विश्लेषण कर ही रोग के साध्यत्व और असाध्यत्व का विचार करना चाहिए।

3.5.2 दृष्टनिमित्तजन्य (आकस्मिक) रोग -

जैसा कि आप जानते हैं कि शाप, अभिचार, घात, संसर्ग, महामारी एवं दुर्घटना आदि प्रत्यक्ष घटनाओ द्वारा उत्पन्न होने वाले रोगों को दृष्टनिमित्तजन्य रोग कहते हैं। दृष्टनिमितजन्य रोगों का विचार जन्मकुण्डली के षष्ठ स्थान, षष्ठेश ग्रह, षष्ठ स्थान में स्थित ग्रह तथा षष्ठ स्थान को देखने वाला ग्रह इन चारों से करना चाहिये। यहाँ आकस्मिक रोगों के कुछ योगों का वर्णन प्रस्तुत है –

1- दुर्घटना, चोट एवं घाव –

(क)- वृश्चिक राशि में मंगल स्थित हो तथा उस पर गुरु या शुक्र की दृष्टि न हो तो चोट से शरीर घायल होने की सम्भावना रहेगी।

(ख)-सप्तम में केतु व मंगल हों तो शरीर में घाव होते हैं।

(ग)- लग्नेश व मंगल त्रिक स्थान में हो तो शस्त्र से चोट लगती है।

(घ)- शनि एवं मंगल दोनों एक साथ षष्ठ भाव या द्वादश भाव में हो तो दुर्घटना से चोट लगती है।

(ङ)- पापग्रहों से दृष्ट या युत लग्नेश व मंगल पंचम भाव में हों तो शस्त्र से शिर में चोट लगती है।

(च)- लग्न में मंगल तथा सप्तम में गुरु या शुक्र हो तो शिर में घाव होता है।

(छ)- पापग्रह के साथ षष्ठेश लग्न या त्रिक स्थान में हो तो चोटभय रहता है।

(ज)- सूर्य के साथ षष्ठेश लग्न या अष्टम में हो तो शिर में चोट लगती है।

(झ)- चन्द्र के साथ षष्ठेश लग्न या अष्टम में हो तो शिर में चोट लगती है।

(ञ)- बुध के साथ षष्ठेश लग्न या अष्टम में हो तो हृदय व वक्षस्थल में चोट लगती है।

(ट)- गुरु के साथ षष्ठेश लग्न या अष्टम में हो तो नाभि के नीचे चोट लगती है।

(ठ)- शुक्र के साथ षष्ठेश लग्न या अष्टम में हो तो आँख के नीचे चोट लगती है।

(ड)- शनि के साथ षष्ठेश लग्न या अष्टम में हो तो पैर में चोट लगती है।

(ढ)- राहु या केतु के साथ षष्ठेश लग्न या अष्टम में हो तो पूरे शरीर या होंठ पर चोट लगती है।

(ण)- व्यय भाव में चन्द्र व गुरु हों तथा 3,6 या 11वें भाव में बुध हो तो गुदा में घाव होते हैं।

2- महामारी एवं छूत के रोग –

(क)- शनि तथा शुक्र से दृष्ट मंगल लग्न में हो तो चेचक की सम्भावना बनती है।

(ख) – मंगल से दृष्ट सूर्य लग्न, सप्तम, द्वितीय या अष्टम स्थान में हो तो चेचक रोग सम्भावित होता है।

(ग)- सूर्य से दृष्ट मंगल लग्न, सप्तम, द्वितीय या अष्टम स्थान में हो तो चेचक रोग सम्भावित होता है।

(घ)- सूर्य दृष्ट मंगल व गुलिक लग्न, षष्ठ, सप्तम या द्वादश स्थान में हो तो चेचक रोग सम्भावित होता है।

(ङ)- पापग्रह दृष्ट शुक्र सप्तमस्थान में हो तो हैजा की सम्भावना बनती है।

(च)- लग्न में बुध एवं राहु तथा सप्तम भाव में मंगल एवं शनि हो तो हैजा की सम्भावना बनती है।

(छ)- लग्नेश एवं शुक्र त्रिकस्थान में हो तो तपेदिक(क्षय) रोग होता है।

(ज)- लग्न पर मंगल एवं शनि की दृष्टि हो तो तपेदिक(क्षय) रोग होता है।

(झ)- कर्क राशि में बुध हो तो तपेदिक(क्षय) रोग होता है।

(ञ)- अष्टम स्थान में पापग्रह, पंचम में शनि तथा लाभस्थान में सूर्य हो तो तपेदिक(क्षय) रोग होता है।

(ट)- दशम स्थान में मंगल एवं शनि हो तथा लग्न चतुर्थ अथवा अष्टम में सूर्य हो तो तपेदिक(क्षय) रोग होता है।

(ठ)- लग्नेश से दृष्ट मंगल के साथ चन्द्र षष्ठ या अष्टम स्थान में हो हो तो तपेदिक(क्षय) रोग होता है।

(ड)- सूर्य, शुक्र एवं शनि ये तीनों एक साथ हो तो कुष्ठरोग होता है।

(ढ)- मंगल की राशि (मेष या वृश्चिक) में स्थित सूर्य पर शुक्र की दृष्टि हो तो कुष्ठरोग होता है।

(ण)- चन्द्र, मंगल, गुरु. शुक्र एवं शनि ये सब कर्क, वृश्चिक एवं मीन राशि में हो तो कुष्ठरोग होता है।

इसी प्रकार ज्योतिषशास्त्र में चोट, दुर्घटना, घाव, महामारी, छूतजन्य रोग, विविधप्रकार के कुष्ठरोगों, जलादि से भय, अग्नि, चोरादि से भय, विषादि भय आदि के बारे में योगों का सुविस्तृत वर्णन मिलता है। इस सन्दर्भ में

3- शाप एवं अभिचारजन्य रोग –

गुरुजनों एवं देवता आदि के शाप से उत्पन्न होने वाले रोग शापजन्य कहलाते हैं। मारण, मोहन, उच्चाटन, विद्वेषण, स्तम्भन, वशीकरण आदि तान्त्रिक अभिचारों से उत्पन्न रोग भी ज्योतिष के ग्रन्थों में वर्णित हैं। जिनमें से कुछ योग इस प्रकार से हैं-

(क)- केन्द्र में गुलिक हो तथा लग्न, चतुर्थ या दशम स्थान में गुरु हो तो देवता के कोप या शाप से रोग होता है।

(ख)- लग्न में चरराशि हो , लग्नेश के साथ पापग्रह हों तथा सप्तम में शनि हो तो देवता के कोप या शाप से रोग होता है।

(ग)- लग्न में चरराशि हो, षष्ठेश की लग्न पर दृष्टि हो तथा मंगल एकादश भाव में हो तो अभिचार से रोग होता है।

(घ)- सप्तम में द्विस्वभाव राशि तथा नवम में स्थिर राशि हो तथा उन पर षष्ठेश एवं मंगल की दृष्टि हो तो अभिचार से रोग होता है।

(ङ)- षष्ठेश सप्तम या दशम में तथा लग्न पर मंगल की दृष्टि हो तो शत्रुकृत् अभिचार से रोग होता है।

(च)- चरलग्न में शुभ ग्रह हों, सप्तम में शनि हो तथा चन्द्र पर पाप ग्रहों की दृष्टि हो तो भूत-प्रेत या पिशाच की पीड़ा से रोग होता है।

(छ)- लग्न में राहु के साथ शनि हो तो भूत-प्रेत या पिशाच की पीड़ा से रोग होता है।

(ज)- लग्न में स्थित केतु पर पापग्रह की दृष्टि हो तो पिशाच पीड़ा होती है।

(झ)- षष्ठ स्थान में राहु या केतु हो तथा उस पर पापग्रह की दृष्टि हो तो पिशाच पीड़ा से रोग होता है।

(ञ)- अष्टम स्थान में निर्बल चन्द्र एवं शनि हो तो पिशाच पीड़ा से रोग होता है।

3.5.3 अदृष्टनिमित्तजन्य शारीरिक रोग

ज्योतिष शास्त्र के अनुसार पूर्वार्जित कर्मों के प्रभाव से रोग उत्पन्न होते हैं। पूर्वार्जित कर्म शरीर के अंग, धातु तथा वातादि दोष को प्रभावित कर शरीर में रोग उत्पन्न कर देते हैं। इन अदृष्टनिमित्तजन्यरोगों की जानकारी बाधक ग्रहों के द्वारा दी जा सकती है। ग्रहों के अंग, धातु एवं वातादिदोष इस प्रकार से हैं-

ग्रह	सूर्य	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
अंग	हृदय	मन	दृष्टि	नासिका	शरीर	जिह्वा	कर्ण

धातु	अस्थि	रक्त	मज्जा	त्वचा	मेद(चर्बी)	वीर्य	स्नायु
दोष	पित्त	वात एवं कफ	पित्त	वातपित्त व , कफ	कफ	कफ व वायु	वायु

डॉ शुकदेव प्रसाद चतुर्वेदी ने शारीरिक रोगों के 12 वर्ग बनाये हैं। यथा-

क्रम	वर्ग	रोगों के नाम
-1	शिरोरोग	शिरशूलमूर्च्छा आदि रोग ,मिरगी ,उन्माद ,गंजापन ,
-2	नेत्ररोग	अन्धापनआँख फूटना आदि ,रतौंधी ,भेंगापन ,कानापन ,
-3	कर्णरोग	बहिरापनकान का कटना आदि ,कान में दर्द ,कम सुनाई देना ,
-4	नासारोग	नाक का कटनानाक के विविध रोग ,
-5	मुखरोग	गूंगापनतालुरोग आदि ,दन्तरोग ,तुतलाहट ,हकलाहट ,
-6	गलरोग	कण्ठरोगगलगण्ड रोग आदि ,गण्डमाला ,
-7	हस्तरोग	लूलापनहाथ का कटना आदि ,
-8	हृदयरोग	हृदयशूलहृदयकम्प आदि ,
-9	उदररोग	अजीर्ण ,जलोदर ,पाण्डु ,कृमि ,गुल्म ,संग्रहणी ,अतिसार ,मन्दाग्नि , उदरशूल आदि
-10	गुप्तरोग	प्रमेह ,प्रदर ,वृषणवृद्धि ,शूक ,उपदंश ,अश्मरी ,मूत्रकृच्छ्र ,मधुमेह , बंध्यात्व आदि ,नपुंसकता
-11	गुदारोग	अर्शभगन्दर आदि ,
-12	चरणरोग	जंघा क्षतिपंगुता आदि ,लंगड़ापन ,श्लीपद ,

उपर्युक्त रोगों के योग पर संक्षेप में चर्चा करते हैं-

1- शिरोरोग –

वात पित्त आदि से उत्पन्न सिरदर्द का विचार सूर्य से, मानसिक दबाव या तनाव से उत्पन्न सिरदर्द का विचार चन्द्र व बुध से तथा सिर में चोट लगने से होने वाले सिरदर्द का विचार मंगल से करना चाहिए। लग्न पर पापग्रहों के प्रभाव से गंजापन की समस्या होती है। यहाँ कुछ योगों पर विचार प्रस्तुत है।

(क)- तृतीयेश जिस नवांश में हो उस राशि का स्वामी जिस नवांश में हो, उस राशि का स्वामी केन्द्र में पापग्रह से युत एवं दृष्ट हो तो जातक सिरदर्द से परेशान रहता है।

(ख)- राहु, मंगल एवं शनि तीनों ही एक राशि में हों तो जातक को सिरदर्द रहता है।

(ग)- लग्न में पापग्रह की राशि हो तथा गुरु व चन्द्र पापग्रह के साथ हों तो सिरदर्द का रोग रहता है।

(घ)- लग्न में पापग्रह से दृष्ट राहु हो तो सिरदर्द की सम्भावना रहती है।

(ङ)- लग्न में वृष या धनु राशि हो और उस पर पापग्रह की दृष्टि हो तो गंजापन की समस्या हो सकती है।

(च)- लग्न में पापग्रह की राशि में पापग्रह हों तो गंजापन हो सकता है।

(छ)- लग्न में सिंह, कन्या, वृश्चिक या धनु राशि हो तथा मंगल से दृष्ट चन्द्र कर्क राशि में हो तो गंजापन रहता है।

2- नेत्ररोग –

नेत्ररोगों के विचार में द्वितीय एवं द्वादश भाव प्रमुख हैं। साथ ही षष्ठ तथा अष्टम भाव से भी रोग विचार करना चाहिए। यहाँ कुछ योग विचारार्थ प्रस्तुत हैं-

(क)- सिंहलग्न में सूर्य व चन्द्र हों तथा उन पर मंगल व शनि की दृष्टि हो तो अन्धापन का योग बनता है।

(ख)- सूर्य अष्टम, चन्द्र षष्ठ, मंगल द्वितीय तथा शनि द्वादश भाव में हो तो अन्धत्व योग बनता है।

(ग)- सूर्य व चन्द्र द्वादश भाव में हों तो जातक अन्धा हो सकता है।

(घ)- शनि 12वें भाव में हो तो दाहिनी आँख तथा मंगल 12वें भाव में हो तो बाँयीं आँख फूट सकती है।

(ङ)- सूर्य 12वें भाव में हो तो दाहिनी आँख तथा चन्द्र 12वें भाव में हो तो बाँयीं आँख फूट सकती है।

(च)- शुभग्रह की दृष्टि से रहित क्षीणचन्द्र द्वादशभाव में हो तो जातक बायें नेत्र से काना हो सकता है।

(छ)-सूर्य व चन्द्र में से एक छठवें भाव में हो तथा दूसरा 12वें भाव में हो, साथ ही उन पर शुभग्रह की दृष्टि न हो तो पति व पत्नी दोनों ही काने होते हैं।

(ज)- चन्द्र के साथ शुक्र 6वें, 8वें या 12 वें भाव में हो तो रतौंधी होती है।

(झ)- पापग्रहों से दृष्ट शुक्र, चन्द्र एवं द्वितीयेश एक ही भाव में बैठे हुए हों तो रतौंधी की सम्भावना बनती है।

(ञ)- सूर्य व चन्द्र दोनों ही वक्रीग्रह की राशि में हों और उन पर पापग्रह की दृष्टि हो तो जातक भेंगा होता है।

(ट)- द्वितीय या द्वादश भाव में पापग्रह के साथ शुक्र हो तो जातक चिमधा(अधखुली नेत्र वाला) होता है।

(ठ)- कर्क लग्न में सूर्य हो तो जातक बुदबुदलोचन (पलक पीटने वाला) होता है।

(ड)- द्वितीय स्थान में अनेक पापग्रह हों और उन पर शनि की दृष्टि हो तो नेत्ररोग होता है।

3- कर्णरोग –

(क)- तृतीयेश पापग्रह किसी शुष्क ग्रह(सूर्य, मंगल या शनि) के साथ हो तो बधिरता होती है।

(ख)- शनि से दृष्ट षष्ठेश त्रिक स्थान में हो तो भी बधिरता का योग बनता है।

(ग)- तृतीय, पञ्चम, नवम व एकादश भाव में पापग्रह हों और उन पर शुभग्रह की दृष्टि न हो तो कम सुनाई देता है।

(घ)- सूर्य, शनि व चन्द्र 3, 5, 7 या 10वें भाव में हों और उन पर शुभग्रह की दृष्टि न हो तो दुर्घटना या लड़ाई में कान कटने के योग बनते हैं।

(ङ)- तृतीयस्थान में पापग्रह हों तथा उन पर पापग्रह की दृष्टि हो तो कान में दर्द रहता है।

4- नासारोग –

नासिका के रोगों के योग बनाने में चन्द्र व शुक्र महत्वपूर्ण हैं। साथ ही लग्न व लग्नेश पर पापग्रहों का प्रभाव भी नासिका रोगों को बढ़ाता है। यहाँ कुछ योग प्रस्तुत हैं-

(क)- मंगल, शुक्र एवं शनि तीनों एक साथ हो तो नाक बहती है।

(ख)- षष्ठ में चन्द्र, अष्टम में शनि तथा 12 वें में पापग्रह हों तो एवं लग्नेश पापग्रह के नवांश में हो तो पीनस रोग होता है।

(ग)- 6वें स्थान में शुक्र तथा लग्न में मंगल हो तो नाक कट जाती है।

5- मुखरोग–

बुध मुखरोगों का प्रतिनिधि ग्रह एवं द्वितीयभाव प्रतिनिधि भाव है। साथ ही गुरु इन योगों का सहायक ग्रह तथा लग्न व षष्ठ भाव सहायक भाव माने गये हैं। इन भावों पर पापग्रहों का प्रभाव, इनके भावेश, बुध व गुरु के अशुभ स्थानों में स्थिति, निर्बल होना तथा पापग्रहों से दृष्टि या युति सम्बन्ध विविध प्रकार के मुखरोगों के कारण बनते हैं।

(क) बुध षष्ठेश हो तो जीभ पर छाले होते हैं।

(ख) द्वितीयेश व राहु त्रिकस्थान में हो तो उसकी महादशा में बुध की अन्तर्दशा आने पर जीभ कटने की सम्भावना या जिह्वा रोग होता है।

(ग) द्वितीयेश व गुरु त्रिकस्थान में हो तो जातक गूंगा हो सकता है।

(घ) द्वितीयेश निर्बल होकर क्रूर ग्रह के नवांश में हो तो हकलाहट होती है।

(ङ) बुध शनि की राशि (मकर या कुम्भ) में हो तथा उस पर शनि की दृष्टि भी हो तो तुतलाहट की सम्भावना होती है।

(च) लग्न में मेष, वृष या धनु राशि हो तथा उस पर पापग्रह की दृष्टि हो तो पाइरिया होता है।

(छ) षष्ठभाव में राहु या केतु हो तो दाँतों में पीड़ा होती है।

(ज) द्वितीयेश एवं बुध 6वें स्थान में राहु व केतु के साथ हों तो तालुरोग होता है।

6- कण्ठरोग –

इन रोगों का विचार मुख्यरूप से तृतीयभाव से होता है। सूर्य व शुक्र के दशान्तर्दशा में प्रायः ये रोग होते हैं। कुछ कण्ठरोग के योग विचारार्थ प्रस्तुत हैं।

(क)- सूर्य के साथ लग्नेश त्रिक स्थान में हो तो गलगण्ड़ या गण्ड़माला की सम्भावना रहती है।

(ख)- सूर्य एवं मंगल 6वें या 12वें भाव में हों और उन पर शुभग्रह की दृष्टि न हो तो गलगण्ड़ या गण्ड़माला रोग होता है।

(ग)- चन्द्र के साथ लग्नेश त्रिक स्थान में हो तो जलज गलगण्ड़ की सम्भावना रहती है।

(घ)- तृतीय भाव में नीच राशिगत, शत्रुराशिगत या अस्तंगत ग्रह हो तथा उसे पापग्रह देख रहे हों तो गले में रोग होता है।

(ङ)- तृतीय भाव में पापग्रह हों और वह गुलिक आदि के साथ हो तो गले में रोग होता है।

(च)-तृतीयेश बुध के साथ हो तो भी गले में रोग होता है।

(छ)- चन्द्र चतुर्थ भाव में चतुर्थ भाव के नवांश के स्वामी एवं पापग्रह के साथ हो तो कण्ठ में रोग होता है।

7- हस्तरोग –

(क)- नवम भाव में शनि एवं तृतीय भाव में गुरु हो तो लूलापन हो सकता है।

(ख)- अष्टम भाव में शनि तथा द्वादश में गुरु होने पर भी जातक लूला हो सकता है।

(ग)- राहु, शनि एवं बुध ये तीनों दशम स्थान में हों तो लूला होता है।

(घ)- तृतीय या नवम भाव में शनि एवं गुरु हों तो जातक के हाथ कटने की सम्भावना रहती है।

(ङ)- सूर्य, चन्द्र एवं शनि 6वें 8वें या 12वें भाव में हों तो हाथ में पीड़ा होती है।

8- हृदयरोग –

चतुर्थ भाव, पंचम भाव, चतुर्थेश आदि पर पापग्रहों के प्रभाववश हृदयरोगों की सम्भावना रहती है। यहाँ पर कुछ हृदयरोगों के योग विचारार्थ प्रस्तुत हैं-

(क)- चतुर्थ भाव में पापग्रह हों तथा चतुर्थेश पापग्रहों के साथ हो तो हृदयरोग की सम्भावना बनती है।

(ख)- चतुर्थेश जिस नवांश में हो, उसका स्वामी क्रूर षष्ट्यंश में हो तथा उस पर क्रूर ग्रह की दृष्टि भी हो तो हृदयरोग होता है।

(ग)- चतुर्थ एवं पंचम स्थान में क्रूर षष्ट्यंश हो तथा शुभग्रहों से दृष्ट या युत न हों तो भी हृदयरोग होता है।

(घ)- चतुर्थ में स्थित राहु पर पापग्रहों की दृष्टि हो तथा लग्नेश निर्बल हो तो हृदयशूल होता है।

(ङ)- शुभग्रह क्रूराक्रान्त हों तथा षष्ठेश पापयुक्त हो तो हृदयकम्प होता है।

9- उदररोग –

(क) चन्द्र सिंहराशि में हो, लग्न या षष्ठराशि में हो तो उदररोग होता है।

(ख)- लग्न में विषम राशि में षष्ठेश हो, विषमराशि में ही लग्नेश हो तथा उन दोनों पर शनि की दृष्टि हो तो उदररोग होता है।

(ग)- लग्न में मंगल हो तथा षष्ठेश निर्बल हो तो अजीर्ण होता है।

(घ)- लग्न शनि से युत या दृष्ट हो तथा निर्बल अष्टमेश पर पापग्रहों की दृष्टि हो तो मन्दाग्नि होती है।

(ङ)- लग्न में राहु एवं बुध हों तथा सप्तम स्थान में शनि व मंगल हों तो अतिसार होता है।

(च)- कारकांश से पंचम में केतु हो तो संग्रहणी रोग होता है।

(छ)- द्वितीय स्थान में शनि या राहु के स्थित होने पर भी संग्रहणी रोग की सम्भावना बनती है।

(ज)- दो पापग्रहों के मध्य चन्द्र हो तथा सप्तम में चन्द्र हो तो गुल्मरोग होता है।

(झ)-षष्ठेश चन्द्र पर पापग्रहों की दृष्टि हो तथा शुभग्रह न देखते हों तो प्लीहा रोग होता है।

(ञ)- अष्टम स्थान में क्षीण चन्द्र हो तो कृमिरोग होता है।

(ट)- लग्न में राहु तथा लाभ स्थान में सूर्य व चन्द्र हों तो 19 वें वर्ष में जलोदर रोग की सम्भावना बनती है।

(ठ)-लग्न में पापग्रह हों तथा अष्टम में शनि हो तो कुक्षिरोग होता है।

10- गुप्तरोग-

(क)- दशम भाव में स्थित मंगल शनि से दृष्ट या युत हो तो प्रमेह रोग की सम्भावना बनती है।

(ख)- षष्ठेश एवं मंगल बुध के साथ हों तो उपदंश, शूक आदि लिङ्गरोगों की सम्भावना होती है।

(ग)- कर्क, वृश्चिक या कुम्भ के नवांश में शनि के साथ चन्द्र हो तो गुप्तरोग होता है।

(घ)- अष्टम भाव में पापग्रह स्थित हों तथा वे पापग्रह से दृष्ट भी हों तो गुप्तरोग होता है।

(ङ)-शनि 8वें, मंगल 6वें तथा सूर्य 2वें स्थान में हो तो स्वप्नदोष होता है।

(च)- राहु, शुक्र या शनि उच्चराशि में हों, कर्क में सूर्य तथा मेष में चन्द्र हो तो शीघ्रपतन होता है।

(छ)- शुक्र के साथ शनि दशम भाव में हो तो नपुंसकता योग होता है।

(ज)- लग्न में मेष, वृश्चिक, मकर या कुम्भ राशि में चन्द्र व शुक्र हों तथा उन पर पापग्रहों की दृष्टि हो तो स्त्री में बन्ध्यात्व के योग बनते हैं।

(झ)- सप्तम भाव में मंगल का नवांश हो तथा उस पर शनि की दृष्टि हो तो स्त्रीरोग होता है।

(ञ)- मंगल,शनि एवं राहु 6वें भाव में हों तो वृषणरोग होता है।

11- गुदारोग-

(क)-12वें भाव में स्थित शनि पर पापग्रह की दृष्टि होने पर अर्शरोग की सम्भावना होती है।

(ख)- लग्न पर वृश्चिक राशि में मंगल हो तथा उस पर गुरु या शुक्र की दृष्टि न हो तो अर्शरोग होता है।

(ग)-कर्क राशि में स्थित सूर्य को मंगल देखता हो तो भगन्दररोग की सम्भावना होती है।

(घ)- लग्नेश मंगल एवं बुध एक साथ केन्द्र व त्रिकोण के अतिरिक्त अन्य भाव में हों तो गुदारोग होता है।

(ङ)- मंगल, बुध एवं लग्नेश सिंहराशि में 4वें या12वें स्थान में हो तो गुदारोग होता है।

12- चरणरोग-

(क)- शनि, चन्द्र व मंगल 12वें भाव में हो तो घुटनों में दर्द रहता है।

ख)- मेष, कर्क, वृश्चिक, मकर या मीन राशि में पंचम या नवम स्थान में पापग्रह के साथ चन्द्र व शनि हो तो पंगुता होती है।

(ग)- मंगल, बुध एवं शुक्र एक साथ हों तो श्लीपद (फीलपाँव) होता है।

(घ)- 12वें भाव में पापयुत लग्नेश हो तो मनुष्य वैशाखी के सहारे से चलता है।

यहाँ रोगों के कुछ ही योग दिङ्निर्देशन के रूप में विचारार्थ प्रस्तुत किये गये हैं। अधिक जानकारी के लिए ज्योतिषशास्त्र के ग्रन्थों का अध्ययन करना चाहिए।

3.5.4 वातपित्तादि विकार से उत्पन्न रोग-

आमवात, शूल, सन्धिशूल, पक्षाघात, रक्तपित्त, दाह, तृष्णा, कफ, खांसी, श्वास, ज्वर, फोड़ा-फुन्सी, दाद, खाज, खुजली आदि रोग वात, पित्त और कफ के विकार से उत्पन्न रोग होते हैं। ये रोग शरीर में कहीं भी हो सकते हैं। इस विषय में ज्योतिष के ग्रन्थों में विभिन्न योग आचार्यों ने कहे हैं, जिनमें से कतिपय योग दिङ्निर्देशन के रूप में आपके विचारार्थ प्रस्तुत हैं-

1-वातरोग –

(क)- गुरु व लग्नेश त्रिकस्थान में हों तो आमवात होता है।

(ख)- लग्नेश शत्रु या नीचराशि में हो, मंगल 4वें भाव में हो तथा शनि पर पापग्रह की दृष्टि हो तो शूलरोग होता है।

(ग)- रात्रि का जन्म हो तथा पंचम भाव में पापाक्रान्त सूर्य हो तो सन्धिशूल होता है।

(घ)- दिन का जन्म हो तथा दग्ध चन्द्र को मंगल देखता हो तो सन्धिशूल होता है।

(ङ)- षष्ठेश पापाक्रान्त हो, गुरु से दृष्ट न हो तथा षष्ठभाव में पापग्रह हों तो पक्षाघात होता है।

(च)-कर्कराशि में स्थित सूर्य पर शनि की दृष्टि हो तो वातरोग होता है।

(छ)- लग्न में लग्नेश तथा 6वें स्थान में शनि हो तो वातरोग होता है।

2- पित्तरोग –

(क)- मंगल 7 वें स्थान में हो या नीचराशि में हो अथवा 6वें में हो तथा षष्ठेश पापग्रह से युत या दृष्ट हो तो रक्तपित्त होता है।

(ख)- सूर्य, शुक्र व शनि तीनों एक साथ हों तो शीतपित्त होता है।

(ग)- षष्ठेश शनि या षष्ठेश गुरु पापग्रहों के साथ चतुर्थ भाव में हो तो कृष्णपित्त होता है।

(घ)- दो पापग्रहों के मध्य चन्द्र हो तथा 7वें भाव में शनि हो तो दाहरोग होता है।

(ङ)- सिंहराशिस्थ चन्द्र पर पापग्रहों की दृष्टि हो तो तृष्णा रोग होता है।

(च)- षष्ठ स्थान में पापग्रह के साथ सूर्य हो तथा उन पर पापग्रह की दृष्टि हो तो पित्तरोग होता है।

(छ)- लग्न या अष्टम में मंगल के साथ लग्नेश हो तथा उन पर शुभग्रह की दृष्टि न हो तो पित्तरोग होता है।

3- कफरोग-

(क)- शनि एवं गुलिक 6वें भाव में हो, उन पर सूर्य, मंगल व राहु की दृष्टि हो तथा शुभग्रह न देख रहे हों तो खांसी व श्वासरोग होता है।

(ख)- कर्कराशि में स्थित सूर्य पर शनि की दृष्टि हो तो खांसी व श्वासरोग होता है।

(ग)- लग्न में पापग्रह के साथ चन्द्र हो तथा उस पर पापग्रह की दृष्टि हो तो जुकाम व श्लेष्मा रोग होता है।

(घ)- सूर्य, चन्द्र, मंगल, गुरु, शुक्र एवं शनि ये 6 ग्रह एक ही राशि में हों तो जुकाम व श्लेष्मा रोग होता है।

(ङ)- षष्ठस्थान में जलचरराशि में पापयुक्त क्षीणचन्द्र हो तथा लग्म में पापग्रह हों तो क्षयरोग होता है।

(च)- षष्ठ स्थान में पापनवांश में मंगल एवं बुध हों तथा उन पर चन्द्र व शुक्र की दृष्टि हो तो हिचकी, गला बैठना, कुकर खांसी आदि की सम्भावना होती है।

इसी प्रकार ज्वर का विचार करते समय सूर्य का, पीलिया का विचार करते समय गुरु, मंगल, सूर्य का, सूखा रोग का विचार करते समय सूर्य व चन्द्र का, मूर्च्छा रोग एवं रक्तविकार के लिए मंगल का, मेदो रोग के लिए गुरु, शुक्र व चन्द्र का, चर्मरोग के लिए बुध का विशेष ध्यान रखना चाहिए।

3.5.5 मानसिक रोग-

मन-मस्तिष्क के विकार से उत्पन्न रोग मानसिक रोग होते हैं। उन्माद, सनक, प्रमाद, अपस्मार, जड़ता एवं मतिभ्रम आदि मानसिक रोग होते हैं। प्रश्नमार्ग में मानसिक उन्माद के 10 कारण बताये गये हैं -

1- विषम भोजन अर्थात् असमय व अनिच्छापूर्वक भोजन करना तथा सही समय व इच्छा होने पर भी भोजन न करना।

2- अपवित्र भोजन अर्थात् गन्दे वातावरण में अपथ्य भोजन करना।

3- उपवास अर्थात् अधिक समय भूखा रहना।

4- भय अर्थात् भौतिक या दैविक संकट का आभास कर ड़र जाना।

5- वैराग्य अर्थात् संसार की क्षणभंगुरता समझ कर अपने में खो जाना।

6- अकारण क्रोध अर्थात् बिना किसी कारण पर दूसरों पर गुस्सा होना।

7- शत्रुकृत् अभिचार अर्थात् शत्रु द्वारा मारण, मोहन, वशीकरण आदि अभिचारों का प्रयोग किया जाना।

8- गुरुनिन्दादि कृत्य अर्थात् गुरुजनों का अपमान करने से उनके द्वारा शापादि दिये जाने से।

9- यज्ञादि कर्मों में त्रुटि अर्थात् विधिपूर्वक यज्ञानुष्ठान न कर मनमाने ढ़ंग से करने पर अथवा विधि में कुछ गलती रहना।

10- देवनिन्दा अर्थात् नास्तिकता के कारण प्रतिष्ठित देवमूर्ति आदि का खण्डन करना, देवताओं की निन्दा करना।

उपर्युक्त कारणों से उन्मादादि मानसिक रोग होने के योगों का ज्योतिष शास्त्र में विशद वर्णन मिलता है, जिनमें से कुछ योग यहाँ वर्णित किये जा रहे हैं-

(क) चन्द्र, शुक्र एवं अष्टमेश त्रिक आदि अनिष्ट स्थानों में हों, गुलिक, राहु या केतु के साथ हों तो उन्माद होता है।

(ख) पंचम भाव में मंगल या अन्य पापग्रह हों तो उन्माद सम्भावित होता है।

(ग) षष्ठ भाव में पापग्रह हों तो उन्माद सम्भावित होता है।

(घ) पंचम तथा नवम भाव में पापग्रह हों तो उन्माद सम्भावित होता है।

(ङ) लग्न में गुरु तथा सप्तम भाव में शनि या मंगल हो तो उन्माद होता है।

(च) लग्न में शनि तथा पंचम, सप्तम या नवम में मंगल उन्मादकारक होता है।

(छ) पापग्रह एवं राहु के साथ चन्द्र 5वें, 8वें या 12वें भाव में हो तो व्यक्ति सनकी होता है।

(ज) केन्द्र स्थान में सूर्य, चन्द्र व शनि हों तो मादक पदार्थों के सेवन से मनुष्य सनकी होता है।

(झ) पापग्रह व शनि के साथ द्वितीयेश 6वें स्थान में हो तो व्यक्ति प्रमादी होता है।

(ञ) अष्टम स्थान में शनि, त्रिकोण में राहु, त्रिकादि अशुभ स्थानों में शनि व सूर्य हों तथा शुभग्रह बलवान् न हों तो अपस्मार रोग होता है।

(ट) मंगल से दृष्ट शनि के साथ चन्द्र हो तो अपस्मार (मिरगी) रोग होता है।

(ठ) दिन का जन्म हो तथा सूर्य व गुलिक पर पापग्रहों की दृष्टि हो अथवा शनि के साथ तृतीयेश हो तो व्यक्ति जड़(मूर्ख) होता है।

(ड) पंचम भाव में शनि हो, लग्नेश पर शनि की दृष्टि हो तथा पंचमेश पापग्रह के साथ हो तो जड़ता योग बनता है।

(ढ) लग्न में चन्द्र हो और उस पर मंगल व शनि की दृष्टि हो तो जातक बुद्धिहीन होता है।

(ण) चन्द्र व बुध केन्द्र में हों तथा वे शुभ ग्रह के नवांश में न हों तो मतिभ्रम रहता है।

इसी प्रकार मानसिक रोगों के अन्ययोगों को ज्योतिषशास्त्र के ग्रन्थों से जानना चाहिए।

3.6 अरिष्टयोग

अरिष्ट से अभिप्राय जातक के प्रारम्भिक जीवन में घटने वाली अशुभ घटनाओं से है। घटनाओं के सूचक ग्रह होते हैं अतः ग्रहाधारित बनने वाले इन योगों से अरिष्ट का विचार जातक के जन्म से ही किया जाता है। जिसमें जातक को चौबीस वर्ष तक विशेष अरिष्ट कहा गया है। चतुर्विंशतिवर्षाणि यावद् गच्छति जन्मतः। इसी चिन्तन के आधार पर कुछ अरिष्ट योगों का वर्णन निम्नलिखित है।

लग्न भाव जातक के शरीर से सम्बन्ध रखता है। लग्न में स्थित अथवा लग्नेश की स्थिति व बलाबल के अनुसार अरिष्ट का विचार करना चाहिए। लग्न भाव से 6, 8 एवं 12 अर्थात् त्रिक भावों में चन्द्रमा पाप ग्रहों के साथ स्थित हो तो जातक का जन्म से आठ वर्ष के भीतर जातक का मरण होता है। जैसा कि चन्द्रमा शुभ ग्रहों से दृष्ट हो तो वक्री शुभ ग्रह यदि 6, 8 एवं 12 भावों में हो तथा पापग्रहों से दृष्ट हो तो एक मास में मरण जानना चाहिए। किन्तु लग्न में यदि शुभ ग्रह न हों तभी यह योग कहना चाहिए अन्यथा ग्रहों का बलाबल विचार करके इसका फल कहना चाहिए।

लग्न अथवा अष्टमभाव में मङ्गल पापग्रहों से युत-दृष्ट रहे और शुभग्रह से युत-दृष्ट नहीं रहे तो वह मृत्युकारक होता है। सूर्य-चन्द्र अथवा राहु एक ही राशि में स्थित हों अर्थात् सूर्यग्रहण या चन्द्रग्रहण की स्थिति हो व लग्न पर शनि-मङ्गल की दृष्टि हो तो जातक की पन्द्रह दिन में मृत्यु

होती है। दशम स्थान में शनि, षष्ठ में चन्द्र और सप्तम भाव में मंगल हो तो जातक का माता सहित मरण होता है। लग्न में शनि अष्टम में चन्द्र और तृतीय स्थान में गुरु रहे तो मरणप्रद योग होता है।

क्षीणचन्द्र लग्न में और पापग्रह केन्द्र तथा अष्टम में रहे तो जातक का अरिष्ट जानना चाहिए। यदि चन्द्रमा दो पापग्रहों के मध्य होकर लग्न, अष्टम, द्वादश या सप्तम में रहे तो शीघ्र ही मरण होता है। दो पापग्रहों के मध्य में होकर चन्द्रमा लग्न में रहे और सप्तम या अष्टम भाव में पापग्रह हों तो माता सहित जातक का मरण जानना चाहिए। शनि, सूर्य व मंगल तीनों 12वें, 9वें या 8वें भावों में हो और उन पर शुभग्रह की दृष्टि नहीं हो तब भी मरण जानना चाहिए।

लग्न से 4वें, 10वें, 12वें स्थानों में पापग्रह हों तो जातक की माता के निधन के पश्चात् पिता जातक को छोड़ घर से चला जाता है। राहु और बृहस्पति 6वें, लग्न व 4वें भावों में से किसी भी भाव में हों तो जातक के 23वें वर्ष में पिता का मरण जानना चाहिए। समस्त प्राणियों के पिता सूर्य व माता चन्द्र होते हैं। इन दोनों से ही जातक के शुभाशुभ का विचार किया जाता है। सूर्य से षष्ठ व अष्टम भावों में पापग्रह व उनकी शुभग्रहों से युति या दृष्टि न हो तो पिता को कष्ट जानना चाहिए। इसी प्रकार चन्द्रमा से पापग्रहों की स्थितिवशात् बलाबल व विवेक अनुसार माता को कष्ट या मरण जानना चाहिए।

3.7 अरिष्टभङ्ग योग

अरिष्ट विचार के पश्चात् अरिष्ट को दूर करना भी ज्योतिषशास्त्र का मुख्य ध्येय रहा है। यह योग भी कुण्डली में ग्रह व भाव पर ही आधारित होते हैं। अरिष्ट योग तथा उसके भङ्गयोग का विचार करके ही जातक के विषय में फलादेश करना चाहिए।

बुध, शुक्र व गुरु इनमें से एक भी ग्रह केन्द्र में हों तो सब अरिष्टों का नाश उसी प्रकार होता है जैसे सूर्य का प्रकाश अन्धकार को नष्ट कर देता है। यदि लग्नेश बली होकर केन्द्र में स्थित हो तो समस्त अरिष्ट नष्ट हो जाते हैं।

इसी प्रकार शुक्ल एवं कृष्ण पक्ष भेद से भी अरिष्ट भङ्गादि का विचार किया जाता है। शुक्लपक्ष में रात्रि का जन्म हो व लग्न पर शुभग्रह की दृष्टि हो अथवा कृष्णपक्ष में दिन का जन्म हो तो और लग्न पर पापग्रह की दृष्टि रहो तो समस्त अरिष्टों का नाश हो जाता है। तुला लग्न में जन्म हो और 12वें भाव में सूर्य स्थित हो तो जातक दीर्घायु होता है। लग्न से चतुर्थ भाव में पापग्रह हों व गुरु केन्द्र या त्रिकोण में रहें तो जातक स्वस्थ दीर्घायु एवं मातृ-पितृ दोनों कुलों के लिए आनन्ददायक होता है। मङ्गल यदि बृहस्पति से युत अथवा दृष्ट रहे तो समस्त अरिष्टों का नाश होता है व माता के लिए शुभकारक होता है। चतुर्थ-दशम में पापग्रह हों और केन्द्र या त्रिकोण में शुभग्रह शुभग्रह हों तो पिता के लिए शुभकारक योग होता है।

अभ्यास प्रश्न –

9- ज्योतिषशास्त्र में रोगों का विचार करने के लिए उसको मुख्य रूप से कितने भागों में विभक्त किया गया है

10- शारीरिक जन्मजात रोगों के नाम बताईये

11- जन्मजात रोगों का कारण किसे माना गया है

12- ज्योतिष शास्त्र में जन्मजात रोगों का विचार किस से किया जाता है

13- लूलापन (बाहुहीनता) का कोई एक ज्योतिषीय योग बताईये

14- जन्मकुण्डली में चन्द्र एवं शनि पापग्रहों के साथ मीन, वृश्चिक, मेष, कर्क या मकर राशि में हों तो किस रोग की सम्भावना बनती है।

15- नवम भाव में मंगल का द्रेष्काण हो तथा उस पर पापग्रहों की दृष्टि हो तो शरीर का कौन सा अंग नहीं होता

16- गर्भाधान कुण्डली से विचारणीय एक जन्मान्ध योग का वर्णन कीजिए।

17- त्रिक स्थान कौन से हैं

18- द्वादशभाव में शनि हो तो किस नेत्र से काणा होता है

19- दृष्टनिमित्तजन्य आकस्मिक रोग किसे कहते हैं

20- दृष्टनिमितजन्य रोगों का विचार जन्मकुण्डली में किस किस से करना चाहिए

21- सूर्य की शारीरिक धातु क्या है

22- मज्जा किस ग्रह की धातु है

23- शिरोरोग वर्ग के मुख्य रोगों के नाम बताईये।

24- सिर में चोट लगने से होने वाले सिरदर्द का विचार किस ग्रह से करना चाहिए

25- नेत्ररोगों के विचार में प्रमुख भाव कौन हैं

26- नासिका के रोगों के योग बनाने में महत्वपूर्ण कारक ग्रह व भाव कौन से हैं

27- मुखरोगों का प्रतिनिधि ग्रह कौन है

28- प्रायः कण्ठरोग किन ग्रहों की दशान्तर्दशा में होते हैं

29- वात, पित्त और कफ के विकार से उत्पन्न रोग कौन कौन से हैं

30- अरिष्ट से ज्योतिषीय अभिप्राय क्या है

3.8 सारांश

ग्रहों को मुख्य आधार मानकर ही ज्योतिषशास्त्र में फल का निरूपण किया जाता है। ग्रहों के परस्पर युति-दृष्टि व स्थान बल के अनुसार शुभाशुभ फल का विवेचन किया जाता है। उपर्युक्त पाठ में ग्रहों- भाव एवं राशियों का ही ग्रहण कर जन्मकुण्डली में बनने वाले विविध रोगों के योगों का वर्णन किया गया है। प्रस्तुत पाठ में सर्वप्रथम योग शब्द के अर्थ एवं परिभाषा को स्पष्ट करते हुए ग्रह, राशि एवं भावों का परिचय प्रदान किया गया है। इसमें आपने जाना कि सूर्यादि ग्रह रोगकारक या अरिष्टकारक होने पर किस प्रकार के रोगों से कष्ट देते हैं? 6वें भाव में पापप्रभाववश राशियाँ भी किस प्रकार से रोगकारक हो जाती हैं? रोगकारक भाव कौन से हैं? तत्पश्चात् रोगों के जन्मजात एवं आगन्तुक भेद को समझते हुए लूलापन, लंगड़ापन, कुबड़ापन, अन्धत्व, मूकत्व, बधिरत्व, हीनांग एवं अधिकांग आदि कुछ शारीरिक जन्मजात रोगों के ज्योतिषीय योगों का आपने अध्ययन किया। फिर आगन्तुक रोगों के दृष्टनिमित्तजन्य आकस्मिक रोगों दुर्घटना, चोट एवं घाव, महामारी एवं छूत के रोग तथा शाप एवं अभिचारजन्य रोगों के ज्योतिषीय योगों को विस्तारपूर्वक पढ़ा। इसके बाद आपने अदृष्टनिमित्तजन्य शारीरिक रोगों के अन्तर्गत शिरोरोग, नेत्ररोग, कर्णरोग, नासारोग, मुखरोग, गलरोग, हस्तरोग, हृदयरोग, उदररोग, गुप्तरोग, गुदारोग एवं चरणरोग के ज्योतिषीय योगों का अध्ययन किया। फिर वातपित्तादि विकार से उत्पन्न रोग, मानसिक रोग आदि के ज्योतिषीय योगों को आपने पढ़ा। अन्त में अरिष्टयोगों की चर्चा करते हुए उनके परिहार के योगों का भी अध्ययन किया। ज्योतिषशास्त्र में अनेक प्रमाणिक योगों का वर्णन किया गया है किन्तु लिखित पाठ में रोगों के कतिपय योगों का ही वर्णन किया गया है। इस प्रकार आप संचित कर्मों

के आधार पर होने वाले रोगों के योगों को प्रस्तुत पाठ के आधार पर भलीभान्ति समझ गये होंगे, ऐसी आशा करते हैं।

3.9 शब्दावली

ग्रह	-	आकाश में विचरण करने वाले पिण्ड
तारे	-	आकाश में स्थिर गति जैसे दिखने वाले सुदूरवर्ती प्रकाशमान पिण्ड
राशि	-	नक्षत्रों का समूह
लग्न	-	क्रान्ति एवं क्षितिज वृत्त के पूर्वी सम्पात में स्थित राश्यादि
अरिष्ट	-	अशुभ
लग्नेश	-	लग्न का स्वामी
त्रिक	-	षष्ठ, अष्टम एवं द्वादश भाव
सूर्यजनित	-	सूर्य के कारण उत्पन्न होने वाले
क्षोभ	-	व्याकुलता
विषूचिका	-	दूषित पानी से होने वाला रोग, हैजा
सूजाक	-	एक संक्रामक यौन रोग जो नीसेरिया गानोरिआ नामक जीवाणु से होता है।
अतिसार	-	आँव का रोग, पेचिश, डायरिया
संग्रहणी	-	बार -बार दस्त होने की बीमारी
पाण्डु	-	पीलिया रोग, जोंडिश
यकृत	-	कलेजा, जिगर, पेट में दाहिनी ओर पाचन रस की थैली
त्रिदोष	-	वात, पित्त एवं कफ तीनों के विकार से शरीर में रोग
प्रमेह	-	थोड़ी थोड़ी देर में धातु सहित पेशाब होने का रोग
मधुमेह	-	पेशाब में शर्करा जाने का रोग, शर्करा प्रमेह
सन्निपात	-	इसमें वात, पित्त एवं कफ तीनों के बढ़ने से व्यक्ति शारीरिक व मानसिक सन्तुलन खो देता है।
वातज रोग	-	वायु के विकार से उत्पन्न रोग
सर्पदंश	-	साँप का काटना
तृष्णा	-	प्यास
दाह	-	जलना
पित्तज्वर	-	पित्त के विकार से बुखार
व्रण	-	घाव
स्फोट	-	फोड़ा
जठराग्नि	-	पेट में स्थित आग जो पाचन करती है.
उन्माद	-	चित्तविभ्रम, पागलपन, सनक
धीज्वर	-	मस्तिष्क का बुखार
सहज	-	साथ में उत्पन्न, जन्मजात
जड़ता	-	अचेतनता, जड़ होने की अवस्था, मूर्खता
हीनांग	-	शरीर का कोई अंग न होना

नवांश - एक राशि का नवाँ भाग

द्रेष्काण - एक राशि का तीसरा भाग

दृष्ट - देखा जाता हुआ

क्षीणचन्द्र - कृष्णपक्ष की अष्टमी से शुक्लपक्ष की अष्टमी का चन्द्र, जिसमें उसकी कलायें कम रहती हैं.

राशिस्थ - राशि में स्थित

भसन्धि - राशि सन्धि, मीन-मेष, कर्क-सिंह, वृश्चिक-धनु राशि गण्डान्त

गुलिक - छाया ग्रह के समान कल्पित। दिन में इष्ट समय होने पर दिनमान के आठ भाग करके उस दिन के वार से गणना कर प्रत्येक भाग में एक एक वार के स्वामी ग्रह के आधिपत्य की गणना की जाती है। आठवाँ भाग रिक्त रहता है। जिस खण्ड का स्वामी शनि होता है, उसे ही गुलिक कहते हैं। परन्तु रात्रि में इष्ट समय होने पर रात्रिमान का आठ भाग कर उस दिन के वार स्वामी से पंचम ग्रह से गणना होती है।

चरराशि - मेष, कर्क, तुला, मकर राशियाँ

अस्थि - हड्डी

गण्डमाला - गले में माला के जैसे गाँठे (गिल्टियाँ)होना

हृदयकम्प - हृदय का काँपना, घबरा जाना

अजीर्ण - अपच, बदहजमी

मन्दाग्नि - पाचन शक्ति का कमजोर होना

गुल्मरोग - पेट में गोला सा बन जाता है।

कृमि - कीड़ा

अश्मरी - किडनी या गुर्दे में पथरी होना

उपदंश - लैंगिक सम्बन्ध से उत्पन्न यौन रोग

शूक - औषधियों के लेप से लिंग पर घाव, फुंसी आदि का होना

वृषणवृद्धि - अण्डकोश का बढ़ना

प्रदर - स्त्रीरोग, जिसमें स्त्रियों के गर्भाशय से सफेद या लाल रंग का लसीसा पानी सा बहता है।

अर्श - बवासीर, Piles

भगन्दर - गुदा द्वार पर एक प्रकार के फोड़ा से पैदा होकर गुदा द्वार के अन्दर व बाहर नली के रूप में
घाव पैदा करता है। Fistula

श्लीपद - फीलपाँव, हाथी पाँव, इस रोग में पाँव फूलकर मोटे हो जाते हैं।

पंगुता - लकवे के प्रभाव से लूलापन

बन्ध्यात्व - बाँझपन

पक्षाघात - लकवा पड़ना, Paralysis

सन्धिशूल - जोड़ों में सूजन व पीड़ा

श्लेष्मा - कफ या बलगम

क्षयरोग - तपेदिक

अपस्मार - मिरगी रोग, Epilepsy

3.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1- योग का सामान्य अर्थ जोड़ से है। जोड़ अर्थात् ग्रहों या नक्षत्रों अथवा राशि का जोड़। जब कोई एक या एक से अधिक ग्रह किसी राशि अथवा नक्षत्र में परस्पर युति- दृष्टि अथवा स्थित को प्राप्त करते हैं तो उसे उन ग्रहों का योग कहा जाता है। जिनके फलस्वरूप उत्पन्न होने वाला शुभाशुभ फल जनसामान्य को प्रभावित करता है।

2- ज्योतिष के अनुसार ग्रहों की संख्या नौ है।

3- नक्षत्रों के समूह को राशि कहते हैं।

4- एक राशि में 30 अंश होते हैं।

5- कुण्डली में भावों की संख्या 12 होती है।

6- अग्निदाह, उष्णज्वर, पित्त, क्षोभ, जलन, ब्रेन हैमरेज इत्यादि

7- बुध

8- लग्नादि भाव तथा मेषादि राशियाँ पापग्रहों के मध्य रहने से, पापग्रहों से युति या दृष्टि सम्बन्ध रखने से, त्रिक स्थान से सम्बन्ध रखने से, राशिस्वामी के अशुभ स्थान में रहने से, भाव राशि या इनके स्वामियों के बलहीन होने से, भाव से चौथे, आठवें एवं बारहवें स्थान में या त्रिकोण स्थान में पापग्रहों के होने से, रोग कारकग्रहों से सम्बन्ध होने से तथा शुभग्रहों के प्रभाव से मुक्त होने से रोगकारक बनती हैं।

9- ज्योतिषशास्त्र में रोगों का विचार करने के लिए उसको मुख्य रूप से दो भागों में विभक्त किया गया है – सहज या जन्मजात रोग तथा आगन्तुक रोग।

10- लूलापन, लंगड़ापन, कुबड़ापन, अन्धत्व, मूकत्व, बधिरत्व, नपुंसकत्व. हीनांग एवं अधिकांग आदि कुछ शारीरिक रोग जन्मजात होते हैं।

11- जन्मजात रोगों का कारण जातक का पूर्वजन्मकृत कर्म एवं माता-पिता द्वारा किया गया कर्म माना गया है।

12- ज्योतिष शास्त्र में जन्मजात रोगों का विचार गर्भाधान कुण्डली एवं जन्मकुण्डली से किया जाता है।

13- दिन में जन्म हो, शुक्र चतुर्थभाव में और शनि, मंगल, बुध व गुरु एक साथ हों तो बाहुहीनता योग बनता है।

14- पंगुता

15- नवम भाव में मंगल का द्रेष्काण हो तथा उस पर पापग्रहों की दृष्टि हो तो पैर नहीं होता।

16- गर्भाधान कुण्डली में एक साथ स्थित सूर्य व चन्द्र से षष्ठ ,अष्टम या द्वादश भाव में द्वितीयेश मंगल स्थित हो तो जन्मान्ध योग होता है।

17- षष्ठ, अष्टम व द्वादश भाव

18- द्वादशभाव में शनि हो तो दाहिने नेत्र से काणा होता है।

19- शाप, अभिचार, घात, संसर्ग, महामारी एवं दुर्घटना आदि प्रत्यक्ष घटनाओ द्वारा उत्पन्न होने वाले रोगों को दृष्टनिमित्तजन्य रोग कहते हैं।

20- दृष्टनिमितजन्य रोगों का विचार जन्मकुण्डली के षष्ठ स्थान, षष्ठेश ग्रह, षष्ठ स्थान में स्थित ग्रह तथा षष्ठ स्थान को देखने वाला ग्रह इन चारों से करना चाहिये।

21- अस्थि (हड्डी)

22- मंगल की धातु मज्जा है।

23- शिरशूल, गंजापन, उन्माद, मिरगी, मूर्च्छा आदि रोग।

24- सिर में चोट लगने से होने वाले सिरदर्द का विचार मंगल से करना चाहिए।

25- नेत्ररोगों के विचार में द्वितीय एवं द्वादश भाव प्रमुख हैं। साथ ही षष्ठ तथा अष्टम भाव से भी रोग विचार करना चाहिए।

26- नासिका के रोगों के योग बनाने में चन्द्र व शुक्र महत्वपूर्ण हैं। साथ ही लग्न व लग्नेश पर पापग्रहों का प्रभाव भी नासिका रोगों को बढ़ाता है।

27- बुध मुखरोगों का प्रतिनिधि ग्रह है।

28- सूर्य व शुक्र के दशान्तर्दशा में प्रायः कण्ठरोग होते हैं।

29- आमवात, शूल, सन्धिशूल, पक्षाघात, रक्तपित्त, दाह, तृष्णा, कफ, खांसी, श्वास, ज्वर, फोड़ा-फुन्सी, दाद, खाज, खुजली आदि रोग वात, पित्त और कफ के विकार से उत्पन्न रोग होते हैं।

30- अरिष्ट से अभिप्राय जातक के प्रारम्भिक जीवन में घटने वाली अशुभ घटनाओं से है। घटनाओं के सूचक ग्रह होते हैं अतः ग्रहाधारित बनने वाले इन योगों से अरिष्ट का विचार जातक के जन्म से ही किया जाता है।

3.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. योग शब्द की परिभाषा स्पष्ट करते हुए ग्रह, राशि एवं भावों का सम्पूर्ण परिचय लिखिए।
2. सहजरोगों के ज्योतिषीय योगों का सुविस्तृत वर्णन कीजिए।
3. दृष्टनिमित्तजन्य (आकस्मिक) रोगों का वर्गीकरण करते हुए उनके ज्योतिषीय योगों पर चर्चा प्रस्तुत कीजिए।
4. अदृष्टनिमित्तजन्य शारीरिक रोगों के ज्योतिषीय योगों का विश्लेषण कीजिए।
5. वातपित्तादि विकार से उत्पन्न रोगों के ज्योतिषीय योगों पर प्रकाश डालिए।
6. मानसिक रोगों के ज्योतिषीय योगों पर विमर्श प्रस्तुत कीजिए।
7. अरिष्टयोग एवं अरिष्टभङ्ग योगों का सुविस्तृत वर्णन कीजिए।

3.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. ज्योतिष शास्त्र में रोग विचार-डॉ. शुकदेव चतुर्वेदी-मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1992
2. सारावली, सम्पा.डॉ.मुरलीधर चतुर्वेदी, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी
3. जातकालङ्कार-सम्पा.स्व. पं. सीताराम झा- मास्टर खेलाडीराम एण्ड सन्स, वाराणसी
4. बृहज्जातक- सम्पा. केदारदत्त जोशी-मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी 2016
5. लघुजातक- सम्पा. के एस.चरक-यू एम ए पब्लिकेसन्स, दिल्ली, 2008
6. जातकतत्त्वम् - दैवज्ञ महादेव शर्मा-भुवनेश्वरी यंत्रालय, रतलाम, सन् 1915
7. संस्कृत हिन्दी कोश- वामन शिवराम आप्टे-मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 2001
8. जातक पारिजातः-वैद्यनाथ - चौखम्बा संस्कृत सीरिज, वाराणसी, 1942
9. सर्वार्थ चिन्तामणि – गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास- कल्याण , बम्बई, 1956
10. लघुपाराशरी- गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास, कल्याण, बम्बई, 1937
11. फलदीपिका-आचार्य मन्त्रेश्वर- मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1975
12. बृहत्पाराशर होरा शास्त्र- मा.खेलाडीलाल संकटाप्रसाद, वाराणसी, 1968

इकाई-04 दशा पर आधारित फल

इकाई की रूपरेखा

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 दशा विचार

अभ्यास प्रश्न

4.4 विंशोत्तरी दशासाधन विचार

अभ्यास प्रश्न

4.5 अष्टोत्तरी दशा विचार

4.6 दशाफल विवेचन के सामान्य नियम

4.7 दशानुसार रोग विचार

अभ्यास प्रश्न

4.8 तन्वादि द्वादश भाव सम्बन्धी सामान्यदशाफल विचार

- 4.8.1 लग्न भाव सम्बन्धी दशाफल
- 4.8.2 धनभाव सम्भन्धी दशाफल
- 4.8.3 तृतीय भाव सम्बन्धी दशाफल
- 4.8.4 चतुर्थभाव सम्बन्धी दशाफल
- 4.8.5 पञ्चमभाव सम्बन्धी दशाफल
- 4.8.6 षष्ठभाव सम्बन्धी दशाफल
- 4.8.7 सप्तमभाव सम्बन्धी दशाफल
- 4.8.8 अष्टमभाव सम्बन्धी दशाफल
- 4.8.9 नवमभाव सम्बन्धी दशाफल
- 4.8.10 दशमभाव सम्बन्धी दशाफल
- 4.8.11 एकादश भाव सम्बन्धी दशाफल
- 4.8.12 द्वादश भाव सम्बन्धी दशाफल

4.9 मारक दशाफल

अभ्यास प्रश्न

4.10 सूर्यादि महादशा फल

- 4.10.1 सूर्य महादशा फल
- 4.10.2 चन्द्र महादशा फल

4.10.3 भौम महादशा फल
4.10.4 राहु महादशा फल
4.10.5 गुरु महादशा फल
4.10.6 शनि महादशा फल
4.10.7 बुध महादशा फल
4.10.8 केतु महादशा फल
4.10.9 शुक्र महादशा फल
अभ्यास प्रश्न
4.11 सारांश
4.12 शब्दावली
4.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
4.14 निबन्धात्मक प्रश्न
4.15 सन्दर्भ व सहायक ग्रन्थ

4.1 प्रस्तावना

ज्योतिषशास्त्र ग्रह, नक्षत्र, भाव व राशि पर आधारित शुभाशुभ फल का विवेचन करता है। ग्रहों से जनित फल व उनका प्रभाव प्रत्येक प्राणी को प्रभावित करता है। जिससे जीवन में घटने वाली प्रत्येक घटना में ग्रह कारक व सूचक बनते हैं। इन्हीं ग्रहों का मानव जीवन में जन्म से मृत्युपर्यन्त प्रभाव देखा जा सकता है। ग्रहों का स्थान प्रभाव, ग्रहों का परस्पर युति, ग्रहों के बलाबल अनुसार फल का विधान किया जाता है। साथ ही एक मुख्य पक्ष होता है जिसके आधार पर ग्रहों से जनित फल का विचार किया जाता है। जिसे दशा अर्थात् ग्रहदशा कहा जाता है। ग्रहदशा से

अभिप्राय ग्रहों के फल देने का काल भी कहा जा सकता है। जिससे मानव जीवन में किस आयु वर्ष में किस ग्रह का फल प्राप्त होगा, इसका विवेचन किया जाता है। प्रारब्ध के फल की प्राप्ति काल को जानने के लिए दशा, अन्तर्दशा एवं प्रत्यन्तर दशा आदि का विचार ज्योतिष शास्त्र करता है। दशायें भी कई प्रकार की कही गयी हैं जिनमें विंशोत्तरी, अष्टोत्तरी, योगिनी, चरदशा इत्यादि हैं। प्रस्तुत पाठ में ग्रहों की दशाओं को ही प्रमुखता से विचार करते हुए उनसे प्राप्त फल का प्रतिपादन किया जा रहा है।

4.17 उद्देश्य-

1. पाठकगण ग्रहों की दशाओं के क्रम को जानने में सक्षम होंगें।
2. दशाओं का साधन करने में समर्थ होंगें।
3. ग्रहदशाओं के काल का निर्धारण करने में सक्षम होंगें।
4. दशाफल जानने में समर्थ होंगें।
5. दशान्तर्दशा क्रम को समझने में सक्षम होंगें।
6. दशाओं के विविध प्रकारों को जान सकेंगे।
7. मारकादि दशाओं का लक्षण व फल ज्ञात कर सकेंगे।
8. रोगविचार में दशा का महत्व जान सकेंगे।

4.18 दशा विचार

आप जानते ही हैं कि ज्योतिषशास्त्र में फल निर्धारण हेतु ग्रह एवं नक्षत्रों की विशेष भूमिका रहती है। नक्षत्र, भाव एवं ग्रहों के अन्तः सम्बन्ध से ही दशा में प्राप्त शुभाशुभ फल का निर्धारण किया जाता है। फलानि नक्षत्रदशाप्रकारेण। ग्रहदशाओं के फल ज्ञान हेतु नक्षत्रों को ही मुख्य आधार बनाया जाता है। क्योंकि फल ज्ञान की सूक्ष्मता के लिए नक्षत्र एक सूक्ष्म इकाई है।दशाक्रम में अनेक प्रकार दशाएँ भारतीय ज्योतिषशास्त्र में वर्णित हैं। जिनमें नक्षत्राधारित पाराशरोक्त विंशोत्तरी, अष्टोत्तरी आदि दशाएँ, महर्षि जैमिनि के मतानुसार चरादि दशाएँ, वराहमिहिरोक्त दशाएँ आदि हैं। बृहत्पाराशरहोराशास्त्र में महर्षि पाराशर ने38 दशाओं की साधनविधि का वर्णन किया है।किन्तु समय के साथ-साथ अनेक दशाओं का प्रयोग कमहोता गया है।इसका मुख्य कारण दशाओं से सम्बन्धित फल व काल विशेषानुसार उनकी लोकप्रियता है। कलौ पाराशरः स्मृतः के अनुसार पाराशरोक्त ग्रह फल व दशाफल मुख्य रूप से विचारणीय है। आचार्य पाराशर ने लघुपाराशरी ग्रन्थ में विशेष रूप से नक्षत्राधारित दशाओं से फलविवेचन का निर्देश दिया है। यथा-

फलानि नक्षत्रदशाप्रकारेण विवृण्महे।
दशाविंशोत्तरी चात्र ग्राह्या नाष्टोत्तरी मता।।

नक्षत्राधारित दशाओं में विंशोतरी व अष्टोत्तरी दशा का अधिक उपयोग सम्प्रति प्राप्त होता है।विंशोत्तरी दशा में कुल वर्ष 120 तथाअष्टोत्तरी दशा में कुल दशावर्ष 108 होते हैं।इनके फल का विवेचन भी ग्रन्थों में प्राप्त होता है। किस परिस्थिति में अष्टोत्तरी व किस परिस्थिति में विंशोतरी दशा का ग्रहण किया जाए ?इसके सन्दर्भ में कुछ आचार्यों का कथन है किकृष्णपक्ष के दिन में व शुक्लपक्ष की रात्रि में जातक का जन्म हो तो अष्टोत्तरी दशा का ग्रहण किया जाना चाहिए। इसके विपरीत होने पर विंशोत्तरी दशा ग्राह्य है। कुछ विद्वानों का मत है कि विंशोतरी दशा सभी के लिए ग्राह्य है, क्योंकि विंशोतरी दशा का प्रयोग फलित सिद्धान्त के साथ करने से फल की सटीकता

सर्वत्र समान रूप से हो सकती है। इसी सन्दर्भ में आचार्य मीठालाल ओझा के मतानुसार दशा विंशोतरीचाऽत्रग्राह्या नाष्टोत्तरी मता का पाठान्तर दशा विंशोतरी ग्राह्या मता चाष्टोत्तरी तथा प्राप्त होता है। जिसके आधार पर अष्टोत्तरी व विंशोतरी दोनों दशाएँ दशाफल विचार में उपयुक्त हैं। इसमें भी मुख्यतः विंशोतरी को ही ग्रहण करने का निर्देश प्राप्त होता है। जिस कारण दशा के प्रयोग का औचित्य निर्धारण गौण मानकर हर जगह हर जातक के लिए विंशोतरी का ही प्रयोग करना सही है। इसी सन्दर्भ में पाराशरोक्त विंशोत्तरी दशा साधन विधि को हीमुख्यरूप से इस पाठ में निरूपित करने का प्रयास किया गया है।इस दशा को पाँच रूपों में स्वीकार किया गया है। जिसमें महादशा, अन्तर्दशा, प्रत्यन्तरदशा, विदशा(सूक्ष्मदशा) तथा उपदशा (प्राणदशा) हैं।

अभ्यास प्रश्न

प्रश्न 1. पाराशर ने कितनी दशाओं की साधनविधि का वर्णन किया है?

प्रश्न 2. नक्षत्राधारित दशाओं में मुख्य दो दशायें कौन सी हैं?

प्रश्न 3. विंशोत्तरी दशा में कुल वर्ष कितने होते हैं?

प्रश्न 4. अष्टोत्तरी दशावर्ष संख्या कितनी होती है?

प्रश्न 5. दशाओं केपाँच रूपों में कौन कौन सी दशायें स्वीकृत हैं?

4.19 विंशोत्तरी दशासाधन विचार -

नक्षत्राधारित दशाओं के साधन हेतु नक्षत्रों को ही मुख्य गणना का आधार माना गया है। जिसमें नक्षत्रों की गणना कर ग्रहों के अन्तः सम्बन्ध से दशाफल का विवेचन किया गया है। सर्वप्रथम विंशोतरी दशा हेतु पाराशरी नियम प्रस्तुत हैं –

कृत्तिका नक्षत्र से आरम्भ कर जन्म नक्षत्र तक गिनने से जो संख्या प्राप्त हो उसमें 9 का भाग देने से शेष जो रहे उसे दशाक्रमानुसार ग्रहण करना चाहिए। दशाक्रम में सूर्य, चन्द्र, मंगल, राहु, गुरु, शनि, बुध, केतु व शुक्र होते हैं। इनके दशावर्ष क्रमानुसार 06, 10, 07, 18, 16, 19, 17, 07 व 20 वर्ष होते हैं। अर्थात् विंशोतरी दशा में सूर्य के 06, चन्द्रमा के 10,मंगल के 07, राहु के 18, गुरु के 16, शनि के 19, बुध के 17, केतु के 07 व शुक्र के 20 दशा वर्ष होते हैं। विंशोतरी महादशा में कुल वर्षमान 120 वर्ष होता है। जो विंशोत्तरी दशा पद्धति में मनुष्य की परमायु मानी गई है। इस दशा पद्धति में 27 नक्षत्रों को निम्न प्रकार से कृत्तिकादि क्रम में प्रस्तुत किया है।

विंशोत्तरी दशा चक्र

ग्रह	सूर्य	चन्द्र	मंगल	राहु	गुरु	शनि	बुध	केतु	शुक्र
दशावर्ष	06	10	07	18	16	19	17	07	20
नक्षत्र	कृ. रो. मृ.	आ. पुन. पु.	आश्ले. मघा पू.फा.	उ.फा. ह. चि.	स्वा. वि. अनु.	ज्ये. मू. पू.षा.	उ.षा. श्रव. धनि.	शत. पू.भा. उ.भा.	रेव. अश्वि. भर.

उदाहरण- जन्म नक्षत्र – अनुराधा। कृत्तिकादि क्रम से गिनने पर जन्म नक्षत्र अनुराधा की संख्या 15 हुई। संख्या 15 में 9 का भाग देने पर शेष 06 प्राप्त हुआ। ग्रहदशा में क्रमांक 06 होने पर सूर्यादि क्रम में गिनने पर शनि प्राप्त हुआ। अर्थात् जन्म काल में शनि की महादशा होगी, जिसके दशा वर्ष 19 हैं।

भयात व भभोग से दशासाधन- महादशा का भुक्त भोग्य वर्षादि ज्ञान करने के लिए भयात को ग्रह महादशा वर्ष से गुणा कर भभोग से भाग देने पर लब्धि ग्रह द्वारा भुक्तमान वर्ष,मास, दिन, दण्ड और पल में प्राप्त होता होगा। उसको ग्रह की महादशा वर्ष संख्या में घटाने पर ग्रह भोग्य वर्षादि मान होगा।

भयातगुणितं खेटदशामानं भभोगहृत्।
भुक्तवर्षादिकं तस्य भोग्यं माने विशोधनात्।।

ग्रह भुक्तदशा वर्षादि =पलात्मक भयात × दशावर्ष
पलात्मक भभोग

तथा भोग्यवर्षादि = दशावर्ष – ग्रह भुक्त वर्षादि ।

उदाहरण – यदि गतनक्षत्र विशाखा का मान घटीपल में 25:30, जन्मनक्षत्र अनुराधा का मान 27:24 तथा इष्टकाल - 12:30 है। यदि पञ्चाङ्ग में देखने पर गतनक्षत्र विशाखा का मान घटीपल में 25:30,

जन्मनक्षत्र अनुराधा का मान 27:24 तथा इष्टकाल 12:30 है। अनुराधा नक्षत्र होने से

तब भयात् साधन - 60:00 – गतनक्षत्रमान = शेषमान। शेषमान + इष्टकाल = भयात्
60:00 – 25:30= 34:30। 34:30 + 12:30= 47:00 भयात् मान

47×60+00 = 2820 पलात्मक भयात

भभोगसाधन - शेषमान + वर्तमान नक्षत्रमान
34:30 + 27:24= 61:54, 61×60+54 = 3714 पलात्मक भभोग

दशा साधन- पलात्मक भयात × दशावर्ष = 2820×16 = 12 वर्ष 01 माह 23 दिन 30 घटी 20 पल
पलात्मक भभोग 3714

अतः भोग्यदशावर्षादि = 16 वर्ष - 12 वर्ष 01 माह 23 दिन 30 घटी 20 पल
= 03 वर्ष 10 माह 06 दिन 29 घटी 40 पल

विंशोत्तरी दशा चक्रम्

ग्रहदशा	शनि	बुध	केतु	शुक्र	सूर्य	चन्द्र	भौम	राहु	गुरु
वर्ष	03	20	27	47	53	63	70	88	104
मास	10	10	10	10	10	10	10	10	10
दिन	06	06	06	06	06	06	06	06	06

घटी	29	29	29	29	29	29	29	29	29
पल	40	40	40	40	40	40	40	40	40

अन्तर्दशा साधन- अन्तर्दशा साधन हेतु दशावर्ष में दशावर्ष को गुणाकर 10 से भाग देने पर लब्धि मास और शेष में 30 से गुणाकर 10 का भाग देने पर लब्धि दिन होते हैं।

दशा दशा हता कार्या दशभिर्भागमाहरेत्।
यल्लब्धं तद्भवेन्मासस्त्रिंशन्निघ्नं दिनं भवेत्।।

उदाहरण-

गुरु महादशा में शनि की अन्तर्दशा-

गुरु ग्रह दशावर्ष 16× शनि ग्रह दशावर्ष 19= 304 = 30 मास 12 दिन

10 10

अतः गुरु में शनि की अन्तर्दशा = 02 वर्ष 06 मास 12 दिन।

इसी प्रकार भारतीय कुण्डली विज्ञान जैसे कुण्डली निर्माण ग्रन्थों की सहायता से प्रत्यन्तर्दशा, सूक्ष्म दशा, प्राणदशा का भी साधन करना चाहिए।

अभ्यास प्रश्न

प्रश्न 06. विंशोत्तरी महादशा में चन्द्र ग्रह के दशावर्ष कितने होते हैं?

प्रश्न 07. विंशोत्तरी महादशा में केतु के दशावर्ष संख्या क्या है?

प्रश्न 08. अनुराधा नक्षत्र में किस ग्रह की दशा होती है? तथा उसके दशावर्ष कितने होते हैं?

प्रश्न 09. विंशोत्तरी महादशा निकालने का सूत्र बताईये?

प्रश्न 10. अन्तर्दशा साधन सूत्र बताईये?

4.20 अष्टोत्तरी दशा विचार

अष्टोत्तरी दशा में केतु को छोड़कर अन्य ग्रहों की दशाओं का ग्रहण किया गया है। इस दशा में दशा पति क्रमशः सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, शनि, गुरु, राहु व शुक्र होते हैं। इनके दशा वर्ष क्रमशः 06, 15, 08, 17, 10, 19, 12 व 21 वर्ष होते हैं।

आर्द्रा नक्षत्र से 4 नक्षत्र, उसके बाद 3 नक्षत्र, पुनः 4 नक्षत्र और उसके बाद 3 नक्षत्र। इसी प्रकार 4 व 3 नक्षत्रक्रम से अभिजित् सहित 28 नक्षत्रों के आठ विभाग करने से इन आठ खण्डों के स्वामी राहु-पर्यन्त सूर्यादि ग्रह होते हैं। जिस खण्ड में जन्मनक्षत्र हो, उसके स्वामी की दशा जन्म के समय समझनी चाहिए।

अष्टोत्तरी दशा के भुक्त और भोग्य दशा ग्रहण में थोड़ी विशेषता है। अष्टोत्तरी दशाचक्रों में आर्द्रादि चार नक्षत्र हैं तथा कृत्तिकादि गणनाक्रम में सूर्यदशा के कृत्तिकादि गणनाक्रम में सूर्यदशा के कृत्तिकादि चार नक्षत्र होते हैं। सूर्य की दशा 06 वर्ष या 72 मास की है। 72 में 04 का भाग देने से 18 मास प्रत्येक नक्षत्र के दशामान हुए। चन्द्रमा की महादशा 15 वर्ष में पुनर्वसु, पुष्य और

आश्लेषा नक्षत्रों की दशाएँ सम्मिलित हैं। चन्द्र दशावर्ष 15 में 3 का भाग देने से पुनर्वसु आदि तीनों नक्षत्रों के दशामान 5 वर्ष या 60 मास हुए। इस प्रकार अन्य ग्रहों की दशाओं में भी समझना चाहिए।

अष्टोत्तरी दशाचक्र (आर्द्रादि गणनाक्रम)

दशापति	सूर्य	चन्द्र	मंगल	बुध	शनि	गुरु	राहु	शुक्र
नक्षत्र	आ.	म.	ह.	अनु.	पू.षा.	धनि.	उ.भा.	कृत्ति.
	पुन.	पू.फा.	चि.	ज्ये.	उ.षा.	शत.	रेव.	रो.
	पु.	उ.फा.	स्वा.	मू.	श्रव.	पू.भा.	अश्वि.	मृग.
	आ.		विशा.		अभि.		भर.	
दशावर्ष	06	15	08	17	10	19	12	21

भयात व भभोग से दशासाधन- विंशोत्तरीमहादशा के समान ही अष्टोत्तरी महादशा का भुक्त भोग्य वर्षादि ज्ञान करने के लिए पलात्मक भयात को ग्रह महादशा वर्ष से गुणा कर पलात्मक भभोग से भाग देने पर लब्धि ग्रह द्वारा भुक्तदशा के मान वर्ष,मास, दिन, दण्ड और पल में प्राप्त होता होगा। उसको ग्रह की महादशा वर्ष संख्या में घटाने पर ग्रह भोग्यदशा वर्षादि मान होगा। अन्तर्दशादि मान का साधन भी विंशोत्तरी दशा के अन्तर्दशादि साधन के अनुसार ही करना चाहिए।

4.21 दशाफल विवेचन के सामान्य नियम

किसी भाव में स्थित ग्रह अपनी दशा प्राप्त होने पर उस भाव के शुभाशुभ फल को देते हैं। यदि शुभग्रह है तो उसकी दशा में उस भावजनित शुभफल और यदि पापग्रह है तो उसकी दशा में उस भाव के फल की हानि होती है। शुभग्रहों से युक्त ग्रह की दशा शुभद होती है तथा पापग्रहों से युक्त ग्रह की दशा नेष्ट फल देती है। मिश्र ग्रह की दशा में मिश्र फल प्राप्त होता है।

शुभग्रह की दशान्तर्दशा में उस ग्रह से सम्बन्धित धातु और वित्त की वृद्धि होती है। यदि पापग्रह है तो उसकी दशान्तर्दशा में उससे सम्बन्धित धातु अथवा उससे सम्बन्धित व्यापार में हानि होती है। भाव से सम्बन्धित कार्य उस भावेश की दशान्तर्दशा में सिद्ध होते हैं। यदि शुभग्रह हो तो कार्य-सिद्धि और अशुभ ग्रह है तो उसकी दशान्तर्दशा में उस कार्य का विनाश होता है।

अशुभ दशा -लग्न में यदि नीचराशिगत ग्रह स्थित हो और वह निर्बल ग्रह से युत हो तो वह अशुभ फल देता है। वहीं यदि राहुयुक्त हो तो अनिष्ट फल देता है। उस ग्रह के क्षेत्र में गए हुए ग्रह और उससे युक्त ग्रह की दशाएँ भी अनिष्ट फल देती हैं। अस्तङ्गत अथवा राहु से युत ग्रह की दशा में उस ग्रह के भावफल का नाश होता है। भावेश नीच राशि अथवा शत्रुराशि आदि निकृष्टस्थानगत हो तो अशुभ फल देता है। यदि निर्बल हो तो अत्यधिक कष्टकारक होता है।

शुभ दशा -भावेश बली होकर अपनी राशि, उच्च राशि, त्रिकोण राशि या शुभवर्ग में स्थितहोकर जातक को पूर्ण फल प्रदान करता है। किसी भाव का स्वामी जिस भाव में स्थित हो उस भावगत राशि का स्वामी यदि उच्चराशिगत हो अथवा शुभ ग्रहों से दृष्ट हो तो उसकी दशा राज्य देने वाली होती है। पञ्चमेश की दशा में धर्मेश (नवमेश) की अन्तर्दशा अत्यन्त शुभप्रद होती है । कर्मेश (दशमेश) की दशा यदि धर्मेश(नवमेश) से युत हो तोराज्य और पुत्रादि देती है। इसी प्रकार दशमेश से युक्त चतुर्थेशकी दशा भी पुत्र-राज्यादि सुख को देने वाली होती है।

पञ्चमेश से संयुक्त ग्रह की दशाशुभप्रद होती है। इसी प्रकार धर्मेश से युत ग्रह की दशा भी अत्यन्त शुभ फल देनेवाली होती है। पापग्रह से दृष्ट ग्रह की दशा राज्यसुखकारक होती है तथा शुभग्रहों सेयुत ग्रह की दशा धन-धान्यादिप्रदात्री होती है। पञ्चमेश से युत लग्नेश की दशाराज्यसुख देने वाली होती है एवं पञ्चमेश के साथ युति करने वाले दशमेश की दशा मेंभी राज्यादि सुख और धन की प्राप्ति होती है । उसीप्रकार दशमेश से युत पञ्चमाधिपतिकी दशा एवं पञ्चमेश से युत दशमेश की दशा भी शुभ फलदायक होती है ।

चतुर्थेशसेयुत नवमाधिपति की दशा शुभ होती है।पञ्चमभावस्थ दशमेश की दशा शुभप्रद होती है। इस प्रकार शुभाशुभ स्थान मेंस्थित होकर दशमेश सम्मान, धन और सुख को देने वाला होता है। सुखेश से युक्तदशमेश की दशा भी मनुष्य के लिए सुखकर होती है । षष्ठ और सप्तम भावों का स्वामीयदि एक ही ग्रह हो और दशम भाव में स्थित हो तो उसकी दशा शुभद होती है । यदिषष्ठेश या सप्तमेश दशम भाव के स्वामी से युत हो तो भी उसकी दशा सुखकारक होतीहै । द्वितीय और सप्तम भाव का स्वामी यदि एक ही ग्रह हो और वह चतुर्थ भाव में स्थितहो अथवा वह चतुर्थाधिपति से युक्त हो तो उसकी दशा भी शुभद होती है।

छठे, आठवें और बारहवें भाव का स्वामी यदि पञ्चमेश से युक्त हो तो उसकी दशा शुभद होती है। चतुर्थेश दशम भाव में औरदशमेश चतुर्थ भाव में स्थित हो तो उन दोनों की दशा शुभ फल देने वाली होती है । पञ्चमेश, दशमेश, चतुर्थेश और नवमेश किसी भी भाव में युत हो तो उनकीदशाएँ राज्यसुख को देने वाली होतीहैं।

4.22 दशानुसार रोग विचार

विविध योगों के अनुसार रोगोत्पत्ति के कारण ज्योतिषशास्त्र में स्पष्ट किए जाते हैं। रोगकारक ग्रह रोगों की सूचना देते हैं। ग्रह रोगों को उत्पन्न नहीं करते अपितु उत्पन्न होने वाले रोगों की सूचना देते हैं। अतः प्रत्येक रोग के लिए ग्रह योग के आधार पर सम्बन्धित रोगकारक ग्रह के द्वारा उस रोग के उत्पत्ति काल का निर्धारण किया जाता है। रोगोत्पत्ति के सम्भावित समय का निर्धारण दो प्रकार से किया जाता है- 1. योग द्वारा 2. दशा द्वारा। योग में बतलाये गये वर्ष में रोगोत्पत्ति के काल का निर्धारण दशा फल नियमों की अपेक्षा रखता है। दशाफल दो प्रकार का होता है-1. साधारण 2. विशिष्ट ।

1. साधारण -ग्रह साधारणतया जो फल देते हैं वह साधारण फल कहा जाता है।

2. विशिष्ट -ग्रह स्थान, स्थिति, बल एवं योग के कारण जो फल देते हैं वह विशिष्ट फल कहलाता है।

साधारण फल वह है जिसकी अनुभूति मात्र होती है। जबकि विशिष्ट फल जीवन में विलक्षण घटनाओं को घटित करता है।

रोगोत्पत्ति में विशेष - रोगेश, अष्टमेश, मारकेश, अवरोही, नीच या शत्रु राशिगत, पापयुक्त, पापदृष्ट, नीचांशगत, निर्बल, अनिष्टस्थान में स्थित तथा क्रूर षष्ठ्यंश आदि में स्थित ग्रह रोगकारक होता है। जीवन में जब-जब ऐसे ग्रह की दशा अन्तर्दशा, प्रत्यन्तरदशा, सूक्ष्मदशा एवं प्राणदशा आती है, तब-तब रोग होता है। इस प्रकार हम योग में बतलाये वर्षों के द्वारा तथा उक्त ग्रहों की दशाओं के द्वारा रोगोत्पत्ति के सम्भावित समय का यथार्थ रूप से निर्धारण कर सकते हैं।

अभ्यास प्रश्न

प्रश्न 11. अष्टोत्तरी दशा में कितने नक्षत्रों का ग्रहण किया जाता है?

प्रश्न 12. अष्टोत्तरी दशा में सूर्य के दशावर्ष कितने होते हैं?

प्रश्न 13. चतुष्कं त्रितयं से क्या अभिप्राय है?

प्रश्न 14. पापग्रहों से युक्त ग्रह की दशा कैसा फल देती है?

प्रश्न 15. कौन सेग्रह रोगकारक होते है?

प्रश्न 16. विशिष्ट दशा फल से क्या तात्पर्य है?

प्रश्न 17.छठे, आठवें और बारहवें भाव का स्वामी यदि पञ्चमेश से युक्त हो तो उसकी दशा कैसी होती है?

4.23 तन्वादि द्वादश भाव सम्बन्धी सामान्यदशाफल विचार

भाव सम्बन्धी दशाफल से अभिप्राय भावों में स्थित राशि के स्वामी व भावस्थ ग्रह की दशा के आधार पर फल विधान की प्रक्रिया है। विदित है कि ग्रह राशि एवं भाव के अन्तः सम्बन्ध से ही शुभाशुभ फल का निर्णय किया जाता है। भावों में स्थित राशि एवं ग्रह के अनुसार ही विविध फल देखने को मिलते हैं। द्वादश भाव एवं नौ ग्रहों का अन्तः सम्बन्ध होने पर प्राप्त फल का विवेचन किया जाता है।लग्नेश को देखने वाले, लग्नेश और लग्नस्थ ग्रह ये तीनों और त्रिक (षष्ठ, अष्टम और द्वादश) भावगत ग्रह यदि शत्रु, नीच राशिगत हों तथा दुर्बल हों तो अपनी दशा में उत्तम फल नहीं देते हैं।

4.8.1 लग्न भाव सम्बन्धी दशाफल

ग्रह यदि अपनी उच्चराशि, मित्रराशि और शुभ वर्गस्थ हो और शुभस्थान में स्थित हों तो शुभफल की प्राप्ति होती है। यदि लग्नेश अपने शत्रुग्रहोंके मध्य स्थित हो तो उनकी दशा शत्रुभय को देने वाली होती है। लग्न में राहु अथवा केतु स्थित हो और लग्नेश यदि अशुभ स्थान त्रिक में स्थित हो तो उसकी दशा में उसके शत्रुओं की अन्तर्दशा के समय अङ्ग-भङ्ग होता है। लग्न में यदि शत्रुपति (षष्ठेश) राहु-केतु से युत हो तो उसकी दशा और रोगेशादि की अन्तर्दशा में व्रण आदि से कष्ट होता है।

4.8.2 धनभाव सम्भन्धी दशाफल

धनभाव में स्थित ग्रह, धनभाव को देखने वाले ग्रह तथा धनाधिपति- इन तीनों की दशा-अन्तर्दशा धनलाभ के कारक (बृहस्पति) के नवांशादि वर्गेशों के पदार्थों से धनलाभ कराने वाली होती है। धनभाव में स्थित और पापग्रह से दृष्ट ग्रह यदि शत्रुराशि, नीच राशि में स्थित हों या सूर्य-सान्निध्य से अस्त हों तो उनकी दशान्तर्दशा में धनका नाश होता है। अथवा गोचर में भी उक्त द्वितीय भावस्थ ग्रह यदि दुष्ट बल से युत हों तब भी यही फल होता है। धनभाव और धनभावाधिपति यदि दोनों पापग्रहों से युक्त हों तो उनकी दशाओं में राजा के कोप से धन का नाश, स्थानच्युति तथा स्वजनों से विरोध होता है। यदि द्वितीयेश राहु के साथ स्थित हो तो उसकी दशान्तर्दशा में दन्त रोगजन्य पीड़ा होती है तथा बुध की अन्तर्दशा में जिह्वारोग से कष्ट होता है।

4.8.3 तृतीय भाव सम्बन्धी दशाफल

तृतीय, द्वितीय, नवम, एकादश और सप्तम भावों के स्वामियों की दशा में मनुष्यों को भ्रातृलाभ होता है। तृतीयेश, उसकी राशि के स्वामी अर्थात् तृतीयेश जिस राशि में स्थित हो उसके स्वामी तथा तृतीय भाव में स्थित ग्रह ग्रह इनमें जो बलवान् हो उसकी दशा भ्रातृसंख्या में वृद्धि करने वाली होती है। तृतीय भावस्थ ग्रह, तृतीयेश और तृतीयभाव कारक भौम यदि नीच, शत्रु

राशि अथवा अशुभ स्थान युत हों तो उनकी दशान्तर्दशा में धन, भाई और अधिकार का नाश होता है और रोग व पराजय होती है।

4.8.4 चतुर्थभाव सम्बन्धी दशाफल

सुखेश अर्थात् चतुर्थेश, लग्नेश और नवमेश केन्द्र अथवा त्रिकोणगत हों तो उनकी दशा में मातृकष्ट या मातृ निधन होता है। सूर्य और चन्द्रमा क्रमशः नवम, दशम या चतुर्थ भावगत हों तो अपनी दशान्तर्दशा में माता पिता दोनों का हरण करता है। चतुर्थेश यदि इन भावों पर दृष्टि रखता हो या इन भावों से युत हो अथवा सूर्य से सम्बन्धित ग्रह से युत या दृष्ट हों तब भी उपर्युक्त फल को प्रदान करते हैं। चतुर्थेश, चतुर्थभावकारक (चन्द्रमा) तथा उसके साथ स्थित ग्रह और चतुर्थभाव को देखने वाले ग्रहों में सर्वाधिक अनिष्टकारक ग्रह की दशान्तर्दशा में जातक की माता की मृत्यु होती है।

लग्नेश और चतुर्थेश यदि परस्पर शत्रु हों और चतुर्थेश लग्नगत हो तो उनकी दशान्तर्दशा में गृह-भूमि आदि का नाश करता है। चतुर्थेश की अन्तर्दशा में बन्धु-बान्धवों की हानि तथा शनि, भौम और मान्दी से युत ग्रह की अन्तर्दशा में रोग व अनर्थ होता है। चतुर्थेश के दशाकाल में स्वजनों एवं बन्धु-बान्धवों का विनाश होता है। यदि चतुर्थेश लग्नेश का शत्रु हो तो उसकी दशा में गृह, भूमि आदि का विनाश होता है।

4.8.5 पञ्चमभाव सम्बन्धी दशाफल

बृहस्पति, चन्द्रमा और लग्न से पञ्चम भाव पुत्रदाता होता है। अतः इन भावों के अधिपति ग्रहों की दशा में पुत्र प्राप्ति होती है। इनसे नवम भाव के अधिपतियों की दशा भी पुत्रकारक होती है। पञ्चमाधिपति और सप्तमाधिपति के तात्कालिक स्फुट राश्यादि की योगज राशि जिस नक्षत्र में हो, उस नक्षत्र के स्वामीदशा, नक्षत्र में स्थित ग्रह और उसके द्रष्टा ग्रह की अन्तर्दशा में भी पुत्रलाभ होता है। पञ्चमेश, पञ्चमभावकारक (बृहस्पति), पञ्चमभाव के द्रष्टा ग्रह और पञ्चम भाव में स्थित ग्रह ये चारों यदि अशुभ स्थान अर्थात् त्रिक् या त्रिषडाय के स्वामी हों, दुर्बल हों अथवा त्रिकस्थ हों, तो इनकी दशान्तर्दशा में पुत्र का नाश तथा बुद्धिनाश होता है। मानसिक रोग सम्भावित होते हैं। यदि ये चारों शुभ स्थान के स्वामी हों, शुभग्रह हों और बलवान् हों तो इनकी दशान्तर्दशा में सन्तान प्राप्ति और ऐश्वर्यादि का लाभ तथा श्रेष्ठ जनों से मित्रता होती है।

4.8.6 षष्ठभाव सम्बन्धी दशाफल

षष्ठेश जिस भाव में स्थित हो, जिस भाव को देखता हो उस भाव के स्वामी की दशा में शत्रुओं की वृद्धि होती है। बलवान् शनि, षष्ठेश और लग्नेश यदि केन्द्र अथवा कोणगत हों तो उनकी दशा और उनसे संयुक्त ग्रहों की दशा बन्धनादि देने वाली होती है। षष्ठभावगत ग्रहों की दशा में समस्त धनादि का विनाश और शत्रुओं की वृद्धि होती है।

बलवान् षष्ठेश की दशा में रोग का आगमन, विवाद, आधि-व्याधि, शत्रुसमूह, फोड़ा, दुष्टों की कृपा से कलंक, मानहानि, बौद्धिक ह्रास, विवेक और धन का क्षय होता है। जातक चिन्तित और परेशान होता है। असत्य के वशीभूत होने से धातुक्षयादि होता है। षष्ठेश की दशा विलाप देने वाली अर्थात् स्वजन के निधनादि से रुदनकारी होता है।

विशेष -

- षष्ठ भाव एवं षष्ठेश पापयुक्त हो तथा शनि-राहु से युक्त दृष्ट हो तो मनुष्य जीवन भर रोगी रहता है।
- षष्ठ भाव में मंगल तथा अष्टम भाव में षष्ठेश हो तो छठे या आठवें वर्ष में ज्वर होता है।
- षष्ठ भाव में गुरु हो तथा चन्द्रमा गुरु की राशि में हो तो 19वें या 22 वें वर्ष में कुष्ट रोग होता है।
- षष्ठ भाव में राहु, केन्द्र में शनि एवं अष्टम भाव में लग्नेश हो तो 26 वें वर्ष में क्षय रोग होता है।
- द्वादशेश षष्ठ में तथा षष्ठेश द्वादश में हो तो 29 या 30 वें वर्ष में गुल्म रोग होता है।
- शनि के साथ चन्द्रमा षष्ठ स्थान में हो तो 45 वें वर्ष में रक्तकुष्ठ होता है।
- लग्नेश लग्न में तथा शनि षष्ठ भाव में हो तो 49 वें वर्ष में वात रोग होता है।

4.8.7 सप्तमभाव सम्बन्धी दशाफल

शुक्र से युक्त सप्तमेश की दशान्तर्दशा विवाहप्रद होती है। द्वितीयेशाधिष्ठित राशि के स्वामी की दशान्तर्दशा में विवाह होता है। कर्म, आयु (दशम एवं अष्टम) भावाधिपति की दशा भी विवाहकारक होती है। सप्तमेश से युक्त ग्रह की और सप्तम भावस्थ ग्रहों की दशान्तर्दशा में भी विवाह होते हैं। सौम्य ग्रह शुभराशियों में स्थित हों तो उनकी दशा के आरम्भ में लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। शुभग्रह यदि अशुभ राशियों में स्थित हों तो दशा के मध्य भाग में विवाहादि उत्सव सम्भव होते हैं। पापग्रह यदि अशुभ राशिगत हों तो उसकी दशा के अन्तिम भाग में फल देते हैं। शुभग्रह की राशि में पापग्रह शुभग्रह के साथ स्थित हों तो उसकी समूची दशा फलद होती है।

4.8.8 अष्टमभाव सम्बन्धी दशाफल

अष्टमेश यदि त्रिकस्थ हो तो उसकी दशा में मृत्यु होती है। शनि जिस राशि में स्थित हो उस राशि के स्वामी की दशा और अष्टमेश की अन्तर्दशा में भी वही फल होता है। अष्टमेश की दशा में अष्टमस्थ ग्रह की अन्तर्दशा में निधन होता है। ग्रहों के बलाबल का सम्यक्तया विचार कर फलादेश करना आचार्यों द्वारा कहा गया है। लग्नेश यदि त्रिक भावों में राहु अथवा केतु के साथ स्थित हो तो लग्नेश और अष्टमेश से संयुक्त ग्रह की दशा मृत्यु को देने वाली होती है। लग्नेश और अष्टमेश से संयुक्त राशि के स्वामियों की दशा निधनकारक होती है। उपर्युक्त ग्रहों की दशा में प्रथम राहु की अन्तर्दशा में मृत्यु जाननी चाहिए।

लग्नेश और अष्टमेश बलवान् होकर केन्द्र या त्रिकोण में स्थित हों तो उनसे युक्त ग्रह की दशान्तर्दशा में रोग, अपवादादि फल प्राप्त होते हैं। लग्नेश और अष्टमेश अन्य ग्रहों के साथ केन्द्र या त्रिकोण में स्थित हों तो अष्टमभावस्थ ग्रह की दशान्तर्दशा निश्चय ही मृत्युदायक होती है।अष्टमेश और लग्नेश यदि शत्रुभावगत हों तथा शनि राहु या केतु से संयुक्त हो तो उसकी दशान्तर्दशा में शस्त्राघात से अथवा चोर से मृत्यु होती है। अष्टमेश के योग से ग्रह की दशान्तर्दशा में मृत्यु होती है। पित्रादि भावेशों से युत या दृष्ट हो तो अष्टमेश की दशान्तर्दशा में उन-उन सम्बन्धीजनों पितादि की मृत्यु होती है।

अष्टमेश अष्टमभावस्थ हो तो उसकी दशान्तर्दशा में रोगादि की उत्पत्ति होती है। लग्नस्थ लग्नेश की दशान्तर्दशा के प्रारम्भिक काल में शारीरिक कष्ट और आगे चलकर रोग से मुक्ति और शारीरिक सुख एवं हर्ष होता है। अष्टमेश यदि बलवान् हो तो लग्नेश की दशा और अष्टमेश की अन्तर्दशा में जातक का निधन होता है।जन्मकाल में यदि लग्न निर्बल हो तो लग्नेश और अष्टमेश

की दशान्तर्दशा में अतीव कष्ट होता है। रोगमुक्ति के बाद सुख प्राप्त होता है। अष्टमेश की दशा मृत्युकर होती है।

4.8.9 नवमभाव सम्बन्धी दशाफल

नवमेश शुभ स्थिति में होने पर भाग्योदय कारक होता है। परन्तुनवमेश राहु या किसी अन्य ग्रह के साथ हो तो नवमेश के साथ स्थित ग्रह व राहु की दशान्तर्दशा में पितृवियोग होता है। नवम में राहु और दशमेश स्वक्षेत्री हो तो इनकी दशान्तर्दशा में पिता की मृत्यु सम्भावित है। पंचम, नवम में सूर्य या शनि हो तो इनकी दशा भी पिता के लिए मारक होती है।

4.8.10 दशमभाव सम्बन्धी दशाफल

नवमेश व दशमेश का कोई भी सम्बन्ध बनने पर इनकी दशान्तर्दशा भाग्योदय व राजसुख, पदोन्नति आदि को देते हैं। दशमेश की अशुभ स्थिति माता के लिए कष्टकारी होती है।

4.8.11एकादश भाव सम्बन्धी दशाफल

लाभेश (एकादशेश) लग्न से त्रिकोण में हो अथवा लाभ स्थान में पापग्रह उच्चादि शुभ स्थानों में हों तो परस्पर ग्रहदशान्तर्दशा में लाभ कारी होते हैं।

4.8.12 द्वादश भाव सम्बन्धी दशाफल

व्ययेश की दशा में रोग, धनहानि एवं कष्ट होता है। द्वादश भाव में शुभग्रह होने पर सन्मार्ग में धनव्यय तथा पापग्रह होने पर असत्कार्यों में धन खर्च होता है। मिश्रित ग्रह होने पर दोनों प्रकार से धन खर्च होता है।

4.9 मारक दशाफल

द्वितीय एवं सप्तम भाव मारक भाव होते हैं। इनके स्वामी मारकेश होते हैं। इसका कारण यह है कि द्वितीय से द्वितीय अर्थात् तृतीय एवं सप्तम से द्वितीय अष्टम भाव से आयु का विचार भी किया जाता है। तृतीय एवं अष्टम से द्वादश भाव क्रमशः द्वितीय एवं सप्तम होते हैं जो आयु का व्यय करते हैं। द्वितीय व सप्तम भावों के स्वामी और षष्ठेश भी मारक शनि, पापग्रह और मृत्युकारक ग्रहों के योग से अन्य सभी मारकों को तिरस्कृत कर अशुभ फलकर्त्ता और मारक होते है। मारक ग्रह से सम्बन्ध करने वाला पापकर्त्ता शनि भी प्रबल मारक होता है। सूर्य और चन्द्रमा से अतिरिक्त मारक स्थानों में स्थित और उनके स्वामी ग्रह मारक होते हैं। इनकी दशान्तर्दशा में विचारपूर्वक मृत्यु को कहना चाहिए। मारकेश की दशावधि में मारक स्थानस्थ पापग्रहों, अशुभ युञ्जा की भुक्तिकाल में मृत्यु होती है।

बालारिष्ट में लग्नेश यदि अष्टमेश से तृतीय भाव में संयुक्त हो तो द्वितीयेश, तृतीयेश, सप्तमेश, रन्ध्रेश और एकादशेश की दशाओं में मृत्यु होती है। इन स्थानों में स्थित ग्रहों की दशा में भी मृत्यु होती है। यदि वे शुभग्रहों से युत हों तो जातक के आयुष्य की वृद्धि करते हैं। शैश्वावस्था में अल्प दोष भी मृत्युप्रद होता है। अन्य अवस्था काल में रोगादि को देने वाला होता है।

अभ्यास प्रश्न

प्रश्न 18. यदि द्वितीयेश राहु के साथ स्थित हो तो उसकी दशान्तर्दशा में किस रोग से पीड़ा होती है?

प्रश्न 19. मारक भाव कौन से हैं?

प्रश्न 20. बलवान् षष्ठेश की दशा क्या फल होता है?

प्रश्न 21. राज्यसुख किस भाव की दशा में प्राप्त होता है?

प्रश्न 22. बालारिष्ट में किन दशाओं में मृत्यु सम्भावित होती है?

4.10 सूर्यादि महादशा फल

ग्रहों के दशाक्रम के अनुसार फल का विवेचन किया जा रहा है। जिसमें विंशोत्तरी महादशाओं के फल का ही निरुपण प्रस्तुत पाठ में किया जा रहा है।

4.10.1 सूर्य महादशा फल

सूर्य उच्चराशि में या अपनी राशि में या केन्द्र में, लाभ अथवा त्रिकोण भाव में स्थित हो तो वह अपनी दशा और अन्तर्दशा में धन-धान्य का लाभ देता है। यदि सूर्य नीच राशि, अशुभ भाव या राशि में स्थित हो तो अशुभ फल देता है। सप्तमेश या द्वितीयेश होने पर सूर्य की दशान्तर्दशा में अपमृत्यु या मृत्युतुल्य कष्ट का भय होता है। अपमृत्यु दोष निवारण हेतु महामृत्युञ्जय जप व सूर्य शान्ति का निर्देश प्राप्त होता है।

सामान्यतया सूर्य की दशा में ज्वर, पित्त प्रकोप एवं सिर दर्द जैसे रोग होते हैं। किन्तु वह किसी कारण से रोगकारक हो तो विविध स्थितियों में विविध रोगों को उत्पन्न करता है। विविध स्थितियों में सूर्य की दशा में उत्पन्न होने वाले रोग निम्न हैं-

सूर्य की विविध स्थितियाँ	उत्पन्न होने वाले रोग
अवरोही सूर्य की दशा में	अग्नि पीड़ाजलना .
परमनीचस्थ सूर्य की दशा में	विपत्ति एवं मृत्यु
अतिशत्रु राशिगत सूर्य की दशा में	शारीरिक कष्ट
शत्रुराशिगत	अग्नि एवं चोर भय
समराशिगत	लड़ाई –झगड़ा एवं चोट
पापदृष्ट सूर्य दशा	कृशता एवं कमजोरी
द्वितीयभावस्थ सूर्य दशा	वाग् विकार
षष्ठस्थ सूर्य दशा	गुल्ममूत्रकृच्छ्र एवं ,अतिसार , प्रमेह

विशेष-

सूर्य महादशा के आदि में दुःख, पिता को रोगकृत हानि, मध्य भाग में पशुधन की हानि और अन्तिम भाग में विद्या एवं यश की प्राप्ति होती है। स्वोच्चादि जन्य फल दशा के आदि में तदुपरान्त ग्रहों के दृष्टि का फल दशा के मध्य भाग में, दशान्त में ग्रहाश्रित स्थान का फल होता है। सूर्यदशा के आदि में पितृरोग और धनक्षय होता है, मध्यभाग में सभी प्रकार की बाधाएँ होती हैं तथा दशा के अन्त में सुख की प्राप्ति होती है।

4.10.2 चन्द्र महादशा फल

चन्द्रमा की दशा में मन्त्र, देव और ब्राह्मण की प्राप्ति या भक्ति, युवतियों का प्रिय, स्त्री और धन की प्राप्ति होती है। पुष्प, वस्त्राभूषण, सुगन्धित पदार्थ तथा बहुमूल्य वस्तुओं का लाभ होता है। किन्तु चन्द्रमा के फलप्रदत्व में बाधा होने से उसकी दशा में धन और वातजन्य व्याधि से कष्ट होता है। चन्द्रमा की दशा में राज्याभिषेक, वाहन, छत्रयुक्त रत, क्षेम, प्रताप, बल, कान्ति और सुख, मिष्टान्न भोजन आदि की प्राप्ति, यश की हानि, अनेक स्वर्ण, धन और भूमि का लाभ होता है।

चन्द्रमा की दशा में सामान्यतया सर्दी,जुकाम, खाँसी, मूत्राधिक्य, मानसिक अस्थिरता एवं कामजन्य रोग होते हैं। कितु जब यह किसी कारण से रोगकारक हो जाता है, तो विविध रोगों को उत्पन्न करता है। चन्द्रमा की विभिन्न स्थितियों में होने वाले रोग निम्न हैं-

चन्द्र की विविध स्थितियाँ	उत्पन्न होने वाले रोग
अवरोही चन्द्र	तालाब या जलाशय में गिरना
शत्रुराशिगत चन्द्र	कलह एवं उद्वेग
नीच राशिगत चन्द्र	अग्निभय
क्षीणचन्द्र	उन्माद
षष्ठस्थ चन्द्र	मूत्रकृच्छ
अष्टमस्थ चन्द्र	जलभय
नीचांशगत चन्द्र	मानसिक विकार एवं नेत्र रोग

विशेष -

• उच्चस्थ या स्वगृही चन्द्रमा धनस्थान में स्थित हो तो उसकी दशा में धन का लाभ, भाग्य की वृद्धि और अनन्त सुख की प्राप्ति व विद्यालाभ होता है।

• नीच अथवा क्षीण चन्द्रमा हो तो उसकी महादशा में धन की हानि होती है। बलवान् चन्द्रमा यदि तीसरे भाव में से स्थित हो तो कदाचित् सुख और कदाचित् ही धन की प्राप्ति करवाता है। दुर्बल और पापग्रस्त चन्द्रमा अपनी दशा में जड़ता, मनोरोग, दास,धन एवं माता की हानि करवाता है।

• छठे, आठवें और बारहवें भाव में स्थित हो और दुर्बल तथा पापयुत हो तो उसकी दशा में राजा से विद्वेष, मानसिक सन्ताप और धन-धान्यादि की हानि होती है। माता का निधन, देह की जड़ता तथा मानसिक रोग होता है।

• चन्द्रमा की दशा के प्रारम्भ में राजसम्मान, कीर्ति और सुख आदि का लाभ होता है। दशा के मध्य भाग में स्त्री-पुत्रादि की हानि तथा अन्तिम भाग में गृह, धन और सुखादि की प्राप्ति होती है।

4.10.3 भौम महादशा फल

भौम महादशा में शस्त्र, भूमि, वाहन और अग्नि से, औषधि से, राजा के साथ धोखाधड़ी से और अनेक प्रकार की क्रूरता से धन की प्राप्ति होती है। जातक पित्त, रक्त, ज्वर से कष्ट पाता है। नीच स्त्री का भोग और पुत्र, स्त्री और गुरु से विद्वेषण तथा कुत्सित अन्नादि का भोग करता है। मंगल की दशा में अग्नि और विष से भय तथा शस्त्र से आघात होता है। जातक को शत्रु, नृपति, चोर, सर्प आदि से भय होता है। वमनादि व्याधियों से कष्ट तथा उसके धन का क्षय होता है।

भौम दशा में सामान्यतया रक्तविकार, चोट, दुर्घटना, लड़ाई तथा राजा से शारीरिक दण्ड मिलता है। किन्तु जब यह किसी कारणवश रोगकारक हो जाता है तो विविध स्थितियों में अपनी दशा के

समय में निम्नलिखित रोगों को उत्पन्न करता है। मंगल दशा में विविध स्थितियों में निम्न रोग उत्पन्न होते हैं-

भौम की विविध स्थितियाँ	उत्पन्न होने वाले रोग
अवरोही मंगल	अग्नि भय एवं राजदण्ड
नीचस्थ मंगल	चोरपीड़ाअग्निभय ,
शत्रिराशिगत मंगल	प्रमादगुदा एवं ,मूत्रकृच्छ , नेत्ररोग
केन्द्रस्थ मंगल	विषजन्य रोग
सप्तमस्थ मंगल	मूत्रकृच्छ एवं गुदा रोग
द्वितीयभावस्थ मंगल	मुख एवं नेत्ररोग
अष्टमस्थ मंगल	विस्फोटफोड़ा ,विसर्प ,

विशेष-

केन्द्र और दुश्चिक्य गत भौम यदि बलान्वित हो तो उसकी दशा पराक्रम से धन का लाभ और शत्रु की हानि करने वाली होती है। स्त्री-पुत्र-वैभवादि एवं राजसम्मान की प्राप्ति होती है। दशा के प्रारम्भ में सुख और अन्तिम भाग कष्टकारक होता है।

4.10.4 राहु महादशा फल

राहु की महादशा में राजा या राजकुल के द्वारा धन-सम्मान की हानि, अनेक रोग, पितृवियोग, पिता को कष्ट-विशेष, स्वजनों की दुष्टता, कुल के विरोधियों की दुष्टता से और कष्ट होता है। गृह के प्रति जातक मोहग्रस्त होता है और चारों तरफ आतङ्क का साम्राज्य होता है।

दारिद्रय, मानसिक सुख-शान्ति का अभाव, असन्तोष और अनेक रोग, सन्ताप, धनहानि, शत्रु से विवाद, महाविपत्ति आदि राहु की महादशा में प्राप्त होते हैं। राहु की महादशा में बुद्धिहीनता, मतिभ्रम, शून्यता, अतिभय, मृत्युतुल्य कष्ट देने वाली विषम आपदा, व्याधि, धनहानि, विषभय आदि मनुष्यों को प्राप्त होते हैं।

राहु की दशा के समय में सामान्यतया उदरविकार, मानसिक उद्वेग तथा छोटी-मोटी बीमारियाँ चलती रहती हैं। राहु दशा में शत्रुओं के प्रपञ्च तथा अभिचारजन्य रोग होते हैं। राहु की विविध स्थितियों में निम्न फल होते हैं-

राहुदशाकी विविध स्थितियाँ	उत्पन्न होने वाले रोग
नीचराशिस्थ राहु	विषभय
लग्नस्थ राहु	विषअग्नि एवं शस्त्र से भय ,
द्वितीयस्थ राहु	मानसिक विकार
चतुर्थ राहु	उद्वेग
पञ्चमस्थ राहु	बुद्धि भ्रम
षष्ठस्थ राहु	प्रमेहपित्तप्रकोप ,क्षय ,गुल्म , एवं चर्म रोग

अष्टमस्थ राहु	दुर्घटना
व्ययराशिगत राहु	मानसिक रोग
पापराशिगत राहु	प्रमेहक्षय एवं खाँसी ,मूत्रकृच्छ ,
पापदृष्ट राहु	अग्निभय

विशेष -

• राहु की वृष और केतु की वृश्चिक उच्चराशि है, कुम्भ राहु का मूलत्रिकोण और मेष मित्रराशि है। उससे सातवीं राशि कन्या केतु का मूलत्रिकोण है। छठे और द्वादश भाव में यदि राहु की स्थिति हो तो उसकी दशा मृत्युकारक होती है।

• भाग्येश से युत राहु की दशा में उद्योग, सुतसम्मान, दान- होमादि की वृद्धि, शत्रुओं का नाश और विजय होती है।

• प्रबल राहु यदि केन्द्रस्थ हो तो उसकी दशा में सत्पुत्र और धन का लाभ होता है।

4.10.5 गुरु महादशा फल

गुरु की महादशा में स्थानप्राप्ति, व्यवसाय, वाहन, वस्त्र का लाभ, राजा की मित्रता, चित्तशुद्धि, वैभव, ज्ञान, आचार, पुत्र, स्त्री आदि का सुख प्राप्त होता है। गुरु की महादशा में राजा से उत्तम भूमि तथा नायकत्व की प्राप्ति, सुन्दर पत्नी, गजादि वाहन, धन, बल और उत्तम आवास की प्राप्ति होती है। सज्जनजनों से व आयु में बड़े लोगों से मित्रता, गुरुजनों से सम्मान प्राप्त होता है। उत्तम व प्रशंसनीय विद्या की प्राप्ति होती है।

जातक यज्ञादि कर्म में हो तो आस्थावान्, देवता और ब्राह्मणों में आस्थावान्, अत्यन्त धनी और वैभवसम्पन्न व्यक्ति होता है। पुत्रादि से सन्तुष्ट, भूमि, वस्त्र, अश्वादि वाहन से सुखी, बलशाली, कुलश्रेष्ठ, भूत-भविष्य को जानने वाला, उच्चवर्ग से सङ्गति, सद्बुद्धि से युक्त और धैर्यवान् होता है। विरुद्ध भाव स्थिति होने से कदाचित् गलरोग से पीड़ा होती है।

• गुरु दशा में रोग विचार

गुरु की दशा में सामान्यतया गुल्म, उदरविकार एवं स्थूलता बढ़ जाती है। किंतु जब यह किसी कारणवश रोगकारक बन जाता है, तो उसकी दशा के समय में निम्न रोग उत्पन्न होते हैं-

गुरुदशा की विविध स्थितियाँ	**उत्पन्न होने वाले रोग**
अतिनीचांशगत गुरुदशा	मानसिक व्यथा
नीचग्रहयुत गुरुदशा	मानसिक रोग
अस्तंगत गुरुदशा	अनेक रोग
षष्ठस्थ गुरु	मेदोरोगउदररोग ,वातरोग ,

4.10.6 शनि महादशा फल

शनि की महादशा में बकरा, गधा, ऊँट, वृद्धा स्त्री, कुधान्य, श्रेणी, पुर, ग्राम, जनाधिकार, धन और नीचकुल के अधिपत्य का लाभ होता है। मिथ्यारोप से प्रतप्त, मनुष्यों द्वारा रचित आतङ्क और दारिद्र्य से कष्ट, गोपनीय आचरण से मर्महत, बुद्धि का नाश, दुष्टों के द्वारा धन का नाश, स्त्री-

पुत्रादि की रोगार्त्तता से खिन्न,पिता, स्वर्ण, गोधन व सेनादि बल का ह्रास, मित्रों से शत्रुता आदि अनर्थकारी फल शनि की महादशा में जातक को प्राप्त होते हैं।

शनि की महादशा में दीनता, अपने कुल में विवाद, विदेश यात्रा, धन और भूमि की हानि, रोगार्त्तता, विपदादि का भय, मनोव्यथा आदि अशुभ व कष्टप्रद फल प्राप्त होते हैं।

• शनि दशा में रोग विचार

शनि की दशा में सामान्यतया कृशता, वायु विकार एवं व्यग्रता रहती है किन्तु जब यह किसी कारणवश रोगकारक हो जाता है। तब यह विविध परिस्थितियों में अपनी दशा में विविध रोग उत्पन्न करता है-

शनिदशा की विविध स्थितियाँ	उत्पन्न होने वाले रोग
अतिशत्रुराशिगत शनिदशा	चोर एवं राजा से भय
शत्रुराशिगत शनि दशा	कृशता
समराशिगत शनि दशा	क्षयपित्तरोग ,वातरोग ,
लग्नस्थ शनि दशा	कृशतासिर दर्द ,
तृतीयस्थ शनि दशा	मानसिक रोग
पंचमस्थ शनि दशा	जड़ता
सप्तमस्थ राशिगत शनि दशा	मूत्रकृच्छ

4.10.7 बुध महादशा फल

बुध अपनी महादशा में गुरु, बन्धु और मित्रों के सहयोग से धनोपार्जन, कीर्ति और सुख देता है। दूतकर्म, सत्कर्म और व्यापार से सुवर्ण की प्राप्ति कराता है। सुन्दर आहार विहार, वाहनादि सुख, जनता का स्वामित्व, धन, सम्मान, वस्त्र, वन और गृह का लाभ देता है।

• बुध दशा में उत्पन्न रोग

बुध की दशा में सामान्यतया ज्वर, चर्मरोग एवं मानसिक अस्थिरता रहती है। किन्तु जब यह किसी कारणवश रोगकारक बन जाता है, तो इसकी दशा में अनेक रोग उत्पन्न होते हैं। इसके रोगकारक बनने के कारण तथा दशाकाल में उत्पन्न होने वाले रोगों का संक्षिप्त विवरण निम्न है-

बुधदशा की विविध स्थितियाँ	उत्पन्न होने वाले रोग
अवरोही बुधदशा	मानसिक कष्टचोरभय ,
शत्रुराशिस्थ	विपत्ति
समराशिगत बुधदशा	फोड़ा फुन्सी
नीचराशिगत बुधदशा	मानसिक रोग
पापदृष्ट बुधदशा	कृच्छ्र रोग
तृतीयभावस्थ बुधदशा	जड़ता एवं गुल्म
पञ्चमस्थ बुधदशा	चिन्ता एवं सिरदर्द
षष्ठ या अष्टमस्थ बुधदशा	चर्मरोगपाण्डु ,वमन ,

द्वादशस्थ बुधदशा	अंगों में विकलताअपमृत्यु ,

विशेष-

• बुध महादशा के प्रारम्भ में विद्या, धन-धान्य का लाभ और महत्सुख को देती है। पुत्र का सुख, कल्याण, सम्पत्ति औक सन्मार्ग का लाभ कराती है। मध्यदशा में राजसम्मान और अन्तिम भाग में कष्ट को देती है।

4.10.8 केतु महादशा फल

केतु की महादशा में जातक दीन, बुद्धि-विवेकशून्य, अनेक व्याधियों से युक्त, दैहिक कष्ट, पापकर्मों में वृद्धि, अतिकष्टकर जीवन एवं अल्प सुख की प्राप्ति होती है। मानसिक सन्ताप, ज्वर, स्वजनों से विवाद, दुष्टाचार, उदररोग, शत्रुओं से हानि, क्षय, बौद्धिक और आर्थिक अवनति तथा राजकोष से व्यवसाय की क्षति होती है।

केतु का दशा में सामान्यतया भ्रम, भय एवं मन में चंचलता रहती है। किन्तु जब किसी कारणवश यह रोगकारक बन जाता है, तब विविध परिस्थितियों में अपनी दशा में विविध रोगों को उत्पन्न करता है-

केतुदशा की विविध स्थितियाँ	उत्पन्न होने वाले रोग
लग्नगत केतुदशा	ज्वर ,प्रमेह ,अतिसार , हैजा,विस्फोट
द्वितीयभावगत केतुदशा	मानसिक व्यथा
तृतीयभावगत केतुदशा	मानसिक विकलता
पंचमभावगत केतुदशा	बुद्धिभ्रम
षष्ठभावगत केतुदशा	चोरअग्नि एवं विष से भय ,
सप्तमभावगत केतुदशा	मूत्रकृच्छमानसिक रोग ,
दशमभावगत केतुदशा	मन में जड़ता आदि विकार
द्वादशभावगत केतुदशा	नेत्रविकारनेत्रनाश ,
पापदृष्ट केतुदशा	ज्वरचर्मरोग ,प्रमेह ,अतिसार ,

विशेष-

• दशा के प्रारम्भ में सुख, दशा के मध्य में अतिभय और अन्तिम भाग में राजभय एवं दैहिक जड़ता होती है। दशा के आरम्भ में गुरुजन, बन्धु-बान्धवों को कष्ट, मध्य में धनागम और दशा के अन्तिम भाग में सुख की प्राप्ति होती है।

4.10.9 शुक्र महादशा फल

शुक्र की महादशा में स्त्री-पुत्र और व्यवसाय आदि की प्राप्ति या वृद्धि, महत्सुख, सुगन्धि, सम्मान व आभूषणादि का लाभ होता है। वाहन सुख की प्राप्ति व जातक यशस्वी होता है। शुक्र की महादशा में राजसम्मान की प्राप्ति, मित्र की सहायता से जय, शत्रु से उल्लास गृह, अतुल धन की प्राप्ति, विकास, अनेक सुन्दर कक्षों से युक्त दिव्य आवास, नित्य सामवेद के गायन, व्याख्यान भवन, महान् मानसिक सुख आदि का लाभ होता है। जातक राजा के समान श्रीसम्पन्न, पुत्र और

मित्रों का प्रिय, मन्त्रोच्चार व्यवसाय से लाभ, नैरोग्य और सुन्दर स्त्री का सान्निध्य, पुत्रादि सुख का लाभ प्राप्त होता है।

• शुक्र की दशा में सामान्यतया, वीर्य रोग, काम रोग एवं स्त्रीजन्य रोगों के होने की सम्भावना रहती है। किंतु जब यह रोगकारक हो जाता है, तो विविध स्थितियों में अपनी दशा में विविध रोगों को उत्पन्न करता है।

शुक्रदशा की विविध स्थितियाँ	उत्पन्न होने वाले रोग
अवरोही शुक्रदशा	हृदय शूल
परमनीच शुक्रदशा	मानसिक रोग
अतिशत्रुराशिगत शुक्रदशा	गुल्मनेत्ररोग ,संग्रहणी ,
समराशिगत शुक्रदशा	प्रमेहगुदारोग ,नेत्ररोग ,गुल्म ,
सप्तमस्थ शुक्रदशा	प्रमेहगुल्म ,
षष्ठस्थ शुक्रदशा	शस्त्र से चोट

अन्य सामान्यनियम

सम्यग्बलिनः स्वतुङ्गभागे सम्पूर्णा बलवर्जितस्य रिक्ता।
नीचांशगतस्य शत्रुभागे ज्ञेया अनिष्टदशा फलप्रसूतौ।।

पूर्ण बली ग्रह यदि अपने उच्च नवांश में स्थित हो तो उसकी दशा सम्पूर्णा दशा कहलाती है। बल से हीन ग्रह यदि नीच नवांश में हो तो उसकी दशा रिक्ता और यदि शत्रुनवांश में हो तो अनिष्ट दशा कहलाती है। जिस किसी भाव से द्वितीयेश और सप्तमेश से युत उनके द्रष्टा ग्रहों के भावफल की भी हानि होती है। वे जिन भावों के कारक होते हैं उनके फल की भी क्षति होती है।

अभ्यास प्रश्न –

23- सामान्यतया सूर्य की दशा में कौन कौन से रोग होते हैं?
24- षष्ठस्थ चन्द्र की दशा में क्या रोग होता है?
25- अष्टमस्थ मंगल की दशा में कौन से रोग सम्भावित हैं?
26- राहु की महादशा में सामान्यतः क्या क्या कष्ट होते हैं?
27- षष्ठस्थ गुरु की दशा कौन से रोग देती है ?
28- समराशिगत शनि दशा में कौन से रोग सम्भावत हैं?
29- अवरोही बुधदशा क्या कष्ट देती है?
30- द्वादशभावगत केतुदशा क्या रोग देती है?
31- शुक्र की दशा में सामान्यतया किन रोगों के होने की सम्भावना रहती है?
32- अनिष्ट दशा किसे कहते हैं?

4.11 सारांश

दशा पर आधारित फल जातक के जन्म से विभिन्न ग्रहों की दशाओं से प्राप्त शुभाशुभ फल का निर्णय करता है। ग्रहों द्वारा विविध भावों में स्थित होकर भावानुसार दशा का फल प्रदान किया जाता है। पाराशर मत में विविध दशाओं का साधन कर विंशोत्तरी, अष्टोत्तरी आदि दशाओं का ही ग्रहण किया गया है। इसका मूल कारण दशाओं का प्रभाव व लोकप्रियता भी रहा है। कलौ पाराशरः स्मृतः के अनुसार पाराशर मत को ही अधिक ग्रहण व सर्वमान्य किया गया है। इन्हीं

दशाओं के क्रम में ही विविध प्रकार की अन्तर्दशादियों के फल का का प्रतिपादन ज्योतिषशास्त्र में किया गया है। दशाफल विवेचन के सामान्य नियमों में किसी भाव में स्थित ग्रह अपनी दशा प्राप्त होने पर उस भाव के शुभाशुभ फल को देते हैं। यदि शुभग्रह है तो उसकी दशा में उस भावजनित शुभफल और यदि पापग्रह है तो उसकी दशा में उस भाव के फल की हानि होती है। शुभग्रहों से युक्त ग्रह की दशा शुभद होती है तथा पापग्रहों से युक्त ग्रह की दशा नेष्ट फल देती है। मिश्र ग्रह की दशा में मिश्र फल प्राप्त होता है। भाव सम्बन्धी दशाफल में भावों में स्थित राशि के स्वामी व भावस्थ ग्रह की दशा के आधार पर फल विधान की प्रक्रिया है। ग्रह राशि एवं भाव के अन्तः सम्बन्ध से ही शुभाशुभ फल का निर्णय किया जाता है। भावों में स्थित राशि एवं ग्रह के अनुसार ही विविध फल देखने को मिलते हैं। इसी प्रकार द्वितीय एवं सप्तम भाव मारक भाव होते हैं। इनके स्वामी मारकेश होते हैं। इनकी दशादि भी कष्टकारी होती है। इसी तरह बालारिष्ट का भी सूक्ष्मता से विचार करना चाहिए। तत्पश्चात् आपने विस्तार से पढ़ा कि किस प्रकार ग्रह अशुभ स्थिति में होने पर अपनी दशा में रोग कारक हो जाते हैं। हमारा मानना है कि इस पाठ के माध्यम से दशा के अनुसार रोग विचार करने में आप सक्षम होंगे।

4.12 शब्दावली

विंशोत्तरी	एक सौ बीस
अष्टोत्तरी	एक सौ आठ
सैद्धान्तिक	विशेष नियमों पर आधारित
दशाभेद	दशाओं के प्रकार
दशासाधन	दशा का आनयन
भूमिज	मंगल
शिखि	अग्नि
दशाधिप	दशा का स्वामी
इन्दु	चन्द्रमा
भावेश	भाव का स्वामी
धर्मेश	नवम भाव का स्वामी
कर्मेश	दशम भाव का स्वामी
त्रिक्	षष्ठ-अष्टम एवं द्वादश भाव
इज्य	गुरु
स्फुट	स्पष्ट
स्वक्षेत्र	अपनी राशि में

4.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. पाराशर ने 38 दशाओं की साधनविधि का वर्णन किया है।
2. विंशोत्तरी वअष्टोत्तरी दशा।
3. विंशोत्तरी दशा में कुल वर्ष 120 होते हैं।
4. अष्टोत्तरी दशा में कुल दशावर्ष 108 होते हैं।
5. दशाओं के मुख्य रूप से पाँच प्रकार स्वीकृत किए गए हैं-महादशा, अन्तर्दशा, प्रत्यन्तरदशा, विदशा(सूक्ष्मदशा) तथा उपदशा (प्राणदशा)।

6. विंशोत्तरी महादशा में चन्द्रमा के दसवर्ष ग्रहण किए गए हैं।

7. विंशोत्तरी महादशा में केतु के सात वर्ष ग्रहण किए जाते हैं।

8. अनुराधा नक्षत्र में शनि की महादशा होगी, जिसके दशा वर्ष 19 हैं।

9. भयातगुणितं खेटदशामानं भभोगहृत्।
भुक्तवर्षादिकं तस्य भोग्यं माने विशोधनात्।।
ग्रह भुक्तदशा वर्षादि =पलात्मक भयात × दशावर्ष
पलात्मक भभोग
तथा भोग्यवर्षादि = दशावर्ष – ग्रह भुक्त वर्षादि ।

10. अन्तर्दशा साधन हेतु दशावर्ष में दशावर्ष को गुणाकर 10 से भाग देने पर लब्धि मास और शेष में 30 से गुणाकर 10 का भाग देने पर लब्धि दिन होते हैं।
दशा दशा हता कार्या दशभिर्भागमाहरेत्।
यल्लब्धं तद्भवेन्मासस्त्रिंशन्निघ्नं दिनं भवेत्।।

11. अष्टोत्तरी दशा में अट्ठाईस नक्षत्रों का ग्रहण किया जाता है।

12. अष्टोत्तरी दशा में सूर्य के छः वर्ष ग्रहण किए जाते हैं।

13. चतुष्कं त्रितयं से अभिप्राय क्रमशः चार व तीन नक्षत्र ग्रहण करने का निर्देश है।

14. पापग्रहों से युक्त ग्रह की दशा नेष्ट फल देती है।

15. रोगेश, अष्टमेश, मारकेश, अवरोही, नीच या शत्रु राशिगत, पापयुक्त, पापदृष्ट, नीचांशगत, निर्बल, अनिष्टस्थान में स्थित तथा क्रूर षष्ठ्यंश आदि में स्थित ग्रह रोगकारक होता है।

16. ग्रह स्थान, स्थिति, बल एवं योग के कारण जो फल देते हैं वह विशिष्ट दशा फल कहलाता है। विशिष्टदशा फल जीवन में विलक्षण घटनाओं को घटित करता है।

17. छठे, आठवें और बारहवें भाव का स्वामी यदि पञ्चमेश से युक्त हो तो उसकी दशा शुभद होती है।

18. यदि द्वितीयेश राहु के साथ स्थित हो तो उसकी दशान्तर्दशा में दन्त रोगजन्य पीड़ा होती है।

19. द्वितीय एवं सप्तम भाव मारक भाव होते हैं।

20. बलवान् षष्ठेश की दशा में रोग का आगमन, विवाद, आधि-व्याधि, शत्रुसमूह, फोड़ा, दुष्टों की कृपा से कलंक, मानहानि, बौद्धिक ह्रास, विवेक और धन का क्षय होता है।

21. दशमेश की दशा में राज्यसुख की प्राप्ति होती है।

22. बालारिष्ट में लग्नेश यदि अष्टमेश से तृतीय भाव में संयुक्त हो तो द्वितीयेश, तृतीयेश, सप्तमेश, रन्ध्रेश और एकादशेश की दशाओं में मृत्यु होती है। इन स्थानों में स्थित ग्रहों की दशा में भी मृत्यु होती है।

23. सामान्यतया सूर्य की दशा में ज्वर, पित्त प्रकोप एवं सिर दर्द जैसे रोग होते हैं।

24. मूत्रकृच्छ्र

25. विस्फोट, विसर्प, फोड़ा

26. राहु की दशा के समय में सामान्यतया उदरविकार, मानसिक उद्वेग तथा छोटी-मोटी बीमारियाँ चलती रहती हैं। राहु दशा में शत्रुओं के प्रपञ्च तथा अभिचारजन्य रोग होते हैं।

27. मेदोरोग, वातरोग, उदररोग

28. क्षय, वातरोग, पित्तरोग

29. मानसिक कष्ट, चोरभय

30. नेत्रविकार, नेत्रनाश

31. शुक्र की दशा में सामान्यतया, वीर्य रोग, काम रोग एवं स्त्रीजन्य रोगों के होने की सम्भावना रहती है।

32. बल से हीन ग्रह यदि शत्रुनवांश में हो तो उसकी दशा अनिष्ट दशा कहलाती है।

4.14 निबन्धात्मक प्रश्न

प्रश्न 1. विंशोत्तरी दशा साधन विस्तार पूर्वक स्पष्ट कीजिए।

प्रश्न 2. द्वादशभावस्थ ग्रहों से रोगोत्पत्ति का निरूपण करें।

प्रश्न 3. मारक एवं बालारिष्ट दशाओं का फल लिखिए।

प्रश्न 4. शुक्र, बुध एवं सूर्य महादशा फल में उत्पन्न होने वाले रोगों को विस्तार से लिखें।

प्रश्न 5. सूर्य एवं शनि ग्रह की दशा में उत्पन्न होने वाले रोगों का वर्णन कीजिए।

प्रश्न 6- अष्टोत्तरी दशा साधन की विधि स्पष्ट कीजिए।

प्रश्न 7- ग्रहदशा के अनुसार रोग विचार पर प्रकाश डालिए।

4.15 सन्दर्भ व सहायक ग्रन्थ

1. दशाफलदर्पण,व्याख्याकार डॉ. हरिशङ्कर पाठक, चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, बनारस

2. बृहत्पाराशरहोराशास्त्रम्, सम्पादक डॉ. सत्येन्द्र मिश्र, चौखम्भा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी

3. लघुपाराशरी, सम्पादक व टीकाकार डॉ.सुरकान्त झा, चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी

4. ज्योतिषशास्त्र में रोग विचार, डॉ.शुकदेव चतुर्वेदी, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी।

5. भारतीय ज्योतिष- ड़ॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली

6. दशाफलदर्पण,व्याख्याकार डॉ. सुरेशचन्द्र मिश्र, रंजन पब्लिकेसन्स, दरियागंज, दिल्ली

इकाई -5 गोचर के अनुसार फलविवेचन

5.1 प्रस्तावना
5.2 उद्देश्य
5.3 गोचर - अर्थ एवं परिभाषा
5.4 क्रियमाण कर्म एवं उसके फल विवेचन के मुख्य आयाम
5.4.1अभ्यास प्रश्न
5.5 रोगों के गोचरीय योग
5.6 रोग विचार में प्रश्नकुण्डली योग
5.7 अष्टकवर्ग से रोगविचार
5.7.1 अभ्यास प्रश्न
5.8 सारांश
5.9 शब्दावली
5.9.1 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
5.10 निबन्धात्मक प्रश्न
5.11 सन्दर्भ/सहायक ग्रन्थ सूची

5.1 प्रस्तावना

आप जानते ही हैं कि ज्योतिषशास्त्र कर्म सिद्धान्त पर विचार करते हुए त्रिविध कर्मों पर विचार करता है। इसके लिए तीन भिन्न-भिन्न पद्धतियों का आश्रय लिया गया है। फलित शास्त्र में संचित कर्म के फल का विचार आधान कुण्डली एवं जन्मकुण्डली में बने योगों द्वारा, प्रारब्ध के फल का विचार दशाओं द्वारा तथा क्रियमाण के फल का विचार गोचर एवं प्रश्न कुण्डली द्वारा किया जाता है। इससे पूर्व के पाठों में आप संचित कर्म तथा प्रारब्ध के अनुसार फल विवेचन के योगों तथा दशाओं पर आधारित ज्योतिषीय तत्त्वों का ज्ञान कर चुके हैं। अब इस पाठ में आप क्रियमाण कर्मों के आधार पर विवेचित किये जाने वाले फलपद्धति का अध्ययन करेंगे।

आप ने अध्ययन किया है कि मिथ्या आहार-विहार आदि के द्वारा उत्पन्न रोगों को क्रियमाण का फल माना जाता है। किन्तु यह क्रियमाण भी संचित एवं प्रारब्ध के मिलाप से उत्पन्न होता है। अतः ऐसे रोगों का विचार करते समय योग एवं दशा के अलावा तात्कालिक गोचरीय ग्रह स्थिति का भी बारीकी से अध्ययन किया जाता है। ज्योतिषशास्त्र में क्रियमाण के फल का विचार गोचर एवं प्रश्न कुण्डली द्वारा किया जाता है। इसमें अष्टकविचार भी महत्वपूर्ण भूमिका का निभाता है। अतः प्रस्तुत पाठ में आप गोचरीय योगों के अध्ययन के साथ ही प्रश्नकुण्डली के रोगकारक योगों को भी जानेंगे। साथ ही अष्टकवर्ग विचार द्वारा रोगों का विचार भी करेंगे।

5.2 उद्देश्य –

प्रस्तुत पाठ के अध्ययन से आप –

1- गोचरशब्द की परिभाषा को समझ सकेंगे।
2- क्रियमाण कर्म एवं उसके फल विवेचन के मुख्य आयामों को जान सकेंगे।
3- रोगों के गोचरीय योगों के बारे में विश्लेषणात्मक अध्ययन कर सकेंगे।
4- रोग विचार में प्रश्नकुण्डली के महत्व को समझते हुए उससे बने योगों को समझ सकेंगे।
5- अष्टकवर्गविचार को समझते हुए उससे रोग के बारे में चर्चा कर सकेंगे।

5.3 गोचर - अर्थ एवं परिभाषा-

गो शब्द में चर शब्द जुड़ने से गोचर शब्द निष्पन्न होता है। गो शब्द के कई अर्थ होते हैं जैसे गाय, इन्द्रिय, तारा, आकाश आदि। चर शब्द चलने के अर्थ में प्रयुक्त होता है। प्रायः गोचर शब्द चारागाह के अर्थ में प्रयुक्त होता है। साथ ही इन्द्रियगम्य वस्तु या विषय को भी गोचर कहा जाता है। ज्योतिषीय दृष्टिकोण से आकाश में चलने वाले ग्रहादि की स्थित्यादि विवेचन को गोचर कहते हैं। क्योंकि ग्रह तारों के सापेक्ष आकाश में अपना स्थान परिवर्तित करते हुए दिखलाई देते हैं। अतः तारों में चलने वाले ग्रहों की स्थित्यादि विवेचन करना ही गोचर है। यदि हम गोचर शब्द को परिभाषित करने का प्रयत्न करें तो कहा जा सकता है कि व्यक्ति के जन्म या प्रसिद्ध नाम की चन्द्र राशि से वर्तमान समय (तात्कालिक) सूर्यादि ग्रहों की राश्यादि स्थिति का निरूपण गोचर कहलाता है, जिससे व्यक्ति के लिए शुभाशुभ फल विवेचन किया जाता है। गोचर फल ज्ञात करने के लिए व्यक्ति के जन्म की चन्द्र राशि (अथवा प्रसिद्ध नाम राशि) को लग्न मानकर कुण्डली चक्र का निर्माण कर तदुपरान्त अग्रिम राशियों को द्वितीयादि भावों में स्थापित करना चाहिए। फिर तात्कालिक ग्रहों की स्थिति के अनुसार उन राशियों में ग्रहों को स्थापित करना चाहिए। इसे ही गोचरकुण्डली कहते हैं। उदाहरण के लिए किसी जातक की जन्मराशि वृश्चिक है। दिनांक 21 मार्च

2022 को सूर्योदय के समय का गोचर कुण्डली का निर्माण करना है। 21 मार्च 2022 को सूर्योदय के समय सूर्य मीन राशि में, चन्द्र तुला राशि में, मंगल मकरराशि में, बुध कुम्भराशि में, गुरु कुम्भराशि में, शुक्र मकर राशि में, शनि मकर राशि में, राहु वृष राशि में तथा केतु वृश्चिक राशि में स्थित है। अतः गोचर कुण्डली इस प्रकार बनेगी-

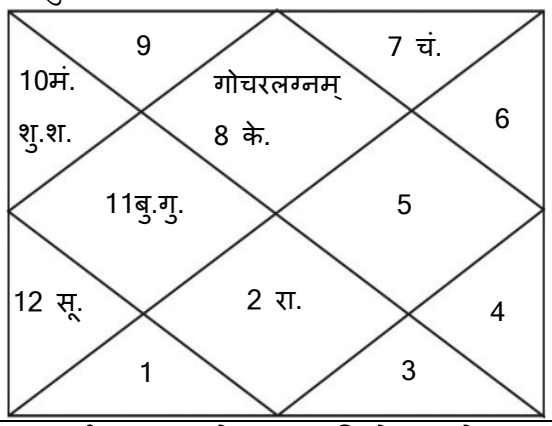

5.4 क्रियमाण कर्म एवं उसके फल विवेचन के मुख्य आयाम -

जैसा कि आप पढ़ चुके हैं कि क्रियमाण कर्म दो प्रकार के होते हैं। शुभ और अशुभ। जो कर्म शास्त्रानुसार विधि-विधान से किए जाते हैं, वे शुभ कर्म कहलाते हैं। काम- क्रोध-लोभ– आसक्ति आदि को लेकर जो शास्त्र निषिद्ध कर्म किए जाते हैं वे अशुभ कर्म कहलाते हैं। शुभ तथा अशुभ प्रत्येक क्रियमाण कर्म का एक तो फल-अंश बन जाता है और एक संस्कार अंश। ये दोनों भिन्न-भिन्न हैं।

आपने अध्ययन किया है कि क्रियमाण कर्म के फल अंश के दो भेद हैं-दृष्ट और अदृष्ट। इनमें से दृष्ट के भी दो भेद हैं- तात्कालिक एवं कालान्तर। जैसे भोजन करते समय रस की अनुभूति होना, प्रसन्नता होना एवं तृप्ति होना- यह दृष्ट फल का तात्कालिक उदाहरण है। कुपथ्य के कारण उदर में होने वाले रोग जैसे- उदर में जलन, दुःख इत्यादि कालान्तरित दृष्ट फल होता है।

इसी प्रकार अदृष्ट के भी दो भेद होते हैं लौकिक एवं पारलौकिक। जैसे यज्ञ- दान- तप- तीर्थ- व्रत- मन्त्रजप आदि का विधान शास्त्रविहित किया जाए तो इसी जन्म में पुत्र, धन, यश, प्रतिष्ठा आदि के रूप में इसका फल मिलने की सम्भावना रहती है, जिसे लौकिक फल के अन्तर्गत माना जाता है। शास्त्रनिषिद्ध कर्मों के विधान से रोग, निर्धनता आदि प्रतिकूल फल मिलने की सम्भावना भी लौकिक फल के अन्तर्गत ही मानी जाती है।

इसी प्रकार इन कर्मों का फल मृत्यु के पश्चात् मिलकर स्वर्ग की प्राप्ति करवाए तो इसे पारलौकिक फल की श्रेणी में गिना जाता है। इसी प्रकार अनैतिक कार्य करना एवं तत्फलस्वरूप दण्ड की प्राप्ति होना अदृष्ट लौकिक फल है। मृत्यु के पश्चात् यदि इन कर्मों के फल की प्राप्ति होती है तो नरकादि गमन अदृष्ट पारलौकिक फल की श्रेणी के फल कहे गए हैं। यहाँ दृष्ट का कालान्तरित फल एवं अदृष्ट का लौकिक फल दोनों एक समान दिखते हैं लेकिन दोनों में अन्तर है। जो कालान्तरिक फल है वह सीधे मिलता है, प्रारब्ध बनकर नहीं। परन्तु जो लौकिक फल है वह प्रारब्ध बनकर ही मिलता है।

इसी प्रकार आप जानते हैं कि क्रियमाण कर्म के संस्कार अंश के भी दो भेद हैं। शुद्ध अथवा पवित्र संस्कार एवं अशुद्ध अथवा अपवित्र संस्कार। शास्त्रविहित कर्म करने से जो संस्कार उत्पन्न होते हैं वे शुद्ध एवं पवित्र कहलाते हैं। इन विभिन्न स्वभावों के कारण ही उनके द्वारा विभिन्न

कर्म होते हैं पर वे कर्म दोषी नहीं होते, प्रत्युत सर्वथा शुद्ध होते हैं। शास्त्रनिषिद्ध, नीति एवं लोकमर्यादा से विरुद्ध कर्म करने से जो संस्कार उत्पन्न होते हैं वे अशुद्ध अथवा अपवित्र संस्कार कहलाते हैं। इन दोनों शुद्ध एवं अशुद्ध संस्कारों से स्वभाव एवं प्रकृति जन्म लेती है। संस्कार अंश से जो स्वभाव बनता है, वह प्रबल रहता है।

क्रियमाण कर्म के फलकथन की दृष्टि से ज्योतिषशास्त्र में गोचरफल कथन प्रमुख आयाम है। साथ ही क्रियमाण कर्म को विवेचित करने के लिए प्रश्नकुण्डली तथा अष्टक वर्ग विचार भी अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। अब क्रियमाण कर्म के फल को विवेचित करने वाले इन तीनों महत्वपूर्ण बिन्दुओं पर चर्चा करते हैं।

5.4.1 गोचर फल –

जैसा कि आप पहले ही पढ़ चुके हैं कि व्यक्ति के जन्म या प्रसिद्ध नाम की चन्द्र राशि से वर्तमान समय (तात्कालिक) सूर्यादि ग्रहों की राश्यादि स्थिति का निरूपण गोचर कहलाता है, जिससे व्यक्ति के लिए शुभाशुभ फल विवेचन किया जाता है। गोचर फल ज्ञात करने के लिए व्यक्ति के जन्म की चन्द्र राशि (अथवा प्रसिद्ध नाम राशि) को लग्न मानकर कुण्डली चक्र का निर्माण कर तदुपरान्त अग्रिम राशियों को द्वितीयादि भावों में स्थापित करना चाहिए। फिर तात्कालिक ग्रहों की स्थिति के अनुसार उन राशियों में ग्रहों को स्थापित करना चाहिए। इसे ही गोचरकुण्डली कहते हैं। गोचर फल को विवेचित करने के लिए आचार्यों ने सर्वप्रथम सूर्यादि ग्रहों का शुभ एवं वेधस्थानों का विचार किया है। मुहूर्तचिन्तामणि के गोचर प्रकरण के अनुसार शुभ व वेध स्थान इस प्रकार हैं –

सूर्य -

शुभस्थान	6	10	3	11
वेधस्थान	12	4	9	5

चन्द्र -

शुभस्थान	7	1	11	6	10	3
वेधस्थान	2	5	8	12	4	9

शुक्लपक्षे चन्द्र का विशेष विचार (नारद मत से)–

शुभस्थान	2	9	5
वेधस्थान	6	8	4

मंगल, शनि, राहु व केतु –

शुभस्थान	3	6	11
वेधस्थान	12	9	5

बुध-

शुभस्थान	2	4	6	8	10	11
वेधस्थान	5	3	9	1	8	12

गुरु-

शुभस्थान	2	11	09	5	2
वेधस्थान	12	3	10	4	3

शुक्र –

शुभस्थान	1	2	3	4	5	8	9	12	11
वेधस्थान	8	7	1	10	9	5	11	6	3

आचार्यों ने दो प्रकार से वेध विचार कहे हैं- क्रमवेध एवं वामवेध।

5.4.1.1 क्रमवेध -

जन्मराशि से उपर्युक्त शुभ स्थानों में सूर्यादि ग्रह हो तो शुभ फल को देने वाला होता है। उनसे अतिरिक्त स्थान में अशुभ। शुभ स्थानों में सूर्यादि ग्रह हों परन्तु विद्ध स्थानों में कोई अन्य ग्रह हो तो शुभ फल दाता न होकर अशुभ फल देने वाला हो जाता है। परन्तु सूर्य व शनि का पिता-पुत्र सम्बन्ध के कारण गोचर में परस्पर वेध नहीं होता। इसी प्रकार चन्द्र व बुध में भी परस्पर वेध नहीं होता।

उदाहरण के लिए उपर्युक्त कुण्ड़ली में देखिये-

ग्रह	**शुभ स्थान**	**वेध स्थान**	**विशेष**
सूर्य	**x**	**-**	**अशुभफल**
चन्द्र	**x**	**-**	**अशुभफल**
भौम	**वें 3**	**12वें चन्द्र**	**अशुभफल**
बुध	**वें 4**	**शुक्र व ,वें मंगल 3 शनि**	**अशुभफल**
गुरु	**x**	**-**	**अशुभफल**
शुक्र	**वें 3**	**लग्न में केतु**	**अशुभफल**
शनि	**वें 3**	**वें चन्द्र 12**	**अशुभफल**
राहु	**x**	**-**	**अशुभफल**
केतु	**x**	**-**	**अशुभफल**

5.4.1.2 वामवेध -

जन्मराशि से उपर्युक्त विद्ध स्थानों में सूर्यादि ग्रह हो तो अशुभ फल को देने वाला होता है, परन्तु शुभ स्थानों में कोई अन्य ग्रह हो तो शुभ फल देने वाला हो जाता है। परन्तु सूर्य व शनि का पिता-पुत्र सम्बन्ध के कारण गोचर में परस्पर वेध नहीं होता। इसी प्रकार चन्द्र व बुध में भी परस्पर वेध नहीं होता। यथा –

ग्रह	वेध स्थान	शुभ स्थान	विशेष
सूर्य	5 वां	11 वें में कोई ग्रह नहीं	अशुभफल
चन्द्र	12 वां	06 वें में कोई ग्रह नहीं	अशुभफल
भौम	-	x	अशुभफल
बुध	-	x	अशुभफल
गुरु	4 वां	05 वें में सूर्य	शुभफल
शुक्र	03 वां	11 वें में कोई ग्रह नहीं	अशुभफल
शनि	-	x	अशुभफल
राहु	-	x	अशुभफल
केतु	-	x	अशुभफल

5.4.2 प्रश्न कुण्डली –

प्रश्नकर्ता के प्रश्न करने के समय के इष्टकाल को निकालकर लग्न साधन करना चाहिए। इसे ही प्रश्नलग्न कहते हैं। तत्पश्चात् प्रश्नलग्न से द्वादशभाव साधन कर के प्रश्न लग्न कुण्डली में उस समय के ग्रहों का स्थापन करना चाहिए। इस प्रश्नकुण्डली के माध्यम से भी शुभाशुभविचार किया जाता है।

उदाहरण के लिए – 21 मार्च 2022 को दोपहर 2 बजे दिल्ली में किसी ने प्रश्न किया कि रोगी ठीक होगा या नहीं। अतः सर्वप्रथम उस समय का इष्टकाल साधन करते हैं-

दोपहर 2 बजे होने के कारण इष्टकालसाधन नियमानुसार इसमें 12 जोड़ देते हैं। उसमें से दिल्ली का स्टैण्डर्ड सूर्योदय 06: 28 घटा देते हैं। तत्पश्चात् 5 से गुणाकर 2 का भाग देने (अर्थात् ढ़ाई से गुणा करने) पर इष्टकाल आ जायेगा।

14: 00 - 06: 28 = 07: 32

07: 32 x 5 = 37: 40, 37: 40 / 2= 18: 50 इष्टकाल

इस इष्टकाल के अनुसार लग्नसाधन करने पर कर्कलग्न प्राप्त हुआ। अतः कर्कलग्न से कुण्डली बनाकर उसमें ग्रहों की राशि में स्थित्यनुसार स्थापना करनी चाहिए। यथा –

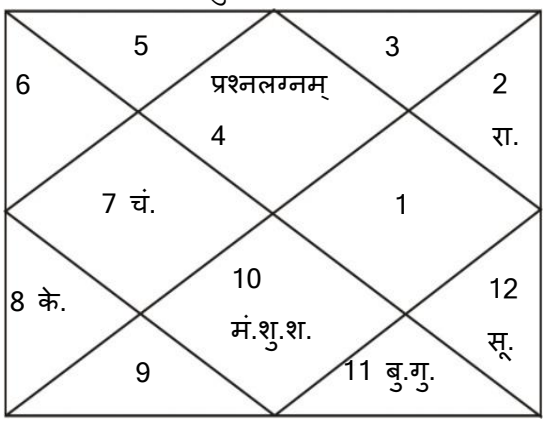

अब इस प्रश्नकुण्डली के अनुसार शुभाशुभ विचार करना चाहिए।

5.4.3 अष्टक वर्ग -

जन्मकालीन ग्रहस्थिति के अनुसार गोचर का फल विचार करना ही अष्टकवर्गविचार है। अर्थात् जन्मसमय में जिस जिस राशि में सूर्यादि सातग्रह (इसमें राहु व केतु से विचार नहीं होता

है) और लग्न स्थित हों, उन आठ स्थानों से गोचर फल का विचार करना ही अष्टकवर्ग विधि है। प्रत्येक ग्रह जन्म समय पर जिस राशि में है, उस पर अपना प्रभाव डालता ही है। इसी प्रकार जन्मलग्न का भी अपना शुभ या अशुभ फल होता ही है। अतः प्रत्येक जन्मकुण्डली में सूर्यादि सातग्रह एवं लग्न में कुछ विशेषफल होता है। इस विशेष फल के ज्ञानार्थ यह विधि है, जिसमें प्रत्येक ग्रह व लग्न किसी न किसी स्थान में शुभ फल देने वाले होते हैं। भारतीय ज्योतिष के मानकग्रन्थों में अष्टकवर्ग विचार बहुत विस्तार से मिलता है।

प्रत्येक ग्रह की कुण्डली एवं लग्न कुण्डली में प्रत्येक ग्रह व लग्न को अपने अपने स्थान से किसी किसी स्थान में बल होता है। ग्रह जिस जिस स्थान में बल प्रदान करता है, उस उस शुभ स्थान को प्रायः रेखा या बिन्दु के माध्यम से प्रदर्शित किया जाता है। 4 से अधिक रेखायें या बिन्दु जिन स्थानों में प्राप्त होते हैं, उन राशि स्थानों में गोचरीय ग्रह आने पर शुभ फल प्राप्त होता है। ग्रहों व लग्न के अष्टक वर्ग निम्न प्रकार से हैं -

सूर्याष्टक वर्ग -

सूर्य	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	लग्न
1	3	1	3	5	6	1	3
2	6	2	5	6	7	2	4
4	10	4	6	9	12	4	6
7	11	7	9	11		7	10
8		8	10			8	11
9		9	11			9	12
10		10	12			10	
11		11				11	

उदाहरण – किसी जातक की जन्मकुण्डली में राशियों में ग्रहों की स्थिति इस प्रकार है-

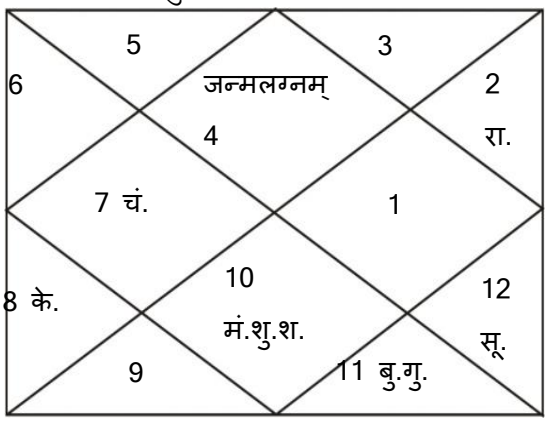

अब सूर्य एवं अन्य ग्रहों की स्थिति से सूर्याष्टक वर्ग में शुभस्थान के लिए रेखा रखने पर सूर्याष्टक वर्ग कुण्डली इस प्रकार बनेगी-

यहाँ सर्वप्रथम सूर्य से 1,2,4,7,8,9,10 व 11 स्थानों में एक एक रेखा रखी गयी हैं। तत्पश्चात् चन्द्र से3,6,10 व 11 स्थानों में भी एक एक रेखा रखी। इसी प्रकार मंगल आदि ग्रह तथा लग्न से निर्दिष्ट स्थानों में भी रेखायें रखी गयी हैं। इस तरह निम्न प्रकार से सूर्याष्टक वर्ग बनेगा।

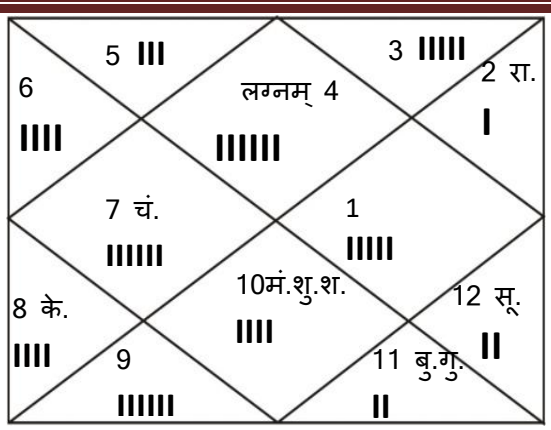

उपर्युक्त प्रकार से ही चन्द्राष्टकादि वर्गों को भी बनाना चाहिए।

चन्द्र अष्टकवर्ग-

सूर्य	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	लग्न
3	1	2	1	1	3	3	3
6	3	3	3	4	4	5	6
7	6	5	4	7	5	6	10
8	7	6	5	8	7	11	11
10	10	9	7	10	9		
11	11	10	8	11	10		
		11	10	12	11		
			11				

मंगल अष्टकवर्ग-

सूर्य	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	लग्न
3	3	1	3	6	6	1	1
5	6	2	5	10	8	4	3
6	11	4	6	11	11	7	6
10		7	11	12	12	8	10
11		8				9	11
		10				10	
		11				11	

बुध अष्टकवर्ग-

सूर्य	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	लग्न
5	2	1	1	6	1	1	1
6	4	2	3	8	2	2	2
9	6	4	5	11	3	4	4
11	8	7	6	12	4	7	6
12	10	8	9		5	8	8

	11	9	10		8	9	10
		10	11		9	10	11
		11	12		11	11	

गुरु अष्टकवर्ग –

सूर्य	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	लग्न
1	2	1	1	1	2	3	1
2	5	2	2	2	5	5	2
3	7	4	4	3	6	6	4
4	9	7	5	4	9	12	5
7	11	8	6	7	10		6
8		10	9	8	11		7
9		11	10	10			9
10			11	11			10
11							11

शुक्र अष्टकवर्ग-

सूर्य	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	लग्न
8	1	3	3	5	1	3	1
11	2	5	5	8	2	4	2
12	3	6	6	9	3	5	3
	4	9	9	10	4	8	4
	5	11	11	11	5	9	5
	8	12			8	10	8
	9				9	11	9
	11				10		11
	12				11		

शनि अष्टकवर्ग-

सूर्य	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	लग्न
1	3	3	6	5	6	3	1
2	6	5	8	6	11	5	3
4	11	6	9	11	12	6	4
7		10	10	12		11	6
8		11	11				10
10		12	12				11
11							

लग्न अष्टकवर्ग-

सूर्य	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	लग्न
3	3	1	1	1	1	1	3
4	6	3	2	2	2	3	6
6	10	6	4	4	3	4	10
10	11	10	6	5	4	6	11
11	12	11	8	6	5	10	
12			10	7	8	11	
			11	9	9		
				10			
				11			

अभ्यास प्रश्न-

1- गोचर शब्द की निष्पत्ति बताईये?
2- गो शब्द के क्या क्या अर्थ होते हैं?
3- गोचर शब्द का क्या अभिप्राय है?
4- ज्योतिषीय दृष्टिकोण से गोचर क्या है?
5- गोचर से क्या करते हैं?
6- गोचरकुण्डली किसे कहते हैं?
7- क्रियमाण कर्म कितने प्रकार के होते हैं?
8- शुभ और अशुभ। कर्म क्या हैं?
9- क्रियमाण कर्म के फल अंश के कितने भेद हैं?
10- तात्कालिक एवं कालान्तर के उदाहरण दीजिए।
11- लौकिक फल क्या होते हैं?
12- पारलौकिक फल क्या हैं?
13- शुद्ध संस्कार क्या हैं?
14- अशुद्ध या अपवित्र संस्कार क्या हैं?
15- स्वभाव एवं प्रकृति किससे बनता है?
16- क्रियमाण कर्म के फलकथन की दृष्टि से ज्योतिषशास्त्र में प्रमुख आयाम कौन कौन से है?
17- गोचरकुण्डली किसे कहते हैं?
18- सूर्य के शुभ स्थान व वेधस्थान बताईये।
19- नारद मत से शुक्लपक्ष में चन्द्र के विशेष शुभ व वेध स्थान बताईये।
20- किन किन ग्रहों में पिता पुत्र सम्बन्ध के कारण परस्पर वेध नहीं होता?
21- वामवेध क्या है?
22- प्रश्नलग्न किसे कहते हैं?
23- अष्टकवर्गविचार क्या है?
24- अष्टकवर्गविचार कैसे करते हैं?
25- सूर्याष्टक में सूर्य से शुभस्थान या रेखास्थान बताईये।

5.1 - रोगों के गोचरीय योग –

1- जन्मकुण्डली में षष्ठेश जिस राशि में हो, उस राशि में गोचरीय क्रम से जब जब चन्द्र पहुँचता है, तब तब रोग सम्भावित होता है।

2- लग्न, लग्नेश एवं चन्द्र की पापग्रहों के साथ जब जब युति एवं दृष्टि होती है, तब तब रोग सम्भावित होता है।

3- रोगकारक ग्रह जब जब त्रिक आदि अनिष्ट स्थान में आता है, तब तब रोग सम्भावित होता है।

4- रोगकारक ग्रह जब जब लग्न, लग्नेश एवं चन्द्र की युति एवं दृष्टि से प्रभावित होता है, तब तब रोग सम्भावित होता है।

5.2 - रोग विचार में प्रश्नकुण्डली योग -

1- प्रश्नलग्न के नक्षत्र से जितने संख्यक नक्षत्र पर प्रश्नकालीन चन्द्र हो, चन्द्र के उस नक्षत्र से उतनी संख्या वाले अग्रिम नक्षत्र में रोग का प्रारम्भ होता है।

2- प्रश्नकालीन स्पष्ट गुलिक के नवांश या द्वादशांश के नक्षत्र में जब जब चन्द्र आता है, तब तब रोग सम्भावित होता है।

3- प्रश्नकालीन स्पष्ट गुलिक एवं स्पष्ट चन्द्र के योग नक्षत्र में जब जब चन्द्र आता है, तब तब रोग सम्भावित होता है।

4- पृच्छक के विपत् , प्रत्यरि या वध नक्षत्र (तारा) में जब चन्द्र आता है, तब रोग सम्भावित होता है।

5- प्रश्नकालीन आरूढ़ राशि से षष्ठेश जितनी संख्या आगे हो, प्रश्नकाल से उतने मास में रोग होता है।

6- आरूढ़ लग्न के नक्षत्र से षष्ठेश जितनी संख्या आगे हो, प्रश्नकालीन सूर्यनक्षत्र से उतनी संख्या वाले अग्रिम नक्षत्र पर जब सूर्य आता है, तब रोग की सम्भावना होती है।

7- प्रश्नकालीन नक्षत्र से षष्ठेशाश्रित नक्षत्र जितना आगे हो, उस संख्या को षष्ठेश के अयनादिकाल (अयन, ऋतु, मास, पक्ष, दिन या क्षण) से गुणाकर रोगारम्भ का सम्भावित समय जाना जा सकता है।

8- प्रश्नकालीन षष्ठेश के भुक्त नवांशों की संख्या को उसके काल (अयन, ऋतु, मास, पक्ष, दिन या क्षण) से गुणाकर रोगारम्भ का सम्भावित समय जाना जा सकता है।

9- प्रश्नकुण्डली में जो ग्रह षष्ठ भाव में स्थित है, यदि वह दिवाबली हो तो दिन में तथा रात्रिबली हों तो रात्रि में रोग का प्रारम्भ होता है। सूर्य, गुरु व शुक्र दिवाबली होते हैं। चन्द्र, मंगल व शनि रात्रि बली तथा बुध दिन व रात दोनों में बली होता है। यदि कोई भी ग्रह षष्ठ भाव में स्थित न हो तो षष्ठेश से विचार करना चाहिए।

10- प्रश्नकर्ता जिस दिशा में बैठा हो, पूर्व आदि अनुलोम क्रम से गणना कर उस दिशा की संख्या जाननी चाहिए। फिर सूर्योदय से गणना कर उतने संख्यक प्रहर में रोगारम्भ बतलाना चाहिए।

5.3 अष्टकवर्ग से रोगविचार –

1- अष्टकवर्गीय चक्र में मेषादि राशियों में जिस स्थान में कोई भी रेखा (शुभ स्थान) न हो तो वह ग्रह उस राशि में गोचरीय स्थिति से आने पर रोगभयकारक होता है।

2- प्रत्येक अष्टकवर्ग में जिस राशि में एक रेखा पड़ती है तो वह ग्रह उस राशि में गोचरीय स्थिति से आने पर अनेक प्रकार के रोग, दुःख, भय एवं परिभ्रमण करवाता है।

3- जिस राशि में दो रेखा पड़ती हैं तो वह ग्रह उस राशि में गोचरीय स्थिति से आने पर मनस्ताप, राजा द्वारा पीड़ा आदि फल देता है।

4- जिस राशि में तीन रेखा पड़ती है तो वह ग्रह उस राशि में गोचरीय स्थिति से आने पर मानसिक विकलता और भ्रमण से शारीरिक कष्ट देता है।

5- ग्रह गोचर स्थिति में उच्चादि शुभ स्थिति में होने पर भी 3 या उससे कम रेखा वाले राशि में आने पर रोगादि कष्ट को देता है।

6- यदि जन्म काल में सूर्य लग्न में हो, परन्तु नीच राशि अथवा शत्रुगृही हो। उस स्थान में केवल दो या तीन ही रेखायें सूर्याष्टक वर्ग में हो तो जातक रोगी होता है।

7- यदि जन्म काल में चन्द्र लग्न में हो और चन्द्राष्टकवर्ग में चन्द्र स्थित राशि में 3 या उससे कम रेखायें हो तो जातक रोगी तथा निर्बल होता है। उसे दमा या क्षयरोग की भी सम्भावना बन सकती है।

8- शनि के रेखाष्टक वर्ग में लग्न से शनि तक जितनी रेखायें है, उनका योग करें। उतने वर्ष में जातक को रोग, कलहादि की सम्भावना रहती है। इसी प्रकार शनि से लग्न तक की रेखाओं के योग के बराबर वर्षों में रोग, मृत्यु आदि कुफल प्राप्ति की सम्भावना रहती है।

9- शनि के रेखाष्टक वर्ग में जिस राशि में कोई भी रेखा न हो, उस राशि में गोचरीय शनि के आने पर मृत्यु की सम्भावना होती है।

10- शनि के रेखाष्टक वर्ग में जो जो राशि रेखाशून्य हों,उस उस स्थान में सूर्य या शनि अथवा दोनों के आने पर रोग-पीड़ा इत्यादि होती है।

11- लग्नाष्टक कुण्डली में जिस भाव का फल विचार करना हो तो उस भावगत लग्नाष्टक वर्ग रेखा को लग्नाष्टक वर्ग योग पिण्ड से गुणा करके और 27 से भाग देकर शेष संख्यक नक्षत्र एवं उस त्रिकोण के नक्षत्रों पर जब गोचर का शनि आता है तो निर्दिष्ट भाव में पापग्रह के रहने पर भाव के फल को क्लेशित करता है। यदि निर्दिष्ट भाव में कोई ग्रह न हो तो भाव के फल को साधारण क्लेशित करता है। यदि निर्दिष्ट भाव में कोई शुभ ग्रह हो तो भाव के फल में कोई अनिष्ट नहीं करता है। यदि निर्दिष्ट भाव में शुभ व पाप दोनों प्रकार के ग्रह हों तो उस भाव फल मिश्रित होता है।

अभ्यास प्रश्न –

26- जन्मकुण्डली में षष्ठेश जिस राशि में हो, उस राशि में गोचरीय क्रम से किस ग्रह के पहुँचने है, रोग सम्भावित होता है?

27- गोचरीय क्रम से किन ग्रहों की पापग्रहों के साथ युति एवं दृष्टि होने पर रोग सम्भावित होता है?

28- रोगकारक ग्रह के गोचरीय क्रम से किन स्थानों में आने पर रोग सम्भावित होता है?

29- प्रश्नलग्न के नक्षत्र से जितने संख्यक नक्षत्र पर प्रश्नकालीन चन्द्र हो, चन्द्र के उस नक्षत्र से उतनी संख्या वाले अग्रिम नक्षत्र में क्या होता है?

30- पृच्छक के किन नक्षत्र ताराओं में जब चन्द्र आता है, तब रोग सम्भावित होता है?

31- दिन या रात्रि में रोग का प्रारम्भ किस प्रकार जाना जाता है?

32- दिवा बली व रात्रि बली ग्रह कौन कौन से हैं?

33-प्रश्नकर्त्ता के बैठने की दिशा से किस प्रकार रोगारम्भ विचारना चाहिए ?

34- अष्टकवर्गीय चक्र में मेषादि राशियों में जिस स्थान में कोई भी रेखा (शुभ स्थान) न हो तो वह ग्रह उस राशि में गोचरीय स्थिति से आने पर क्या करता है?

35- प्रत्येक अष्टकवर्ग में जिस राशि में एक रेखा पड़ती है तो वह ग्रह उस राशि में गोचरीय स्थिति से आने पर क्या फल करता है?

36- जिस राशि में दो रेखा पड़ती हैं तो वह ग्रह उस राशि में गोचरीय स्थिति से आने पर क्या फल देता है?

37- जिस राशि में तीन रेखा पड़ती है तो वह ग्रह उस राशि में गोचरीय स्थिति से आने पर क्या कष्ट देता है?

38- ग्रह गोचर स्थिति में उच्चादि शुभ स्थिति में होने पर भी 3 या उससे कम रेखा वाले राशि में आने पर क्या फल देता है?

39- यदि जन्म काल में सूर्य लग्न में हो, परन्तु नीच राशि अथवा शत्रुगृही हो। उस स्थान में केवल दो या तीन ही रेखायें सूर्याष्टक वर्ग में हो तो जातक को क्या फल मिलेगा?

40- शनि के रेखाष्टक वर्ग में जिस राशि में कोई भी रेखा न हो, उस राशि में गोचरीय शनि के आने पर किस बात की सम्भावना होती है?

41- शनि के रेखाष्टक वर्ग में जो जो राशि रेखाशून्य हों,उस उस स्थान में सूर्य या शनि अथवा दोनों के आने पर क्या फल होता है?

5.4 सारांश –

आप जानते ही हैं कि ज्योतिषशास्त्र कर्म सिद्धान्त पर विचार करते हुए त्रिविध कर्मों पर विचार करता है। इस पाठ में आपने क्रियमाण कर्मों के आधार पर विवेचित किये जाने वाली फलपद्धति का अध्ययन किया है। क्रियमाण भी संचित एवं प्रारब्ध के मिलाप से उत्पन्न होता है। अतः ऐसे रोगों का विचार करते समय योग एवं दशा के अलावा तात्कालिक गोचरीय ग्रह स्थिति का भी बारीकी से अध्ययन किया जाता है। ज्योतिषशास्त्र में क्रियमाण के फल का विचार गोचर एवं प्रश्न कुण्डली द्वारा किया जाता है। आपने इस पाठ में गोचरशब्द का अर्थ एवं ज्योतिषीय दृष्टि से इसकी परिभाषा को समझा। तत्पश्चात् गोचर कुण्डली तथा प्रश्न कुण्डली निर्माण की विधि को भी अच्छी तरह जाना। साथ ही आपने गोचर फलकथन में महत्त्वपूर्ण क्रमवेध एवं वामवेध के विषय में भी उदाहरणपूर्वक अध्ययन किया। इसके बाद क्रियमाण फलकथन में अष्टकविचार की महत्वपूर्ण भूमिका को समझते हुए अष्टक निर्माण विधि को भी सोदाहरण विस्तार से समझा। उसके बाद आपने प्रस्तुत पाठ में गोचरीय योगों के अध्ययन के साथ ही प्रश्नकुण्डली के रोगकारक योगों तथा अष्टकवर्ग से रोगों के विचार को भी जाना। इस प्रकार प्रस्तुत पाठ के अध्ययन से आप गोचर विधि से रोगफलकथन करने में समर्थ होंगे।

5.5 शब्दावली-

निष्पन्न = कार्यान्वित हुआ, सम्पन्न, पूरा हुआ

इन्द्रिय = शरीर के वे अवयव जिनसे ज्ञान प्राप्त होता है। ये दो प्रकार के हैं – कर्मेन्द्रिय (हाथ, पैर, वाणी, गुदा, गुप्ताङ्ग) व ज्ञानेन्द्रिय (कान, त्वचा, नेत्र, नाक, जिह्वा) ।

सापेक्ष = निर्भर, लिहाज करने वाला, किसी की अपेक्षा करने वाला

निरूपण = निर्धारण, निश्चयन
तदुपरान्त = उसके बाद
अग्रिम = आगे, प्रमुख, बड़ा
तात्कालिक = उसी समय में होने वाले, उसी समय की, अव्यवहित
कालान्तरित = समय के अन्तराल में होने वाला
प्रतिकूल = जो अनुकूल न हो, विपरीत
चन्द्र राशि = चन्द्र जिस राशि में बैठा हो
नाम राशि = अवकहडाचक्र के अनुसार नाम के प्रथम अक्षर से बनने वाली राशि
वेध = बींधना, छेद युक्त करना
वामवेध = विपरीत क्रम से बींधना
इष्टकाल = सूर्योदय के पश्चात् अभीष्ट समय (या जन्म समय) तक व्यतीत घटीपलात्मक काल
ज्ञानार्थ = जानने के लिए
मानक = नापने का मानदण्ड, निश्चित या स्थिर किया हुआ सर्वमान्य मान
निर्दिष्ट = बताया गया, निर्देशित किया गया
त्रिक = 6, 8 व 12 वाँ भाव
गुलिक = छाया ग्रह के समान कल्पित। दिन में इष्ट समय होने पर दिनमान के आठ भाग करके
उस दिन के वार से गणना कर प्रत्येक भाग में एक एक वार के स्वामी ग्रह के आधिपत्य की गणना की जाती है। आठवाँ भाग रिक्त रहता है। जिस खण्ड का स्वामी शनि होता है, उसे ही गुलिक कहते हैं। परन्तु रात्रि में इष्ट समय होने पर रात्रिमान का आठ भाग कर उस दिन के वार स्वामी से पंचम ग्रह से गणना होती है।
नवांश = राशि (30 अंश) के नौ भाग करने पर एक भाग का मान 3अंश 20 कला होता है।
इसका प्रयोग फलकथन में किया जाता है।
द्वादशांश = राशि (30 अंश) के बारह भाग करने पर एक भाग का मान 2 अंश 30 कला होता
है। इसका प्रयोग फलकथन में किया जाता है।
आरूढ़ लग्न = लग्न से लग्नेश जितने स्थान पर रहे, उस स्थान से उतने ही दूरी पर पदलग्न होता है।
इसे ही आरूढ लग्न भी कहते हैं।
षष्ठेशाश्रित = षष्ठ स्थान के स्वामी पर आश्रित
भुक्त = भोगा गया, व्यतीत, बीता हुआ
दिवाबली = दिन में बली
प्रहर = याम, एक दिनरात का आठवाँ भाग, 3 घण्टे का समय
क्लेशित = क्लेश (कष्ट, वेदना, दुःख या पीडा) देने वाला

5.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर –

1- गो शब्द में चर शब्द जुड़ने से गोचर शब्द निष्पन्न होता है।

2- गो शब्द के कई अर्थ होते हैं जैसे गाय, इन्द्रिय, तारा, आकाश आदि।

3- प्रायः गोचर शब्द चारागाह के अर्थ में प्रयुक्त होता है। साथ ही इन्द्रियगम्य वस्तु या विषय को भी गोचर कहा जाता है।

4- ज्योतिषीय दृष्टिकोण से आकाश में चलने वाले ग्रहादि की स्थित्यादि विवेचन को गोचर कहते हैं। क्योंकि ग्रह तारों के सापेक्ष आकाश में अपना स्थान परिवर्तित करते हुए दिखलाई देते हैं। अतः तारों में चलने वाले ग्रहों की स्थित्यादि विवेचन करना ही गोचर है।

5- व्यक्ति के जन्म या प्रसिद्ध नाम की चन्द्र राशि से वर्तमान समय (तात्कालिक) सूर्यादि ग्रहों की राश्यादि स्थिति का निरूपण गोचर कहलाता है, जिससे व्यक्ति के लिए शुभाशुभ फल विवेचन किया जाता है।

6- गोचर फल ज्ञात करने के लिए व्यक्ति के जन्म की चन्द्र राशि (अथवा प्रसिद्ध नाम राशि) को लग्न मानकर कुण्डली चक्र का निर्माण कर तदुपरान्त अग्रिम राशियों को द्वितीयादि भावों में स्थापित करना चाहिए। फिर तात्कालिक ग्रहों की स्थिति के अनुसार उन राशियों में ग्रहों को स्थापित करना चाहिए। इसे ही गोचरकुण्डली कहते हैं।

7- क्रियमाण कर्म दो प्रकार के होते हैं। शुभ और अशुभ।

8- जो कर्म शास्त्रानुसार विधि-विधान से किए जाते हैं, वे शुभ कर्म कहलाते हैं। काम- क्रोध-लोभ– आसक्ति आदि को लेकर जो शास्त्र निषिद्ध कर्म किए जाते हैं वे अशुभ कर्म कहलाते हैं।

9- क्रियमाण कर्म के फल अंश के दो भेद हैं-दृष्ट और अदृष्ट।

10- भोजन करते समय रस की अनुभूति होना, प्रसन्नता होना एवं तृप्ति होना- यह दृष्ट फल का तात्कालिक उदाहरण है। कुपथ्य के कारण उदर में होने वाले रोग जैसे- उदर में जलन, दुःख इत्यादि कालान्तरित दृष्ट फल होता है।

11- यज्ञ- दान- तप- तीर्थ- व्रत- मन्त्रजप आदि का विधान शास्त्रविहित किया जाए तो इसी जन्म में पुत्र, धन, यश, प्रतिष्ठा आदि के रूप में इसका फल मिलने की सम्भावना रहती है, जिसे लौकिक फल के अन्तर्गत माना जाता है। शास्त्रनिषिद्ध कर्मों के विधान से रोग, निर्धनता आदि प्रतिकूल फल मिलने की सम्भावना भी लौकिक फल के अन्तर्गत ही मानी जाती है।

12- कर्मों का फल मृत्यु के पश्चात् मिलकर स्वर्ग की प्राप्ति करवाए तो इसे पारलौकिक फल की श्रेणी में गिना जाता है। इसी प्रकार अनैतिक कार्य करना एवं तत्फलस्वरूप दण्ड की प्राप्ति होना अदृष्ट लौकिक फल है। मृत्यु के पश्चात् यदि इन कर्मों के फल की प्राप्ति होती है तो नरकादि गमन अदृष्ट पारलौकिक फल की श्रेणी के फल कहे गए हैं।

13- शास्त्रविहित कर्म करने से जो संस्कार उत्पन्न होते हैं वे शुद्ध एवं पवित्र कहलाते हैं। इन विभिन्न स्वभावों के कारण ही उनके द्वारा विभिन्न कर्म होते हैं पर वे कर्म दोषी नहीं होते, प्रत्युत सर्वथा शुद्ध होते हैं।

14- शास्त्रनिषिद्ध, नीति एवं लोकमर्यादा से विरुद्ध कर्म करने से जो संस्कार उत्पन्न होते हैं वे अशुद्ध अथवा अपवित्र संस्कार कहलाते हैं।

15- शुद्ध एवं अशुद्ध संस्कारों से स्वभाव एवं प्रकृति जन्म लेती है। संस्कार अंश से जो स्वभाव बनता है, वह प्रबल रहता है।

16- क्रियमाण कर्म के फलकथन की दृष्टि से ज्योतिषशास्त्र में गोचरफल कथन प्रमुख आयाम है। साथ ही क्रियमाण कर्म को विवेचित करने के लिए प्रश्नकुण्डली तथा अष्टक वर्ग विचार भी अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं।

17- गोचर फल ज्ञात करने के लिए व्यक्ति के जन्म की चन्द्र राशि (अथवा प्रसिद्ध नाम राशि) को लग्न मानकर कुण्डली चक्र का निर्माण कर तदुपरान्त अग्रिम राशियों को द्वितीयादि भावों में स्थापित करना चाहिए। फिर तात्कालिक ग्रहों की स्थिति के अनुसार उन राशियों में ग्रहों को स्थापित करना चाहिए। इसे ही गोचरकुण्डली कहते हैं।

1-

शुभस्थान	6	10	3	11
वेधस्थान	12	4	9	5

2-

शुक्लपक्षे चन्द्र का विशेष विचार (नारद मत से)–

शुभस्थान	2	9	5
वेधस्थान	6	8	4

20- सूर्य व शनि का पिता-पुत्र सम्बन्ध के कारण गोचर में परस्पर वेध नहीं होता। इसी प्रकार चन्द्र व बुध में भी परस्पर वेध नहीं होता।

21- जन्मराशि से विद्ध स्थानों में सूर्यादि ग्रह हो तो अशुभ फल को देने वाला होता है, परन्तु शुभ स्थानों में कोई अन्य ग्रह हो तो शुभ फल देने वाला हो जाता है। अर्थात् क्रम वेध का विपरीत वामवेध होता है।

22- प्रश्नकर्ता के प्रश्न करने के समय के इष्टकाल को निकालकर लग्न साधन करना चाहिए। इसे ही प्रश्नलग्न कहते हैं।

23- जन्मकालीन ग्रहस्थिति के अनुसार गोचर का फल विचार करना ही अष्टकवर्गविचार है। अर्थात् जन्मसमय में जिस जिस राशि में सूर्यादि सातग्रह (इसमें राहु व केतु से विचार नहीं होता है) और लग्न स्थित हों, उन आठ स्थानों से गोचर फल का विचार करना ही अष्टकवर्ग विधि है।

24- प्रत्येक ग्रह की कुण्डली एवं लग्न कुण्डली में प्रत्येक ग्रह व लग्न को अपने अपने स्थान से किसी किसी स्थान में बल होता है। ग्रह जिस जिस स्थान में बल प्रदान करता है, उस उस शुभ स्थान को प्रायः रेखा या बिन्दु के माध्यम से प्रदर्शित किया जाता है। 4 से अधिक रेखायें या बिन्दु जिन स्थानों में प्राप्त होते हैं, उन राशि स्थानों में गोचरीय ग्रह आने पर शुभ फल प्राप्त होता है।

25- सूर्याष्टक में सूर्य से 1,2,4,7,8,9,10 व 11 स्थान शुभस्थान या रेखास्थान होते हैं।

26- जन्मकुण्डली में षष्ठेश जिस राशि में हो, उस राशि में गोचरीय क्रम से जब जब चन्द्र पहुँचता है, तब तब रोग सम्भावित होता है।

27- लग्न, लग्नेश एवं चन्द्र की पापग्रहों के साथ जब जब युति एवं दृष्टि होती है, तब तब रोग सम्भावित होता है।

28- रोगकारक ग्रह जब जब त्रिक आदि अनिष्ट स्थान में आता है, तब तब रोग सम्भावित होता है।

29- प्रश्नलग्न के नक्षत्र से जितने संख्यक नक्षत्र पर प्रश्नकालीन चन्द्र हो, चन्द्र के उस नक्षत्र से उतनी संख्या वाले अग्रिम नक्षत्र में रोग का प्रारम्भ होता है।

30- पृच्छक के विपत् , प्रत्यरि या वध नक्षत्र में जब चन्द्र आता है, तब रोग सम्भावित होता है।

31- प्रश्नकुण्डली में जो ग्रह षष्ठ भाव में स्थित है, यदि वह दिवाबली हो तो दिन में तथा रात्रिबली हों तो रात्रि में रोग का प्रारम्भ होता है। यदि कोई भी ग्रह षष्ठ भाव में स्थित न हो तो षष्ठेश से विचार करना चाहिए।

32- सूर्य, गुरु व शुक्र दिवाबली होते हैं। चन्द्र, मंगल व शनि रात्रि बली तथा बुध दिन व रात दोनों में बली होता है।

33- प्रश्नकर्ता जिस दिशा में बैठा हो, पूर्व आदि अनुलोम क्रम से गणना कर उस दिशा की संख्या जाननी चाहिए। फिर सूर्योदय से गणना कर उतने संख्यक प्रहर में रोगारम्भ बतलाना चाहिए।

34- अष्टकवर्गीय चक्र में मेषादि राशियों में जिस स्थान में कोई भी रेखा (शुभ स्थान) न हो तो वह ग्रह उस राशि में गोचरीय स्थिति से आने पर रोगभयकारक होता है।

35- प्रत्येक अष्टकवर्ग में जिस राशि में एक रेखा पड़ती है तो वह ग्रह उस राशि में गोचरीय स्थिति से आने पर अनेक प्रकार के रोग, दुःख, भय एवं परिभ्रमण करवाता है।

36- जिस राशि में दो रेखा पड़ती हैं तो वह ग्रह उस राशि में गोचरीय स्थिति से आने पर मनस्ताप, राजा द्वारा पीड़ा आदि फल देता है।

37- जिस राशि में तीन रेखा पड़ती है तो वह ग्रह उस राशि में गोचरीय स्थिति से आने पर मानसिक विकलता और भ्रमण से शारीरिक कष्ट देता है।

38- ग्रह गोचर स्थिति में उच्चादि शुभ स्थिति में होने पर भी 3 या उससे कम रेखा वाले राशि में आने पर रोगादि कष्ट को देता है।

39- यदि जन्म काल में सूर्य लग्न में हो, परन्तु नीच राशि अथवा शत्रुगृही हो। उस स्थान में केवल दो या तीन ही रेखायें सूर्याष्टक वर्ग में हो तो जातक रोगी होता है।

40- शनि के रेखाष्टक वर्ग में जिस राशि में कोई भी रेखा न हो, उस राशि में गोचरीय शनि के आने पर मृत्यु की सम्भावना होती है।

41- शनि के रेखाष्टक वर्ग में जो जो राशि रेखाशून्य हों,उस उस स्थान में सूर्य या शनि अथवा दोनों के आने पर रोग-पीड़ा इत्यादि होती है।

5.7 निबन्धात्मक प्रश्न –

1- गोचर शब्द का अर्थ बताते हुए परिभाषा स्पष्ट करें।
2- क्रियमाण कर्म पर अपने विचार विस्तार से रखिए।
3- क्रियमाण कर्म के फल विवेचन के मुख्य आयामों पर प्रकाश डालिए।
4- गोचरकुण्डली निर्माण विधि को सोदाहरण समझायें।
5- गोचर फलकथन में क्रमवेध व वामवेध पर प्रकाश डालिए।
6- प्रश्नकुण्डली निर्माण को उदाहरण सहित समझायें।
7- अष्टकवर्गनिर्माण विधि को सोदाहरण समझायें।
8- रोगों के गोचरीय योगों पर चर्चा कीजिए।
9- रोग विचार में प्रश्नकुण्डली के योगों पर प्रकाश डालिए।
10- अष्टकवर्ग से रोगविचार पर चर्चा कीजिए।

5.8 सन्दर्भ/सहायक ग्रन्थ सूची –

1- ज्योतिष शास्त्र में रोग विचार-डॉ. शुकदेव चतुर्वेदी-मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1992
2- ज्योतिष रत्नाकर- ठाकुर देवकीनन्दन सिंह- मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 2005
3- कर्मरहस्य – स्वामी रामसुखदास- गीताप्रेस गोरखपुर
4- आर्योद्देश्यरत्नमाला– स्वामी दयानन्द सरस्वती-परोपकारिणी सभा, 1873
5- योग दर्शन- गीताप्रेस गोरखपुर
6- यजुर्वेद- सम्पा. रेखा व्यास- संस्कृत साहित्य प्रकाशन, दिल्ली, 2015
7- श्रीरामचरितमानस- गीताप्रेस गोरखपुर
8- श्रीमद्भगवद्गीता- गीताप्रेस गोरखपुर
9- जातकालङ्कार-सम्पा.स्व. पं. सीताराम झा- मास्टर खेलाडीराम एण्ड सन्स, वाराणसी
10- बृहज्जातक- सम्पा. केदारदत्त जोशी-मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी 2016
11- लघुजातक- सम्पा. के एस.चरक-यू एम ए पब्लिकेसन्स, दिल्ली, 2008
12- जातकतत्त्वम् - दैवज्ञ महादेव शर्मा-भुवनेश्वरी यंत्रालय, रतलाम, सन् 1915
13- संस्कृत हिन्दी कोश- वामन शिवराम आप्टे-मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 2001
14- जातक पारिजातः-वैद्यनाथ - चौखम्बा संस्कृत सीरिज, वाराणसी, 1942
15- सर्वार्थ चिन्तामणि – गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास- कल्याण , बम्बई, 1956
16- लघुपाराशरी- गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास, कल्याण, बम्बई, 1937
17- फलदीपिका-आचार्य मन्त्रेश्वर- मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1975
18- बृहत्पाराशर होरा शास्त्र- मा.खेलाडीलाल संकटाप्रसाद, वाराणसी, 1968

इकाई १ – रत्न-विज्ञान से ग्रह-चिकित्सा

इकाई का निरूपण

१.१ प्रस्तावना
१.२ उद्देश्य
१.३ रत्न का परिचय
१.४ ग्रह-सम्बन्धी रत्न
१.५ प्रयोजन के आधार पर रत्न-धारण का काल-वर्गीकरण
१.६ रत्नों का वजन, धातु और पहनने के दिन
१.७ ग्रहों के रत्न
    १.७.१ सूर्य का रत्न
    १.७.२ चन्द्रमा का रत्न
    १.७.३ मंगल का रत्न
    १.७.४ बुध का रत्न
    १.७.५ गुरु का रत्न
    १.७.६ शुक्र का रत्न
    १.७.७ शनि का रत्न
    १.७.८ राहु का रत्न
    १.७.९ केतु का रत्न
१.८ रत्न धारण में कुछ महत्त्वपूर्ण विचारणीय बिन्दु
१.९ सारांश
१.१० शब्दावली
१.११ बोध प्रश्नों के उत्तर
१.१२ सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
१.१३ सहायक ग्रन्थ सूची
१.१४ निबन्धात्मक प्रश्न

१.१ प्रस्तावना –

प्रिय अध्येताओं! चिकित्सा-ज्योतिष डिप्लोमा पाठ्यक्रम के चतुर्थ पत्र के तृतीय खण्ड की प्रथम इकाई में आपका स्वागत है। इस खण्ड में आप रोगों के उपचारात्मक विविध पक्षों का अध्ययन करेंगे।

केवल रोगी के रोग का निदान अर्थात् कारण-अन्वेषण करने मात्र से रोग का उपशमन तो नहीं हो सकता है। रोग के कारणों को जानकर उनकी निर्मूल समाप्ति ही रोग-निदान-प्रक्रिया का फल है। अत: बिना उपचार-पक्ष पर विचार किए रोग-प्रकरण अधूरा है। रोगोपचार की दो प्रमुख विधियां क्रमश: १. चिकित्सकीय एवं २. ज्योतिषीय हैं। इसके साथ ही यौगिक अथवा प्राकृतिक उपचार-विधि भी है, जो उपरिलिखित दोनों ही विधियों की सहगामी उप-विधि है । यौगिक अथवा/और प्राकृतिक उपचार की जड़ की एक अंत:शाखा चिकित्साशास्त्र रूपी वृक्ष एवं एक ज्योतिषशास्त्र रूपी वृक्ष से सम्बद्ध है। रत्न-उपचार इस प्राकृतिक-उपचार रूपी उपविधि का अंग है, जिसका ज्योतिष-शास्त्र से तिल-तैलवत् सम्बन्ध है। इस रत्न-उपचार के विषय में आप इस अध्याय में विस्तार से अध्ययन करेंगे, जिससे रत्नों एवं ग्रहों के पारस्परिक-सम्बन्ध, उपचार में रत्नों की भूमिका एवं रत्न-धारण-विधि इत्यादि विषयों को आप स्पष्टतया समझकर निरूपित कर सकेंगे।

१.२ उद्देश्य –

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- ज्योतिषीयसिद्धान्तों के आधार पर रत्नों व ग्रहों के सम्बन्ध को बता सकने में समर्थ हो - सकेंगे।
- ज्योतिषीय सिद्धान्तों के आधार पर रत्नों व नक्षत्रों को बता-सकने में समर्थ हो सकेंगे।
- रत्न धारण की विधि का निरूपण कर सकेंगे।-
- रोगों के उपचार में रत्नों की भूमिका को प्रकट करने में समर्थ हो सकेंगे।
- ग्रहों के उपरत्नों का निरूपण कर सकने में कुशल हो सकेंगे।

१.३ रत्न का परिचय -

प्रिय अध्येता! ज्योतिष उपचार का एक माध्यम रत्न भी है। किन्तु, सबसे पहले तो यह जिज्ञासा है कि 'रत्न' इस शब्द का अभिप्राय क्या है? तो आइए इस प्रश्न के उत्तर हेतु कोश पर दृष्टि डालते हैं। शब्दकल्पद्रुम में 'रत्न' शब्द को व्याख्यायित करते हुए कोशकार राजा राधाकान्त देव कहते हैं 'रमयति हर्षयति इति रत्नम्' अर्थात् जो आनन्दित करे प्रसन्न करे उसे तत्त्व

(अश्मजाति) को 'रत्न' कहते हैं। कल्पद्रुमकार इसे 'अश्मजाति:' यह कहते हैं, जहां 'अश्म' एक प्रकार का पत्थर है। इससे स्पष्ट है 'रत्न' विशेष पत्थरों या जड़ों (विशेष जड़, प्रवाल आदि के द्वारा निर्मित) की संज्ञा है। इसीलिए राधाकान्त देव 'मुक्तादि तत्पर्याय:' ऐसा कहते हुए अमरकोश का भी उद्धरण देते हैं, जहां 'मणि:' रत्न शब्द का पर्याय बताया गया है। इस सन्दर्भ में विष्णु पुराण को देखना उचित होगा –

रत्नं क्लीबे मणि: पुंसि स्त्रियामपि निगद्यते।
तत्तु पाषाणभेदोऽस्ति मुक्तादि च तदुच्यते ।।

अर्थात् रत्नम् शब्द नपुंसक लिङ्ग का है, जिसका पर्यायवाची शब्द 'मणि:' स्त्रीलिङ्ग एवं पुंलिङ्ग दोनों रूपों में चलता है। विवध प्रकार के पाषाणों को 'रत्न' कहते हैं। ये मुक्तादि भेद से भिन्न-भिन्न होते हैं।

ये भेद कौन से हैं इस विषय में भावप्रकाश कहता है –

मुक्ताफलं हीरकञ्च वैदूर्यं पद्मरागकम्।
पुष्परागञ्च गोमेदं नीलं गारुत्मतं तथा ।।
प्रवालयुक्तान्येतानि महारत्नानि वै नव।

अर्थात् मुक्ताफल = मोती, हीरक = हीरा, वैदूर्य = लहसुनिया, पद्मराग = माणिक्य, पुष्पराग = पुखराज, गोमेद, नील = नीलम, गारुत्मत = पन्ना, ये प्रवाल आदि से युक्त (निर्मित) रत्न कहलाते हैं।

प्रिय अध्येता! प्रत्येक रत्न में एक विशिष्ट ग्रह की रश्मियों का शोषण करने की क्षमता होती है। यह रत्न उन विशेष रश्मियों का अवशोषण करके उनको मानव-शरीर में ठीक उसी प्रकार से प्रवाहित करता है जिस प्रकार विद्युत् एक पदार्थ से दूसरे पदार्थ मे प्रवाहित होती है।

ये रत्न भी १. मुख्य एवं २. उप इन दो भेदों में विभक्त हैं। मुख्य ९ रत्न आपने ऊपर पढ़े। इनके अतिरिक्त १२ उपरत्न हैं। इन रत्नों का प्रमुख गुण इनकी चमक, पारदर्शिता, कठोरता, स्निग्धता एवं दुर्बलता है।

१.४ ग्रह-सम्बन्धी रत्न -

किस ग्रह का किस रत्न से सम्बन्ध है, इस प्रश्न का समाधान करते हुए आचार्य वैद्यनाथ कहते हैं -

माणिक्यं दिननायकस्य, विमलं मुक्ताफलं शीतगो:,
माहेयस्य च विद्रुमं मरकतं सौम्यस्य गारुत्मकम्।
देवेज्यस्य च पुष्परागमसुराचार्यस्य वज्रं शने:,
नीलं निर्मलमन्ययोश्च गदिते गोमेदवैदूर्यके ।।

अर्थात् दिननायकस्य = सूर्य का, रत्न माणिक्यं = माणिक, शीतगो: = चन्द्रमा का, विमलं = निर्मल, श्वेत, मुक्ताफलं = मोती, माहेयस्य = मंगल का, विद्रुमं = मूँगा, सौम्यस्य = बुध का, मरकतं वा गारुत्मतं = पन्ना, देवेज्यस्य = देवपूज्य बृहस्पति का, पुष्परागम् = पीला

पुखराज, असुराचार्यस्य = शुक्र का, वज्रं = हीरा, शने: = शनि का नीलम, अन्ययोश्च = शेष अन्य दोनो राहु एवं केतु के रत्न क्रमशः गोमेद और वैदूर्य = लहसुनिया हैं।

जो रत्न जिन ग्रहों के हैं उन रत्नों को उन ग्रहों से सम्बन्धित जन्म-लग्न वाले जातकों अथवा उन ग्रहों से सम्बद्ध नक्षत्रों में उत्पन्न जातकों द्वारा धारण किया जा सकता है। दूसरे शब्दों में कहा जाए तो जन्म लग्न या जन्म नक्षत्र के आधार पर धारण किए गए रत्न निश्चय ही शुभ फल देने वाले होते हैं। रत्नों को धारण करने के काल-निर्धारण के समय भी ग्रह-सम्बद्ध लग्न या नक्षत्र का विचार करना चाहिए। अत: यहाँ आपकी सुविधा के लिए रत्न के साथ-साथ ग्रह-सम्बन्धित लग्नों और नक्षत्रों की भी सूची प्रदर्शित की जा रही है।

क्र सं	**रत्न या उपरत्न**	**लग्न/लग्नेश ग्रह**	**जन्म नक्षत्र**
1	माणिक्य या गार्नेट	सिंह/सूर्य	कृतिका, उत्तरा फाल्गुनी, उत्तराषाढा
2	श्वेत मोती	कर्क/चन्द्रमा	रोहहिणी, श्रवण, हस्त
3	लाल मूँगा या संगीमूंगी	मेष, वृश्चिक/ मङ्गल	मृगशिरा, चित्रा, धनिष्ठा
4	हरा पन्ना या ओनेक्स	मिथुन, कन्या/ बुध	अश्लेषा, ज्येष्ठा, रेवती
5	पीला पुखराज या सुनहला (पीली जरकन)	धनु, मीन/गुरु	पुनर्वसु, विशाखा, पूर्वभाद्रपद
6	हीरा अथवा श्वेत पुखराज या ओपल	वृष, तुला/शुक्र	भरणी, पूर्वा फाल्गुनी, पूर्वाषाढा
7	नीलम, या जमुनिया	मकर, कुम्भ/शनि	पुष्य, अनुराधा, उत्तरभाद्रपद
8	गोमेद या फिरोजा	राहु	आर्द्रा, स्वाति, शतभिषा
9	लहसुनिया या लाजवर्त	केतु	अश्विनी, मघा, मूल

१.५ प्रयोजन के आधार पर रत्न-धारण का काल-वर्गीकरण -

प्रिय अध्येता! यह प्रश्न बड़ा ही स्वाभाविक है कि क्या कोई भी रत्न कभी भी धारण किया जा सकता है? अथवा प्रयोजन के आधार पर भी रत्नों को अलग-अलग समय पर धारण करना चाहिए?

वस्तुतः कुछ रत्न तो ऐसे हैं जिनको आजीवन धारण किया जा सकता है किन्तु, कुछ रत्न यथावश्यक कालानुरूप ग्रह की दशा आदि में धारण किया जा सकता है।

इस पर कुछ विस्तार से दृष्टि डालें तो प्रयोजन के आधार पर रत्नों के धारण-काल को इस प्रकार वर्गीकृत किया जा सकता है।

आजन्म धारण करने वाले रत्न

लग्नेश, राशीश तथा जन्म-नक्षत्रेश से सम्बन्धित रत्न आजीवन धारण किया जा सकता है। जैसे कन्या लग्न में उत्पन्न जातकों को लग्नेश बुध का रत्न पन्ना आजीवन धारण करना चाहिए। कर्क लग्न में उत्पन्न जातक मोती की अंगूठी आजीवन धारण कर सकते हैं।

कुण्डली के विभिन्न भावों से सम्बन्धित रत्न

लग्न, पंचम और नवम भाव के स्वामी ग्रह या चतुर्थ एवं दशम भाव के ग्रह यदि निर्बल हैं तो उन भावेशों की दशा-अन्तर्दशा आदि कालखण्ड में इन ग्रहों के रत्न धारण किए जा सकते हैं। जैसे मेष लग्न की कुण्डली में पंचमेश सूर्य या भाग्येश गुरु निर्बल हैं तो उनसे सम्बद्ध रत्न माणिक्य, पुखराज आदि सूर्य, गुरु आदि की दशा-अन्तर्दशा आदि में विशेष लाभ हेतु पहना जा सकता है।

विशिष्ट प्रयोजन हेतु प्रयुक्त होने वाले रत्न

इसके अतिरिक्त योग-कारक (केंद्र-त्रिकोण का स्वामी) ग्रह, राजयोगकारक-ग्रह, महापुरुष-योग-कारक ग्रह एवं इस प्रकार के अन्य शुभ-योगों के अधिक प्रभाव की प्राप्ति हेतु रत्न पहनना चाहिए। लग्न के अनुसार निर्धारित शुभ ग्रह के निर्बल, अस्तंगत, पापाक्रान्त होने पर, अथवा रोग, कष्ट आदि की निवृत्ति हेतु भी रत्न धारण किया जा सकता है। उदाहरण के तौर पर वृष-लग्न की कुण्डली में शनि भाग्य भाव एवं दशम भाव का अधिपति होने के कारण योगकारक ग्रह है। अत: शनि की दशा-अन्तर्दशा आदि में शनि का रत्न धारण किया जा सकता है।

बोध प्रश्न

प्र.१ निम्नलिखित वाक्यों में सही के आगे (√) का और गलत के आगे (×) का चिह्न लगाएं –

(क) सूर्य का रत्न चन्द्रमा है ()
(ख) मंगल का रत्न मोती नहीं है ()
(ग) वैदूर्य शनि का रत्न है ()
(घ) मरकत बुध का रत्न है ()
(ङ) धनु लग्न वाले जातक को पुखराज धारण करना चाहिए ()

अभ्यास प्रश्न

प्र.१ मेषादि जन्म-लग्न के अनुसार किन-किन रत्नों की अंगूठी धारण की जानी चाहिए?

१.६ रत्नों का वजन, धातु और पहनने के दिन -

रत्न का पूर्ण शुभफल प्राप्त करने हेतु इसे शुक्ल पक्ष में ग्रह के अनुरूप वार एवं समय में ही धारण करना चाहिए। इसी प्रकार ग्रह से सम्बन्धित नक्षत्र में धारण करने से रत्न और भी प्रभावशाली हो जाता है। जहां तक प्रश्न रत्न के भार से सम्बन्धित है तो यह ध्यान रखना चाहिए कि रत्न बताए गए भार से सवाया होना चाहिए न कि पौना। यथा सवा तीन, सवा पांच, सवा सात रत्ती आदि। रत्न को निर्दिष्ट धातु में इस प्रकार जड़वायें कि रत्न नीचे से अँगुल को स्पर्श करता रहे। रत्न धारण करते समय अपने इष्ट देव का श्रद्धापूर्वक ध्यान करना चाहिए। तत्पश्चात् अँगूठी को कच्चे दूध एवं गंगा जल से धोकर शुद्ध करना चाहिए एवं धूप-दीप जलाकर सम्बन्धित ग्रह के मंत्र का कम से कम एक माला जप करना चाहिए। अँगूठी धारण करने के साथ-साथ सम्बन्धित ग्रह के पदार्थों का यथासम्भव दान करना चाहिए।

रत्न	ग्रह	भार रत्ती में	वार	धातु	अंगुली	समय	मंत्र
माणिक	सूर्य	**3**	रविवार	सोना	अनामिका	प्रातः	ऊँ घृणिः सूर्याय नमः
मोती	चन्द्र	**3**	सोमवार	चाँदी	कनिष्ठिका	प्रातः	ऊँ सों सोमाय नमः
मूँगा	मंगल	**6**	मंगलवार	चाँदी	अनामिका	प्रातः	ऊँ अं अंगारकाय नमः
पन्ना	बुध	**4**	बुधवार	सोना	कनिष्ठिका	प्रातः	ऊँ बुं बुधाय नमः
पुखराज	बृहस्पति	**4**	बृहस्पति	सोना	तर्जनी	प्रातः	ऊँ बृं बृहस्पते नमः
नीलम	शनि	**4**	शनिवार	पंच धातु	मध्यमा	संध्या	ऊँ शं शनैश्चराय नमः
गोमेद	राहु	**5**	शनिवार	अष्ट धातु	मध्यमा	सूर्यास्त	ऊँ रां राहवे नमः
लहसुनिया	केतु	**6**	गुरूवार	चाँदी	अनामिका	सूर्यास्त	ऊँ कें केतवे नमः
हीरा	शुक्र	**1/4**	शुक्रवार	प्लेटिनम	कनिष्ठिका	प्रातः	ऊँ शु. शुक्राय नमः

१.७ ग्रहों के रत्न –

प्रिय अध्येता! आपने संक्षेप में ग्रहों के रत्नों को तालिका के माध्यम से जाना। आइए, अब इस उपबिंदु में प्रत्येक ग्रह से सम्बद्ध रत्न, उसे धारण करने का काल, धारण की विधि, धारण करने के प्रयोजन एवं लाभ आदि से सम्बन्धित विषयों का विस्तारपूर्वक अध्ययन करते हैं।

१.७.१ सूर्य का रत्न -

सूर्य के दुष्प्रभाव से जातक को मुख्यतया सिरदर्द, बुखार की वृद्धि और तीक्ष्णता, क्षय, अतिसार, कोढ़ आदि रोग होते हैं। सूर्य पित्त-प्रकृति है एवं अस्थियों व हृदय का कारक ग्रह है। कुण्डली में सूर्य यदि निर्बल हो तो जातक को पित्त सम्बन्धी रोगों, हृदय-सम्बन्धी रोगों एवं अस्थि की दुर्बलता से अनेक रोगों की सम्भावना बन जाती है। हृदय सम्बन्धी रोगों में माणिक्य लाभदायक होता है।

यदि लग्न, केन्द्र या त्रिकोण का स्वामी होकर सूर्य नीच या शत्रु राशि में हो, जन्म लग्न से अष्टम या द्वादश भावों में हो अथवा वह षष्ठेश, अष्टमेश या द्वादशेश से युत हो तो सूर्य की महादशा या अन्तर्दशा महा कष्टप्रद होगी। अतः उक्त स्थिति में सोने अथवा ताँबे की अंगूठी में माणिक्य धारण करना चाहिए। माणिक्य का वजन कम से कम तीन रत्ती का होना चाहिए। रविवार के दिन पुष्य नक्षत्र में अँगूठी को बनने देना चाहिए। अँगूठी धारण करने से पूर्व उसको सूर्य के मंत्र से अभिमंत्रित कर लेना चाहिए, तत्पश्चात् सूर्य यंत्र पर रखकर अँगूठी की प्राण-प्रतिष्ठा करके धारण करनी चाहिए।

जो लोग सूर्य रत्न माणिक्य खरीद सकने की सामर्थ्य नहीं रखते हैं, वे तामड़ा (garnet), कन्टकिज ये उपरत्न धारण कर सकते हैं । अथवा शुभ रविवार के दिन, पूर्व की ओर मुँह करके प्रातःकाल बेल (बिल्व) की जड़ ले आयें, और शुद्ध जल से स्नान कराकर धूप-दीप से सूर्य मंत्र पढ़ते हुये उसकी पूजा करें तत्पश्चात् गुलाबी रंग के सूती धागे में इसे लपेट कर दाहिनी भुजा पर धारण करें। यह बिल्व की जड़ माणिक्य के समान लाभदायक होगी।

१.७.२ चन्द्रमा का रत्न

चन्द्र मन का कारक है। यह निर्बल होने पर वातज या कफज रोगों को जन्म देता है। शैशवकाल का प्रतिनिधि होने के कारण जिन जातकों की कुण्डलियों में चन्द्रमा पापाक्रान्त हो, या त्रिक भावों में हो तो उन जातकों को बालारिष्ट के कारण आयु का भय रहता है। मानसिक परेशानियों से ग्रस्त, अनिद्रा, अजीर्ण तथा पाचन तंत्र की बीमारियों से कष्ट भोग रहे लोगों को मोती धारण करना चाहिए।

ऐसी स्थिति में चन्द्रमा का रत्न मोती कनिष्ठिका में धारण करना चाहिए । इसका निर्माण रविवार अथवा गुरुवार को पुष्य नक्षत्र में करवाना चाहिये। इसको चांदी में जड़ा हुआ होना चाहिए।

१. यदि चन्द्रमा द्वादशेश होकर शनि आदि पापी ग्रहों के प्रभाव में हो तो यह नेत्र रोग देता है। ऐसी स्थिति में चांदी की अंगूठी में श्वेत मोती धारण करना चाहिये तथा चन्द्रमा पर पाप प्रभाव डालने वाले ग्रहों की शांति करवानी चाहिये।

२. चन्द्रमा चतुर्थेश अथवा पंचमेश होकर षष्ठ, अष्टम या द्वादश भावों में राहु, शनि या मंगल से पीड़ित हो तो जातक को उन्माद रोग या 'जल-भय' हो सकता है।

बोध प्रश्न

प्र.२ निम्नलिखित वाक्यों में सही के आगे (√) का और गलत के आगे (×) का चिह्न लगाएं –

(क) सूर्य दांत () सम्बन्धी रोगों का प्रमुख कारक है-
(ख) हृदय सम्बन्धी रोगों में सूर्य का रत्न-लाभप्रद हो सकता है ()
(ग) त्रिक() योग बनाता है-भावस्थ निर्बल चन्द्र बालारिष्ट-
(घ) त्रिक() भावस्थ निर्बल चन्द्र होने पर मरकत धारण करना चाहिए-
(ङ) कफज() रोग में गोमेद धारण करने से लाभ होता है-

अभ्यास प्रश्न

प्र.२ किन-किन रोगों में मोती धारण करना लाभप्रद है?

१मंगल ७.३. का रत्न -

जिस जातक की कुण्डली में केन्द्र या त्रिकोण का स्वामी होकर मंगल दूषित, अस्त या पापाक्रान्त होता है, उसे मूँगा पहनना लाभदायक होता है। यदि जन्म कुण्डली में मंगल, राहु या शनि के साथ स्थित हो, लग्न में मंगल हो, तीसरे भाव में हो, मंगल कहीं पर बैठकर सप्तम, नवम, दशम या एकादश भाव पर दृष्टि डालता हो, जन्म कुण्डली में मंगल सूर्य के साथ बैठा हो या सूर्य से देखा जाता हो, मंगल वक्री या अस्त हो, तथा यदि जन्म कुण्डली में पंचम भाव का स्वामी होकर त्रिक भाव में अर्थात् 6, 8, 12 वें भाव में मंगल हो तो शल्य क्रिया-के योग बनाता है अत : ऐसे जातक को मूगा रत्न अवश्य धारण करना चाहिये।

मंगलवार को, मृगशिरा, चित्रा या धनिष्ठा इन मंगल के नक्षत्रों में, मेष, मकर या वृश्चिक राशि पर मंगल ग्रह के स्थित रहने परप्रायः सूर्योदय से ग्यारह बजे तक के मध्य सोने की अंगूठी , धार में मूँगाण करना चाहिए। अँगूठी को अनामिका उँगली में धारण करना चाहिए । अँगूठी को धारण करने से पूर्व ताँबे का भौम यन्त्र बनवाकर उस पर मूँगे जड़ित अँगूठी रखकर पोडशोपचार पूजा कर मंगल मंत्र से अभिषिक्त करके धारण करें।

धारण करते समय ऊँ अंगारकाय नमः का १०८ जप करें। मूँगे का वजन कम से कम 6 रत्ती का होना चाहिए। इसे सोने की अँगूठी में या लाल रंग के वस्त्र से लपेट कर कड़े या भुजा में भी धारण किया जा सकता है। धारण करने अथवा अँगूठी में जड़वाने के दिन से 3 वर्ष तक मूँगा प्रभावकारी बना रहता है। इस अवधि के बाद मूँगे को बदल देना चाहिए। यदि मूँगा नहीं खरीद सकते हैं, तो उसके स्थान पर संगमूंगी' उपरत्न धारण करें । अथवा मंगलवार के दिन, अनन्त मूल

की जड़ को लाल धागे की सहायता से भुजा पर बाँधकर मूँगा धारण का लाभ प्राप्त कर सकते हैं। इसके लिए संध्याकाल का समय उत्तम माना गया है।

मूँगा रोगों पर भी अत्यंत प्रभावी होता है। रक्त सम्बन्धी बीमारियों में मूँगा पहनना लाभदायक होता है। इसके अतिरिक्त रक्त-चाप (ब्लड प्रेशर), दुर्बलता, उदार-विकार, मिर्गी, हृदय रोग इत्यादि में मूंगा रत्न लाभप्रद होता है।

१.७.४ बुध का रत्न -

बुध त्रिदोष से युक्त होता है। अर्थात् निर्बल बुध वातज, कफज एवं पित्तज इन तीनों ही प्रकार के रोगों को जन्म देता है। कंठ, वाणी, वाक्-कौशल आदि पर इसका अधिकार होता है। पन्ना बुध ग्रह का रत्न कहा गया है, इसे संस्कृत में मरकत मणि, फारसी में जरकन और हिन्दी में पन्ना कहते हैं। पन्ना अत्यन्त महत्त्वपूर्ण रत्न है, जिसको धारण करने से चित्त की विकलता समाप्त होती है। कुण्डली के अनुसार, आवश्यकता पड़ने पर यदि विद्यार्थी पन्ना पहने तो उसकी बुद्धि तीक्ष्ण और मन में स्थिरता बढ़ती है।

यदि बुथ नीच या शत्रु राशि में होकर लग्न से षष्ठ, अष्टम या द्वादश भाव में पापयुक्त हो तो बुध की महादशा में तज्जन्य रोग की उत्पत्ति सम्भव है। ऐसी स्थिति में, यदि अन्य ग्रहों का भी विपरीत प्रभाव हो तो चाँदी की अंगूठी में हरा पन्ना धारण करना आवश्यक होगा। साथ ही अन्य ग्रहों की भी शान्ति आवश्यक होगी।

यदि स्वक्षेत्री बुध पर शनि तथा राहु का प्रभाव हो अथवा लग्नेश तथा बुध पर पापप्रभाव हो, बुध द्वितीयेश होकर शनि या राहु से युत या दृष्ट हो तो पन्ना धारण करना चाहिए। मिथुन एवं कन्या लग्न वाले जातक को पन्ना धारण करना सर्वोत्तम है। तृतीय भावस्थ बुध की राशि पर अथवा बुध पर मंगल, शनि, राहु अथवा सूर्य का प्रभाव हो तो हाथों में कोई समस्या आ सकती है। ऐसी स्थिति में, सोने की अंगूठी में हरा पन्ना धारण करना आवश्यक होता है। परन्तु यदि मीन लग्न हो और मिथनु राशि चतुर्थ भाव में हो और मंगल आदि के पाप प्रभाव में हो तो छाती या फेफड़े के रोग हो सकते हैं अथवा मानसिक रोग भी हो सकता है। ऐसी स्थिति में चाँदी की अंगूठी में हरा पन्ना धारण करना होगा और लग्नेश गुरु की सबलता हेतु पीला पुखराज धारण करना होगा। जन्म नक्षत्र अश्लेषा, ज्येष्ठा तथा रेवती में से कोई एक हो तथा वह पापाक्रान्त भी हो तो आजन्म पन्ना धारण करना चाहिए।

पन्ने की अंगूठी, बुधवार के दिन, मिथुन अथवा कन्या राशि में अश्लेषा, ज्येष्ठा या रेवती नक्षत्र में धारण करना चाहिए। अँगूठी में कम से कम छः रत्ती का पन्ना जड़ा हो तथा उसका शुद्धिकरण करके, बुध ग्रह की समिधा से हवन करके ही रत्न धारण करें। यज्ञ करने के लिए सर्वतोभद्र चक्र

बनाकर चाँदी के कलश का पूजन करें तथा उसके ऊपर पन्ना जड़ी अँगूठी रख दें। तत्पश्चात् बुध के वैदिक या बीज-मन्त्र का 8000 जप करें।

इसके बाद चाँदी के बुध-यन्त्र पर पन्ने की अंगूठी रख कर प्राण प्रतिष्ठा करके कनिष्ठिका उँगली में अंगूठी धारण करें तो विशेष लाभ होगा। अँगूठी में पन्ने के साथ स्वर्ण धातु प्रभावशाली मानी गयी है लेकिन चाँदी की अंगूठी में भी पन्ने को धारण किया जाता है। रत्न-धारण करने के समय से तीन वर्ष तक पन्ने का प्रभाव रहता है तत्पश्चात् उसका प्रभाव समाप्त होने लगता है अत: यथावसर, यथाशक्य दूसरा पन्ना धारण करना चाहिए।

पथरी, बहुमूत्र, आधी सी.सी., बवासीर, ज्वर, गुर्दा, रक्त सम्बन्धी बीमारी इत्यादि रोगों में पन्ना लाभप्रद है। इसके अतिरिक्त दमा, मिर्गी, गुदा रोग, खाँसी, वात रोग, कोढ़, भूत-बाधा इत्यादि रोगों में भी पन्ना लाभप्रद हो सकता है। लग्नेश बुध पर केतू या मंगल का पाप प्रभाव हो तो मस्तिष्क सम्बन्धी कष्ट होने या सिर पर चोट लगने का भय रहता है। ऐसी स्थिति में चाँदी की अंगूठी में हरा पन्ना धारण करने से लाभ होता है।

यदि जातक पन्ना धारण करने में सक्षम नहीं हो तो पन्ना की जगह 'ओनेक्स' उपरत्न धारण करें। अथवा 'विधारा' नामक वनस्पति की जड़ को धारण किया जा सकता है। किसी भी बुधवार के दिन विधारा की जड़ लाकर उसे शुद्ध जल से स्नान कराकर बुध का मंत्र 108 बार जप करके जड़ को हरे रंग के सूती धागे से दाहिनी भुजा पर धारण करें।

बोध प्रश्न

प्र.३ निम्नलिखित वाक्यों में सही के आगे (√) का और गलत के आगे (×) का चिह्न लगाएं –

(क) मंगल अस्थि-सम्बन्धी रोगों का प्रमुख कारक है ()
(ख) रक्त-चाप में मंगल का रत्न लाभप्रद हो सकता है ()
(ग) त्रिक-भावस्थ निर्बल मंगल शल्य-क्रिया के योग बनाता है ()
(घ) त्रिक-भावस्थ निर्बल बुध होने पर मोती धारण करना चाहिए ()
(ङ) उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र में पन्ना धारण करना चाहिए ()

अभ्यास प्रश्न

प्र.२ किन-किन रोगों में मोती धारण करना लाभप्रद है ?

१.७.५ गुरु का रत्न

यदि गुरु अस्त, पापाक्रान्त, दुःस्थानगत या शत्रु राशि में हो, अथवा एकादशेश गुरु निर्बल हो, मीन लग्न हो और गुरु अष्टम भाव में हो, दो या तीन पापी ग्रहों से युत या दृष्ट हो तो ऐसी स्थिति में चाँदी की अंगूठी में पीला पुखराज धारण करना चाहिए।

बृहस्पति के रत्न पुखराज को संस्कृत में 'पुष्पराग' कहते हैं। इसे गुरुवार को पुष्य नक्षत्र में धारण करना चाहिए। धनु और मीन लग्न वाले जातक की कुण्डली में अथवा अन्य कुंडलियों में यदि केन्द्र-त्रिकोण का स्वामी होकर गुरु पाँचवें, छठे, आठवें या बारहवें भाव में हो तो पुखराज धारण करना चाहिए।

गुरुवार को यदि पुष्य नक्षत्र हो तब सूर्योदय के समय से दिन में 11:00 बजे के बीच पुखराज स्वर्ण की अंगूठी में धारण करनी चाहिए। अँगूठी धारण करने से पूर्व गुरु-यन्त्र कलश स्थापना कर गुरू मन्त्र का १०८ जप करके अंगूठी धारण करना चाहिए। अँगूठी में सोने का वजन 7 रत्ती अथवा इससे अधिक होना चाहिए। धारण करने से पुखराज का प्रभाव 4 वर्ष तक रहता है। तत्पश्चात् पुखराज पुनः धारण करना चाहिए। पीलिया में, मोटापे-सम्बन्धी रोगों में, तिल्ली सम्बन्धी रोगों में, यकृत-सम्बन्धी रोगों में और वातज व कफज रोगों में पुखराज धारण करना चाहिए।

यदि जातक को पुखराज उपलब्ध न हो तो 'सुनहला' का उपयोग किया जा सकता है अथवा गुरुवार के दिन बृहस्पति-मंत्र का जप करते हुए हल्दी की गाँठ या केले की जड़ को गुरु-मन्त्र से अभिमंत्रित करके पीले कपड़े में लपेट कर दाहिनी भुजा पर बाँधना चाहिए।

१.७.६ शुक्र का रत्न -

हीरे को संस्कृत में वज्रमणि अथवा इन्द्रमणि और फारसी में अलिमस कहते हैं। यदि किसी जातक की कुण्डली में शुक्र अस्त, निर्बल तथा पापाक्रान्त हो तो उसे हीरा धारण करना चाहिये। जिस व्यक्ति कि कुण्डली में शुक्र शुभ भावों का स्वामी होकर लग्न से छठवें, आठवें या बारहवें भाव में हो, अथवा शुक्र वक्री, नीच, अस्त, पापयुत या पापाक्रान्त हो तो हीरा धारण करना लाभकारी होता है। यदि जन्म नक्षत्र भरणी, पूर्वाफाल्गुनी और पूर्वाषाढ़ में से कोई एक हो तथा उस पर पापी ग्रहों का प्रभाव हो तो हीरा पहनना चाहिए। किसी भी ग्रह की महादशा में शुक्र का अन्तर चल रहा हो, तो हीरा अवश्य धारण करना चाहिए।

शुक्रवार को भरणी, पूर्वा फाल्गुनी या पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र में यदि शुक्र स्वराशि या अपनी उच्च राशि पर हो तो सोने की अंगूठी में हीरा धारण करना चाहिए। अँगूठी धारण करने से पूर्व अँगूठी को शुक्र-यन्त्र पर रखकर, प्राण-प्रतिष्ठा करके अभिषेक करें। तत्पश्चात् 4000 जप करके रत्न धारण करें। हीरे की अंगूठी का प्रभाव एक बार धारण करने के पश्चात् 7 वर्षों तक रहता है।

हीरा धारण न कर सकने पर 'श्वेत ओपल' जो इसका उपरत्न है उसे धारण करना चाहिए। अथवा शुक्रवार के दिन सरपंखा नाम पौधे की जड़ शुक्रवार को प्रातःकाल ले आयें और उसे

शुक्र-मन्त्र से अभिमन्त्रित करके सफेद धागे के सहारे भुजा पर बाँध लें। शुक्र-सम्बन्धी रोगों यथा प्रमेह इत्यादि में एवं प्रजनन-सम्बन्धी रोगों में हीरा लाभप्रद है।

१.७.७ शनि का रत्न

1. कुम्भ मकर या धनु लग्न हो और शनि षष्ठ, अष्टम या द्वादश भाव में होराहु या मंगल , से पीड़ित हो तो ऐसी स्थिति में नीलमधारण करना चाहिए।
2. यदि शनि की साढ़े साती चल रही हो अथवा किसी भी ग्रह की महादशा में शनि की अन्तर्दशा चल रही हो।
3. चतुर्थेश शनि पर मंगल की दृष्टि या युति हो और उस पर राहु या सूर्य का प्रभाव हो ।
4. जन्म कुण्डली में शनि वक्री, अस्तंगत या दुर्बल हो परन्तु शुभ भावों में हो तो नीलम धारण करना चाहिए।
5. शनि सूर्य के साथ हो, सूर्य की राशि में हो तथा सूर्य की उस पर दृष्टि हो। यदि जन्म नक्षत्र पुष्य, अनुराधा और उत्तरा भाद्रपद में से कोई हो तथा उस पर पाप प्रभाव हो ।

शनि की शान्ति हेतु नीलम को धारण किया जाता है । नीलम का क्रय तब करना चाहिए जब शनि मकर या कुंभ या तुला राशि में हो अथवा उत्तराषाढ़ा श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वाभाद्रपद, चित्रा, स्वाति अथवा विशाखा नक्षत्र हो। नीलम निर्दोष होना चाहिए और उसका वजन कम से कम चार रत्ती का हो तथा उसे लोहे अथवा स्वर्ण में जड़वाना चाहिए। इस धातु का वजन भी कम से कम नौ रत्ती हो। शनि यंत्र को उत्कीर्ण कराकर, नीलम और शनि यंत्र दोनों का शुद्धिकरण करा ले तत्पश्चात् यंत्र के मध्य में अंगूठी को स्थापित करके षोडशोपचार पूजा करते हुए प्राण प्रतिष्ठा करें और निम्न मंत्र- "ॐ ऐं ह्रीं श्रीं शनैश्चराय नमः से "6 हजार आहुतियों से हवन करें। धारण करने से पूर्व एक कटोरी में सरसों के तेल का दीपक जलाकर उसमें नीलम की अंगूठी डाल दें और समीप एक पात्र में जल रखें, तत्पश्चात शनि के आगे दिये हुए वैदिक मंत्र का 23 हजार बार और बीज मंत्र का 10 लाख की संख्या में जप करके मध्यमा ऊँगली में अंगूठी धारण करें। एक बार अंगूठी धारण करने के पश्चात जातक पाँच वर्षों तक उसे पहन सकते हैं । पाँच वर्षों के पश्चात् धारण किये गये नीलम का प्रभाव समाप्त कम होने लगता है।

शनि का रत्न नीलम बहुमूल्य होने के साथ-साथ संदिग्ध प्रभाव वाला भी होता है । शुद्ध, निर्दोष, असली नीलम, भी कभी-कभी मारक हो जाता है यह उसका अस्तित्वगत प्रभाव होता है। कोई नीलम शुभ होता है और कोई घातक। अतः धारण करने से एक दिन पूर्व उसका परीक्षण करना चाहिए।

नीलम के उपरत्न के रूप में 'जमुनिया' या 'नीलमणि' उपरत्न धारण करें। अथवा तीला को (घोड़े की नाल से बनी) शनिवार के दिन बिछों (एक पौधा) की जड़ लाकर उसे काले कपड़े या काले धागे में पिरोकर दायीं भुजा में धारण करना चाहिए। जातक की कुण्डली में शनि स्थित राशिगत हो तो शनि खांसी, श्वासनली में उत्ताप, हृदयरोग, मूत्र व्याधि आदि से त्रस्त करता है। यदि शनि चर राशि में हो तो उदर-वक्ष संधि स्थल सम्बन्ध विकार देता है, जबकि द्विस्वभाव की राशि में होने पर श्वास, फेफड़े सम्बन्धी रोग, पैरों की पीडा इत्यादि होती है, परन्तु नीलम धारण करने से उपरोक्त रोगों से मुक्ति मिलती है।

बोध प्रश्न

प्र.४ रिक्त स्थान की पूर्ति करें –

(क) पूर्वा फाल्गुनी नक्षत्र में _____ धारण करना चाहिए गणनाकाले चञ्चलीभवति इति काकिणी।

(ख) इन्द्रमणि _____ पर्याय है।

(ग) _____ सम्बन्धी रोगों में पुखराज लाभप्रद है।

(घ) हीरे के अभाव में _____ का उपयोग करना चाहिए।

(ङ) नीलम के अभाव में का उपयोग करना चाहिए। _____

अभ्यास प्रश्न

प्र.४ गुरु का रत्न किन-किन रोगों में लाभप्रद है?

१.७.८ राहु का रत्न -

यदि लग्न मिथुन, तुला, कुम्भ या वृषभ हो तो राहु का रत्न गोमेद भी धारण कर सकते हैं। गोमेद के दो उपरत्न होते हैं तुरसा एवं साफी। गोमेद का निर्माण एवं धारण स्वाती, शतभिषा या आर्द्रा नक्षत्र के दिन या शनिवार को करें। प्रातः पंचधातु या लोहे की अंगूठी में लगभग चार रत्ती या इससे बड़ा गोमेद धारण करना चाहिए। अँगूठी को रजत पर बने राहु यन्त्र पर रखकर उसकी प्राण प्रतिष्ठा करें तथा राहु-मन्त्र का जप करें और 1000 आहुतियाँ दें। तत्पश्चात् राहु के वेदोक्त मंत्र से हवन करें। राहु की अंगूठी सायं लगभग 05 बजे धारण करना चाहिए। एक बार अँगूठी धारण करने से उसका प्रभाव तीन वर्षों तक रहता है। गोमेद को निम्न परिस्थितियों में धारण किया जा सकता है-

1. जिन जातकों का जन्म नक्षत्र आर्द्रा, स्वाती तथा शतभिषा है उन्हें ही आजन्म राहु का रत्न धारण करना चाहिए।

2. लग्न में द्वितीय एवं तीसरे भाव में, केन्द्र स्थानों में, नवम भाव में अथवा एकादश स्थान में राहु हो तो गोमेद पहना जा सकता है।
3. शुभ भावों का अधिपति होकर अपने भाव से छठे स्थान में राहु हो।
4. शुक और बुध के साथ राहु स्थित हो तो भी गोमेद धारण किया जा सकता है।

यदि राहु पंचम भाव में सूर्य के साथ हो अथवा चन्द्र के साथ हो या इनकी राशियों में पंचम भाव में विद्यमान हो तो गोमेद कदापि धारण न करें।

यदि गोमेद धारण न कर सकें 'फिरोजा' या 'गजदंत' धारण करें। अथवा श्वेत चन्दन के टुकड़े को सफेद वस्त्र या धागे के सहारे भुजा पर बाँध लेने से राहु का दोष शान्त हो जाता है।

१.७.९ केतु का रत्न -

केतु के कारण होने वाले रोगों में मुख्य रूप से त्वचा-सम्बन्धी-विकार, शूल, उदर-रोग, अनपत्यता, मानसिक-रोग इत्यादि हैं।

यदि केतु द्वितीय, अष्टम या द्वादश भाव में पापयुक्त हो तो केतु का उपाय करना आवश्यक होता है इसके निम्नलिखित उपायों को करना हितकर सिद्ध होता है।

जिन जातकों की कुण्डली में केतु दूषित हो, तो उन्हें लहसुनिया धारण करना चाहिए। लहसुनिया को अंग्रेजी में कैट्स आई स्टोन (Cat's Eye Stone) कहते हैं। इस रत्न में सफेद धारियाँ पायी जाती हैं। उत्तम कोटि की लहसुनिया में 2.5 धारियाँ पायी जाती है। अश्विनी, मघा, मूल नक्षत्र वाले दिन, सांयकाल 6 से 7:00 बजे के बीच पंच धातु अथवा लोहे की अंगूठी जो कम से कम सात रत्ती की हो और उसमें कम से कम चार रत्ती का लहसुनिया जड़ायें। मंगलवार को लहसुनिया को केतु यंत्र पर रखकर प्राण प्रतिष्ठा करके केतु-मन्त्र का जप करें। जप मंत्र की 2700 आहुतियाँ देकर एवं वैदिक मंत्र के 17000 जप करवाकर मध्यमा अंगुली में अंगूठी धारण करे। एक बार लहसुनिया अंगूठी धारण करने के पश्चात् उसका प्रभाव तीन वर्षों तक रहता है। लहसुनिया केतु ग्रह का रत्न है, परन्तु केवल निम्न परिस्थितियों में ही लहसुनिया धारण करना चाहिए:-

1. जिन जातकों का जन्म नक्षत्र अश्विनी, मघा और मूल है वह आजन्म लहसुनिया धारण कर सकते हैं।
2. केतु ग्रह की महादशा या अन्तर्दशा में भी लहसुनिया धारण किया जा सकता है।
3. जन्म कुण्डली में केतु के दूषित, दुर्बल अथवा अस्त होने पर।
4. केतु के पंचमेश अथवा भाग्येश होने पर भी लहसुनिया धारण करना चाहिए।
5. यदि जातक को भूतप्रेत आदि की बाधा का भय हो।-

6. यदि जन्म कुण्डली में केतु के दूसरे, तीसरे, चौथे, पाँचवे अथवा नवे या दसवें भाव में होने पर लहसुनिया धारण करने से अच्छा लाभ प्राप्त होता है।
   लहसुनिया को धारण करने से विविध प्रकार के रोगों जैसे पेट की बीमारी, मधुमेह, खूनी पेंचिस इत्यादि रोग में लाभ पहुंचता है। यदि लहसुनिया धारण न किया जा सकता हो तो गे में लपेट धारण करें। अथवा अश्वगंधा की जड़ लाल धा 'लाजवर्त' कर धारण करें।

१.८ रत्न धारण में कुछ महत्त्वपूर्ण विचारणीय बिन्दु -

रत्न के माध्यम से उपचार करते समय कुछ बातों का विशेष रूप से स्मरण रखना चाहिए। यदि धारण किए जाने वाले रत्न से सम्बन्धित ग्रह लग्नेश, राशीश अथवा सम्बन्धित नक्षत्रों के स्वामी होने के साथ-साथ बाईसवें द्रेष्काण या चौंसठवें नवांश का स्वामी हो, तो ग्रह-सम्बद्ध अधिपति-देव की पूजा-अर्चना करनी चाहिए। इसी प्रकार यदि ऐसा ग्रह तृतीय, पंचम अथवा अष्टम तारा का स्वामी हो अथवा षष्ठेश, अष्टमेश अथवा द्वादशेश भी हो तो रत्न धारण करने के स्थान पर सम्बन्धित देवी-देवताओं की आराधना करनी चाहिए और मंत्रादि का जप करना चाहिए।

रत्न धारण करते समय इस बात का भी स्मरण रखना चाहिए कि शत्रु और मित्र रत्नों को एक साथ अँगूठी में नहीं जड़वाना चाहिए और न ही उन्हें एक साथ धारण करना चाहिए।

कोई भी ग्रह जो शुभदायी होने के साथ-साथ दु:स्थानगत, पापदृष्ट, पापाक्रान्त, वक्री, शत्रु या नीच राशि में होने से अशुभ हो रहा हो तो उस ग्रह से सम्बन्धित रत्न अवश्य धारण किया जा सकता है, किन्तु इसके साथ ही उस ग्रह से सम्बद्ध जप-तप, दान-पूजा भी करनी चाहिए।

किन्तु, यदि किसी ऐसे ग्रह की दशा अथवा अंतर्दशा चल रही हो जो जन्म-लग्न और जन्म-राशि से अशुभदायी नहीं हो तो ऐसे में उस ग्रह के रत्न धारण करने की अपेक्षा उस रत्न का दान करना चाहिए।

रत्न	**मित्र**	**शत्रु**	**सम**
माणिक्य	मोती, मूँगा, पुखराज	हीरा नीलम	पन्ना
मोती	माणिक्य, पन्ना	-	हीरा, मूँगा, पुखराज नीलम
मूँगा	माणिक्य, मोती, पुखराज		पन्ना, पुखराज, नीलम
पन्ना	हीरा	मोती, मूँगा, माणिक्य	पुखराज, नीलम
पुखराज	माणिक्य, मोती, मूँगा	पन्ना, हीरा	मूँगा, पुखराज

हीरा	पन्ना, नीलम	माणिक्य, मोती	मूँगा, पुखराज
नीलम	पन्ना, हीरा	माणिक्य, मोती, मूँगा	पुखराज
गोमेद	पन्ना, नीलम, हीरा	माणिक्य, मोती, मूँगा	पुखराज
लहसुनिया	पन्ना, नीलम, हीरा	माणिक्य, मोती, मूँगा	पुखराज

बोध प्रश्न

प्र.५ निम्नलिखित वाक्यों में सही के आगे (√) का और गलत के आगे (×) का चिह्न लगाएं –

(क) कर्क लग्न वाले जातक आजीवन गोमेद धारण कर सकते हैं। ()

(ख) वृष लग्न वाले जातक आजीवन नीलम धारण कर सकते हैं। ()

(ग) शत्रु व मित्र रत्नों की अंगूठी एक साथ पहनने से लाभ होता है। ()

(घ) पंचम भाव में सिंह राशिस्थ राहू हो तो गोमेद कदापि नहीं पहनना चाहिए। ()

(ङ) मूल जन्म-नक्षत्र वाले जातक के लिए लहसुनिया हानिप्रद है। ()

अभ्यास प्रश्न

प्र.५ रत्नों के शत्रु-मित्र रत्नों के नाम लिखें।

१.९ सारांश –

'रमयति हर्षयति इति रत्नम्' अर्थात् जो आनन्दित करे प्रसन्न करे उसे तत्त्व (अश्मजाति) को 'रत्न' कहते हैं। 'रत्न' विशेष पत्थरों या जड़ों (विशेष जड़, प्रवाल आदि के द्वारा निर्मित) की संज्ञा है। सूर्य का रत्न माणिक्य, चन्द्रमा का मोती, मंगल का मूँगा, बुध का पन्ना, बृहस्पति का पीला पुखराज, शुक्र का हीरा, शनि का नीलम, और राहु एवं केतु के रत्न क्रमशः गोमेद और लहसुनिया हैं। लग्नेश, राशीश तथा जन्म-नक्षत्रेश से सम्बन्धित रत्न आजीवन धारण किया जा सकता है। लग्न, पंचम और नवम भाव के स्वामी ग्रह या चतुर्थ एवं दशम भाव के ग्रह यदि निर्बल हैं तो उन भावेशों की दशा-अन्तर्दशा आदि में इन ग्रहों के रत्न धारण किए जा सकते हैं। इसके अतिरिक्त योग-कारक (केंद्र-त्रिकोण का स्वामी) ग्रह, राजयोगकारक-ग्रह, महापुरुष-योग-कारक ग्रह एवं इस प्रकार के अन्य शुभ-योगों के अधिक प्रभाव की प्राप्ति हेतु एवं शुभ ग्रह के निर्बल, अस्तंगत, पापाक्रान्त होने पर, अथवा रोग, कष्ट आदि की निवृत्ति हेतु भी रत्न धारण किया जा सकता है। रत्न बताए गए भार से सवाया होना चाहिए न कि पौना। यथा सवा तीन, सवा पांच, सवा सात रत्ती आदि। रत्न को निर्दिष्ट धातु में इस प्रकार जड़वायें कि रत्न नीचे से अँगुल को स्पर्श करता रहे। रत्न धारण करते समय अपने इष्ट देव का श्रद्धापूर्वक ध्यान करना चाहिए। तत्पश्चात्

अँगूठी को कच्चे दूध एवं गंगा जल से धोकर शुद्ध करना चाहिए एवं धूप-दीप जलाकर सम्बन्धित ग्रह के मंत्र का कम से कम एक माला जप करना चाहिए। अँगूठी धारण करने के साथ-साथ सम्बन्धित ग्रह के पदार्थों का यथासम्भव दान करना चाहिए।

१.१० शब्दावली –

क्लीबे = नपुंसक लिङ्ग में
पुंसि = पुंलिङ्ग में
स्त्रियामपि = स्त्रीलिङ्ग
निगद्यते = कहा जाता है
मुक्ताफलं = मोती
हीरकं = हीरा
वैदूर्यं = लहसुनिया
पद्मरागकम् = माणिक्य
पुष्पराग = पुखराज
नीलं = नीलम
गारुत्मतं = पन्ना
दिननायकस्य = सूर्य का
शीतगो: = चन्द्रमा का
माहेयस्य = मंगल का
विद्रुमं = मूँगा
मरकतं = पन्ना
सौम्यस्य = बुध का
देवेज्यस्य = देवपूज्य बृहस्पति का
असुराचार्यस्य = शुक्र का
वज्रं = हीरा

१.११ बोध प्रश्नों के उत्तर –

प्र.१ (क) (×) (ख) (√) (ग) (×) (घ) (√) (ङ) (√)

प्र.२ (क) (×) (ख) (√) (ग) (√) (घ) (×) (ङ) (×)

प्र.३ (क) (×) (ख) (√) (ग) (√) (घ) (×) (ङ) (×)

प्र.४ (क) हीरा

(ख) हीरे का

(ग) यकृत

(घ) सरपंखा

(ङ) जमुनिया

प्र.५ (क) (×) (ख) (√) (ग) (×) (घ) (√) (ङ) (×)

१.१२ सन्दर्भ ग्रन्थ सूची –

१. गोपेश कुमार ओझा - सम्पादक (२००४) वैद्यनाथकृत जातक पारिजात, मोतीलाल बनारसीदास प्रकाशन, वाराणसी।

२. जगन्नाथ भसीन – सम्पादक (१९९९), कालिदासविरचित उत्तरकालामृत, रंजन पब्लिकेशन, दिल्ली।

३. राजा राधाकान्त देव विरचित शब्दकल्पद्रुम, चौखम्भा संस्कृत ग्रंथमाला ग्रंथांक -१३, चौखम्बा संस्कृत सीरीज प्रकाशन, वाराणसी, १९७७ ई.।

१.१३ सहायक ग्रन्थ सूची –

१. healing power of Gems and Stones, V. RajShushila, Pustak Mahal, Delhi, 1999

१.१४ निबन्धात्मक प्रश्न –

१. ग्रहों, नक्षत्रों और रत्नों के सम्बन्ध पर प्रकाश डालिए।

२. ग्रहों के उपरत्न कौन-कौन से हैं?

३. रोगों के उपचार में रत्नों की भूमिका को स्पष्ट करें।

इकाई २: मंत्र-अनुष्ठान विधि द्वारा रोगोपचार

इकाई का निरूपण

२.१ प्रस्तावना
२.२ उद्देश्य
२.३ मन्त्र का स्वरूप एवं प्रभेद
२.४ सूर्य से सम्बन्धित विविध मान्त्रिक-प्रयोग
२.५ चन्द्र से सम्बन्धित विविध मान्त्रिक-प्रयोग
२.६ मंगल से सम्बन्धित विविध मान्त्रिक-प्रयोग
२.७ बुध से सम्बन्धित विविध मान्त्रिक-प्रयोग
२.८ बृहस्पति से सम्बन्धित विविध मान्त्रिक-प्रयोग
२.९ शुक्र से सम्बन्धित विविध मान्त्रिक-प्रयोग
२.१० शनि से सम्बन्धित विविध मान्त्रिक-प्रयोग
२.११ राहु से सम्बन्धित विविध मान्त्रिक-प्रयोग
२.१२ केतु से सम्बन्धित विविध मान्त्रिक-प्रयोग
२.१३ सारांश
२.१४ शब्दावली
२.१५ बोध प्रश्नों के उत्तर
२.१६ सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
२.१७ सहायक ग्रन्थ सूची
२.१८ निबन्धात्मक प्रश्न

२.१ प्रस्तावना –

प्रिय अध्येताओं! चिकित्सा-ज्योतिष डिप्लोमा पाठ्यक्रम के चतुर्थ पत्र के तृतीय खण्ड की द्वितीय इकाई में आपका स्वागत है। इस खण्ड में आप रोगोपचार के विविध आयामों का अध्ययन कर रहे हैं।

गत पाठ में आपने रोगों के उपचार में रत्नों की भूमिका का विस्तार से अध्ययन किया। आपने सूर्य आदि सभी ग्रहों के रत्न व उपरत्न, उनके धारण की विधि आदि विषयों के बारे में जाना। इसके पश्चात् इस इकाई में आप रोगों के उपचार के अन्य परिप्रेक्ष्य का अध्ययन करेंगे। यह आयाम है 'मान्त्रिक-उपचार' का। जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है यह मन्त्र-सम्बन्धी या मन्त्राधारित उपचार विधि है।

मित्र! जिस प्रकार सूर्यादि ग्रहों एवं नक्षत्रों के रत्न निर्धारित हैं, ठीक उसी प्रकार इन ग्रहों एवं नक्षत्रों के मन्त्र भी निर्धारित हैं। ये मन्त्र साधारणतया वैदिक और पौराणिक दो प्रकार के हैं। रोगोपचार में इन मन्त्रों के प्रयोग की क्या विधि है? ये मन्त्र उपचार में किस प्रकार से सहायक हैं? इन सभी विषयों का आप इस इकाई में विस्तार से अध्ययन करेंगे।

२.२ उद्देश्य –

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- ग्रहों के मन्त्रों को बता सकने में समर्थ हो सकेंगे।
- ज्योतिषीयसिद्धान्तों के आधार पर दोषों के स्वरूप व भेद को बता सकने में समर्थ हो - सकेंगे।
- रोगों के निदान में दोषों की भूमिका को प्रकट करने में समर्थ हो सकेंगे।
- दोषज व्याधियों के भेद का निरूपण कर-सकने में कुशल हो सकेंगे।
- ज्योतिषीयव्याधियों के निर्धारण में निपुण हो सकेंगे।-योगों के आधार पर दोषज-

२.३ मन्त्र-चिकित्सा का परिचयात्मक-स्वरूप

'मननात् त्रायते इति मन्त्रः' अर्थात् मनन करने से जो रक्षा करे वह 'मन्त्र' कहलाता है। सभी शारीरिक एवं बौद्धिक विकास एवं ह्रास के मूल में यह 'मन'रूपी अन्तःकरण ही है क्योंकि मन पर अधिकार करने के बाद ही इन्द्रियां यथेष्ट विषयोपभोग में रत हो सकती हैं, अन्यथा नहीं। बिना मन को वश में किए यह सम्भव नहीं है। यही कारण है कि मन को बन्धन या मोक्ष का कारण माना गया है -

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः।

हमें यह समझना चाहिए कि बन्धन और मोक्ष केवल संसार के परिप्रक्ष्य में ही नहीं अपितु रोग के परिप्रेक्ष्य में भी उतना ही सत्य है। यदि रोगी का मन पर अधिकार है, मन से वह प्रबल है तो उपचार की सभी विधियां मणि-मन्त्र-ओषधि आदि तीव्रता से फल देती हैं और वह शीघ्र ही रोग के बंधन से मुक्त हो जाता है अन्यथा, मन निर्बल होने पर, उस पर अधिकार न होने पर, एक-समान उपचार भी रोग के बंधन से रोगी को मुक्त नहीं कर पाता है। किन्तु, इन्द्रियों को क्षुब्ध कर देने वाले इस मन पर अधिकार (नियन्त्रण) अत्यन्त दुष्कर कार्य है। गीता कहती है –

चंचलं हि मन: कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम् ।

जैसा कि मैंने आपसे पहले ही कहा कि इस मन पर नियन्त्रण कर लेने से रोग के उपचार स्वत: ही प्रारम्भ हो जाता है । किन्तु वह सत्य-संकल्पित (दृढ-संकल्प से युक्त) होना चाहिए, जिसकी प्रार्थना श्रुति स्वयं करती है –

तन्मे मन: शिवसंकल्पमस्तु ।

इस मन को दृढ़ बनाने का अभ्यास मन्त्रों के मनन द्वारा ही संभव है । यह मन्त्र, नियंत्रित-मन-रूपी कार्य (फल) का कारण है और इसके साथ ही नियन्त्रित-मन, मन्त्र-सिद्धि या मान्त्रिक उपचार-रूपी कार्य का कारण है । सरल शब्दों में कहूं तो मन्त्र के सतत जप से मन पर नियंत्रण संभव है एवं नियन्त्रित मन के द्वारा ही मन्त्र-जप से अभीष्ट की सिद्धि होती है । और यह दोनों कार्य अर्थात् मन पर नियंत्रण और मन्त्र से अभीष्ट-सिद्धि अन्योन्याश्रित होने के कारण साथ ही साथ सम्पन्न होते हैं । ऐसा नहीं है कि पहले मन पर सम्पूर्ण नियंत्रण कर लिया फिर जप करने बैठे।

मन्त्र न केवल स्वनिहित गूढ़ तत्त्व का प्रकाशन करता है अपितु वह बुद्धि और चित्त का विलास भी करता है । चित्त का यह विलास, एक सतत प्रकाश या आनन्द, मन्त्र-जप के अतिरिक्त अन्य मनोवैज्ञानिक-प्रविधियों से कथमपि संभव नहीं है । मन्त्र-जप अनेकानेक जन्मों के पाप-कर्मों की क्षीणता में सर्वाधिक महत्त्वपूर्व साधन है । जब साधक मन्त्र-जप करता है, तो उसमें आबद्ध अक्षर-नाद-विन्यास का क्रमबद्ध सतत अनुनाद, मन्त्र में निगूहित शक्ति को शरीरस्थ ब्रह्माण्डीय-अन्तरिक्ष में प्रचोदित करता है, जिससे उस ब्रह्मांडीय शक्ति के माध्यम से पिण्ड (जातक) का ब्रह्माण्ड से साक्षात सम्बन्ध प्रकाशित हो जाता है । इस प्रकार मन्त्र में निहित आधिदैविक-शक्ति का साक्षात्कार करते हुए उसकी कृपा साधक प्राप्त करता है । वह स्वयं में उस शक्ति का ऐकिक स्वरूप ठीक उसी प्रकार बन जाता है, जैसे बिजली के ट्रांसफार्मर से युक्त सभी धातु के तार स्वयम विद्युत् का स्वरूप बन जाते हैं । इसलिए यदि कोई जातक या साधक सूर्य देव का अनुग्रह प्राप्त करना चाहता है तो वह सूर्य-मन्त्र का अथवा गायत्री-मन्त्र का सम्पूर्ण विधि-विधान से, यौगिक-नियमों के आलोक में निर्दिष्ट संख्या में जप करता है तो मन्त्र में निहित सूर्य-देव की शक्ति से वह सम्पन्न हो जाता है और उसे अभीष्ट की प्राप्ति होती है ।

ऐसे में प्रश्न यह है कि यदि सूर्यादि ग्रहों के या अन्य अभीष्ट देवों के मन्त्र का जप करने से रोग का शमन हो जाए तो फिर सभी व्यक्ति निरोगी हो जाएं लेकिन व्यवहार में ऐसा नहीं दिखता है, इसका कारण क्या है? क्या मन्त्र-चिकित्सा तीर है या तुक्का?

ऐसा है प्रिय! मन्त्र-चिकित्सा सुनने या वर्णन करने में जितनी सरल प्रतीत होती है यह उतनी ही कठिन है । अपने मन को नियन्त्रित करके, धैर्य के साथ बुद्धि को सतत अभीष्ट देवता के स्वरूप में लगाकर प्रयोज्यमाण मन्त्र के स्वरूप का ध्यान लगाते हुए तथा चित्त को अभीष्टदेवताकाराकारित बनाते हुए, हृदय में उस अभीष्ट शक्ति की अवतारणा अत्यन्त दुरूह कार्य है । ऐसी आदर्श-स्थिति के लिए यम, नियम, आसन, प्राणायाम आदि योगांगों के सतत अभ्यास की आवश्यकता होती है । जप करने वाले को, सतत सन्ध्योपासन के साथ-साथ अपने अभीष्ट-देव के या गायत्री की उपासना का नित्य-अभ्यास होना चाहिए । उसे सात्विक-बुद्धि वाला होना चाहिए । किसी भी अभीष्ट-देवता की मन्त्र-सिद्धि हेतु उपर्युक्त नियम मूलभूत या प्राथमिक शर्तें हैं, जिनका वर्तमान समय में नितान्त अभाव होने के कारण ही भगवान् शिव को स्वयं पार्वती जी से कहना पड़ा -

जिह्वा दग्धा परान्नेन करौ दग्धौ प्रतिग्रहात् ।

मनो दग्धं परस्त्रीभिर्कथं सिद्धिर्वरानने ।।

अर्थात् हे वरानने = उत्तम अंगों वाली देवी! वर्तमान समय में सिद्धि चाहने वाले व्यक्तियों की जीभ (जिससे मंत्रोच्चार करना है, वह) दूसरे का (दूसरे के हिस्से का) अन्न (छल-बल से) ग्रहण करने के कारण जल गयी है, हाथ (जिनसे जपमाला का ग्रहण करना है, वह) दान ने करके सर्वदा केवल लेने के कारण जल गए हैं, मन (जिसको अभीष्ट देव के चिन्तन में नियन्त्रित करना है, वह) सदैव पर-स्त्री (को भोग करने के) चिंतन में रत होने के कारण जल गया है, तो फिर सिद्धि कहां से होगी।

दूसरी बात यह है कि यदि मान्त्रिक, इस प्रकार का अभ्यासी एवं सात्त्विक हो भी तब भी मन्त्र-द्वारा कार्य-सिद्धि में अनुकूल भाग्य का होना अत्यावश्यक है, जिसको स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण गीता में मान रहे हैं –

अधिष्ठानं तथा कर्ता करणं च पृथग्विधम्।
विविधाश्च पृथक् चेष्टा दैवं चैवात्र पंचमम्॥

इसलिए रोगोपचार की यह प्रविधि जितनी कारगर है उतनी ही क्लिष्ट भी है।

ग्रह-मन्त्रों के उपयोग के दो पक्ष हैं। पहला तो इन मन्त्रों का प्रयोग रत्न-धारण के समय किया जाता है जिससे कि रत्न में तत्तद्ग्रहविशिष्ट-शक्ति का आधान हो सके और रत्न ग्रह-जन्य-रश्मियों का प्रवाह शरीर में कर सके। दूसरा ग्रहों की शान्ति एवं उनकी कृपा से अभीष्ट की सिद्धि हेतु मन्त्रों का प्रयोग किया जाता है। मन्त्र का प्रयोग करने वाले मान्त्रिक को अपने सामर्थ्य के विषय में स्पष्ट रूप से ज्ञान होना चाहिए। आदर्श स्थिति तो यह है कि मान्त्रिक को परम्परा से गुरु के द्वारा मान्त्रिक की पदवी दी गयी हो और वह गुरु से शिक्षित हो। ऐसा मान्त्रिक अपने साथ-साथ यजमान के श्रेय एवं प्रेय में नि:सन्देह सहायक होता है। एवं इसके विपरीत, मान्त्रिक एवं यजमान दोनों ही अशुभ फल के भागी बनते हैं।

मन्त्रों का जप अत्यन्त मन्द्र स्वर में या उपांशु (मन में, बिना थोड़ी भी ध्वनि किये हुए) होना चाहिए। मन्त्र का गान करना, उसे गेय बनाना एवं मोबाइल इत्यादि की ट्यून बनाना सरासर शास्त्र-विरुद्ध एवं अनुचित है। यह न केवल उस मन्त्र की शक्ति को कम करता है अपितु मन्त्र के अभीष्ट देव के कोप का भाजन भी बनाता है। यही कारण है की मन्त्र-द्रष्टा या उपदेशक आचार्यों द्वारा मन्त्र को छुपाकर रखने का उपदेश किया है।

सबसे महत्त्वपूर्ण और शक्तिसम्पन्न एकाक्षरी बीज-मन्त्र होते हैं। ये अभीष्ट की सिद्धि हेतु शक्ति एवं विशिष्ट-नाद-विन्यास से सम्पन्न होते हैं। ये बीजाक्षर, अपेक्षित परिवर्तन हेतु, निस्सीम शक्ति-सम्पन्न होते हैं जो स्थूल, सूक्ष्म एवं कारण शरीर को भेदने में समर्थ होते हैं। बीजाक्षरी-मन्त्र को आधार बनाकर किए गए प्राणायाम एवं ध्यान से ये अद्भुत शक्ति-पुंज बन जाते हैं।

ग्रहों के बीज-मन्त्र का प्रयोग दो प्रकार से होता है –

१. ग्रहों के नाम के आद्यक्षर के आधार पर बीज मन्त्र-
२. -'शक्ति'विशेष या -'सिद्धि'विशेष के आधार पर बीजमन्त्र-

इनमें पहला प्रयोग हेतु सरल है। जैसे सूर्य-ग्रह के बीज-मन्त्र हेतु आद्यक्षर 'सू' को अनुस्वार से युक्त करके प्रणव एवं 'नम:' पद के सहित उच्चारण करने से सूर्य का बीजाक्षर-मन्त्र हुआ – 'ॐ सूं सूर्याय नम:'। इसी प्रकार चन्द्रमा का बीजाक्षर मन्त्र होगा – 'ॐ चं चन्द्रमसे नम:'। इसी प्रकार अन्य ग्रहों का समझना चाहिए। इस प्रकार के मन्त्रों के पीछे यह रहस्य है कि ग्रहों की संज्ञा-विशेष अक्षर-समाम्नाय मात्र नहीं हैं अपितु ये उन ग्रहों के गुणों

एवं दैविक-शक्ति को अपने अंदर धारण किए रहते हैं, जिसका आन्तरिक-प्रसार, अनुनाद या ध्यान उस ग्रह-सम्बन्धी शक्ति का चेतन एवं अवचेतन मस्तिष्क में संचार करने में पूर्णतया सक्षम है।

जिस ग्रह की जो शक्ति है, वह शक्ति उस गृह के बीजाक्षर मन्त्र के जप से जपकर्ता प्राप्त करता है। जैसे सूर्य आत्मबल, तेजस्विता, प्रशासकीय गुण, राजत्वादि अधिकार, पद-प्रतिष्ठा, ज्योतिष विद्या, गणना, वैद्यक आदि का कारक है, अत: सूर्य के बीजाक्षर मन्त्र का जप इन गुणों का आधान करता है।

एक प्रश्न यह उठता है कि इन बीजाक्षर-मंत्रो को कब और कितना जपना चाहिए? तो इसका उत्तर यह है कि प्रतिदिन १ माला (१०८ बार) से १० माला तक जप किया जा सकता है। अथवा जिस ग्रह का मन्त्र है केवल उस वार को उक्त संख्या में मन्त्र-जप किया जा सकता है। किसी भी ग्रह का मन्त्र हो उसका इस विधि से सवा लाख (१,२५,०००) जप करने से मन्त्र सिद्ध हो जाता है।

दूसरे प्रकार के बीज-मन्त्र वस्तुत: शक्ति-विशेष से सम्बन्ध रखते हैं, जिनका प्रयोग प्राय: आगमों में अधिक होता है, यथा – ऐं, श्रीं, स्त्रीं, क्रीं, ह्रीं इत्यादि। ये सभी एकाक्षरी मन्त्र देवी (शक्ति) के विभिन्न स्वरूपों से सम्बद्ध हैं, इसके साथ ही इनका सम्बन्ध गुणवशात् ग्रह-विशेष से भी होता है। जैसे 'ऐं' सरस्वती देवी का बीजाक्षर है, जो वाणी, विद्या एवं ज्ञान की देवी है। अब चूंकि ग्रहों में बुध वाणी एवं विद्या का कारक-ग्रह है, गुरु ज्ञान का कारक-ग्रह है अत: उक्त गुण की प्राप्ति हेतु बुध या गुरु ग्रह के बीजाक्षर ('बुं' या 'गुं') के साथ-साथ 'ऐं' का प्रयोग निश्चित रूप से किया जा सकता है।

इसी प्रकार 'श्रीं' लक्ष्मी देवी का बीजाक्षर है, जो वैभव, संपन्नता की देवी है। सुख, संपन्नता एवं उत्पादकता के कारण इस शक्ति-बीजाक्षर का चन्द्रमा या शुक्र से साक्षात् सम्बन्ध स्थापित होता है। अत: उक्त की प्राप्ति हेतु चन्द्रमा या शुक्र के बीजाक्षर मन्त्र ('चं' या 'शुं')के साथ का 'श्रीं' प्रयोग निश्चय ही सफलता देने वाला है।

तब ऐसे में प्रश्न यह है कि क्या बुध या गुरु के सन्दर्भ में ही 'ऐं' का अथवा चंद्रमा या शुक्र के सम्बन्ध में ही 'श्रीं' का प्रयोग किया जा सकता है, अन्य ग्रहों के सन्दर्भ में नहीं? तो इसका उत्तर है – नहीं, शक्ति-बीजाक्षरों का विनियोग उद्देश्य पर आधारित है, अत: प्रयोजन के आधार पर अन्य ग्रहों के साथ भी प्रयोग किया जा सकता है। जैसे मान लीजिए, सूर्य कुण्डली में द्वितीय, चतुर्थ या एकादश भाव का स्वामी होकर निर्बल या पापत्व लिए हुए है तो सूर्य के बीजाक्षर के साथ 'श्रीं' का प्रयोग भी किया जा सकता है।

२.४ सूर्य से सम्बन्धित विविध मान्त्रिक-प्रयोग -

सूर्य इस जगत की आत्मा है। सभी ग्रह इसके प्रकाश से ही प्रकाशित हैं। सूर्य देव की उपासना हेतु अनेक मन्त्र एवं स्तोत्र विविध निगमों एवं आगमों में वर्णित हैं। उनकी शान्ति के लिए "ऊँ सूर्याय नमः" मंत्र का प्रतिदिन 108 बार जप करना चाहिए।

सूर्य मंत्र का जप कम से कम 28 बार अथवा 54 बार अथवा 108 बार किया जाना चाहिए। जप हेतु रुद्राक्ष अथवा तुलसी की माला या रक्त-चन्दन की माला का उपयोग करना चाहिए।

वैदिक-मन्त्र

ॐ आकृष्णेन रजसा वर्त्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यञ्च।
हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन्।

पौराणिक मंत्रः- निम्नलिखित मंत्र का जप यथाशक्ति संख्या में नित्य करना चाहिए -

जपाकुसुमसंकाशं काश्यपेयं महाद्युतिम्।
तमोऽरिं सर्वपापघ्नं प्रणतोऽस्मि दिवाकरम्॥

बीज मंत्रः-

ॐ सूं सूर्याय नमः।

तान्त्रिक मन्त्र

ॐ ह्रां ह्रीं ह्रौं सः सूर्याय नमः। (जप संख्या ७०००)

सूर्य गायत्री मन्त्र

ॐ भास्कराय विद्महे। महातेजाय धीमहि। तन्नो सूर्यः प्रचोदयात्।

जप हेतु अन्य मंत्रः-

१. ॐ घृणि आदित्याय नमः
२. ॐ सूर्याय नमः
३. ॐ घृणिः सूर्य आदित्य ॐ
४. ॐ श्रां श्रीं श्रौं सः सूर्याय नमः

सूर्य-यन्त्र की पूजा में भी सूर्य के उपरिलिखित मन्त्रों में सी किसी का भी प्रयोग किया जा सकता है।

सूर्य यन्त्र का निर्माण किसी भोजपत्र या पीले रंग के कागज पर अनार की कलम से रविवार के दिन, जिस दिन रवि पुष्य योग हो उस दिन, सूर्य की होरा में, अनार, कुमकुम, रोली और घी की स्याही से किया जाता है। यंत्र में निम्न अंकों की सहायता से ऐसे लिखा जाए कि सभी तग्फ से अंकों का योग १५ आवे। यंत्र लिखते समय सूर्य के बीज मंत्र का लगातार जप करते रहना चाहिए। यदि सामर्थ्य हो तो तांबे के पत्र पर (या स्वर्ण-पत्र पर) इसे उत्कीर्ण कराया जा सकता है। आलेखन या उत्कीर्णन के बाद इसका पूजन लाल या गुलाबी पुष्प, कमल के फूल या फल तथा लाल चन्दन से करना चाहिए। सूर्य देवता की पूजा में तगर (एक प्रकार का श्वेत पुष्प विशेष) के पुष्पों का प्रयोग सर्वथा वर्जित है। इसके बाद ७००० बार सूर्य मंत्र का जप करें। सूर्य यन्त्र का निर्माण करके पूजा स्थान या कार्यस्थल पर रखने से सुख एवं सौभाग्य की वृद्धि होती है। इस यंत्र को गले में भी धारण किया जा सकता है। इस सूर्य यंत्र को पूजा ग्रह, प्रतिष्ठान, तिजोरी जैसे किसी एकान्त स्थान में रख देना चाहिए।

६	१	८
७	५	३
२	९	४

२.५ चन्द्र से सम्बन्धित विविध मान्त्रिक-प्रयोग –

चन्द्रमा मन का कारक देवता है। यह सभी नक्षत्रों का अधिपति है। इसकी उपासना हेतु अनेक मन्त्र एवं स्तोत्र विविध निगमों एवं आगमों में वर्णित हैं। चन्द्रमा की प्रसन्नता के लिए ''ऊँ चन्द्रमसे नमः'' मंत्र का प्रतिदिन 108 बार जप करना चाहिए। इस मंत्र का जप कम से कम 28 बार अथवा 54 बार अथवा 108 बार किया जाना चाहिए। जप हेतु रुद्राक्ष अथवा श्वेत-चन्दन की माला का उपयोग करना चाहिए।

वैदिक मंत्र

ऊँ इमन्देवाऽअसपत्नं सुवध्वम्महते क्षत्राय महते
ज्यैष्ठ्याय महते जानराज्ययेन्द्रस्येन्द्रियाय।
इममुष्य पुत्रममुष्यै पुत्रमस्यै विश एष वोऽमी-
राजा सोमोऽस्माकं ब्राह्मणानां राजा।। (जप संख्या 11000)

उपरोक्त मंत्र का जप करने के पश्चात् 'ऊँ सोमाय नमः' मंत्र से अग्नि में घृत की 700 आहुतियाँ देकर हवन करें।

पौराणिक मंत्रः- निम्नलिखित मंत्र का जप यथाशक्ति संख्या में नित्य करना चाहिए -

दधिशंखतुषाराभं क्षीरोदार्णवसम्भवम्।
नमामि शशिनं सोमं शम्भोर्मुकुटभूषणम्।।

चन्द्रदेव की उपासना में बीज मंत्र का अत्यन्त महत्व है।

बीज मंत्र

ॐ चं चन्द्रमसे नमः।

ऊँ श्रीं श्रीं श्रौं सं: चन्द्रमसे नमः। (इस मंत्र की जप संख्या 11000 है)

तत्रोक्तमंत्र

ऊँ ऐं क्लीं सोमाय नमः।। इस मंत्र की जप संख्या ११,००० है।

चन्द्र गायत्री

ऊँ क्षीरपुत्राय विद्महे। अमृततत्त्वाय धीमहि। तन्नश्चन्द्रः प्रचोदयात्।

चन्द्र देव की उपासना श्वेत पुष्प, अक्षत, श्वेत मिष्ठान, जैसे खीर का नेवैद्य तथा श्वेत चन्दन से करनी चाहिये। पलाश की लकड़ी से हवन करना चाहिये। श्वेत वस्त्र धारण करके बीज मन्त्र की कम से कम 3 माला या 11 माले तक जप करें। सफेद फूलों से पूजन करके सफेद चन्द्रन का तिलक करें।

यदि चन्द्र बाधा प्रबल हो तो चन्द्रयन्त्र बनाना चाहिये। चांदी के रजतपत्र अथवा भोजपत्र पर या सफेद रंग के कागज पर अनार की कलम से सोमवार को चन्द्र-यन्त्र का निर्माण करना चाहिये। चन्द्र यंत्र में प्रत्येक पंक्ति में योग १८ आना चाहिए। चन्द्रयंत्र बनवाकर 7 दिनों तक इसकी षोडशोपचार पूजा करनी चाहिये एवम् आठवें दिन इसे मंदिर या कार्यस्थल पर रखें अथवा श्रेष्ठ ब्राह्मणों को दान कर देना चाहिये।

७	२	९
८	६	४
३	१०	५

बोध प्रश्न

प्र.१ निम्नलिखित वाक्यों में सही के आगे (√) का और गलत के आगे (×) का चिह्न लगाएं –

(च) पठनात् त्रायते इति मन्त्र: ()

(छ) 'ऐं 'सरस्वती देवी का बीजाक्षर है ()

(ज) करौ दग्धौ प्रतिग्रहात्()

(झ) '..जपाकुसुमसंकाशं'चन्द्रमा का पौराणिक() मन्त्र है-

(ञ) चन्द्र-यन्त्र में अंकों का योग १८ आना चाहिए ()

अभ्यास प्रश्न

प्र.१ चंद्रमा के विविध मान्त्रिक-प्रयोग लिखें।

२.६ मङ्गल से सम्बन्धित विविध मान्त्रिक-प्रयोग –

भौम, मङ्गल या अङ्गारक सत्त्व, साहस, पराक्रम का कारक देवता है। अत: ग्रहों में यह सेनापति है। यह पित्त-प्रकृतिक है और अग्नि-तत्व-प्रधान है। इसकी निर्बलता मनुष्य में पित्त-सम्बन्धी रोगो, रक्त-विकार, मांस-विकार (Muscle-related) एवं दुर्घटना आदि को जन्म देता है। इसकी उपासना हेतु अनेक मन्त्र एवं स्तोत्र विविध निगमों एवं आगमों में वर्णित हैं। मङ्गल की प्रसन्नता के लिए "ऊँ भौमाय नमः" मंत्र का प्रतिदिन 108 बार जप करना चाहिए। इस मंत्र का जप कम से कम 28 बार अथवा 54 बार अथवा 108 बार किया जाना चाहिए। जप हेतु रुद्राक्ष अथवा श्वेत-चन्दन की माला का उपयोग करना चाहिए।

वैदिक मन्त्र

ऊँ अग्निर्मूद्धादिव: ककुत्पतिः पृथिव्या अयम्। अपा रेता सि जिन्वति।

(इस मंत्र का 10,000 की संख्या में जप करना चाहिए)

पौराणिक मंत्रः-

धरणीगर्भसम्भूतं विद्युत्कान्तिसमप्रभम्।

कुमारं शक्तिहस्तं तं मंगलं प्रणमाम्यहम्॥

मंगल ग्रहजन्य रोगादि के शमन हेतु अधोलिखित मंत्रों में से किसी एक का प्रतिदिन 108 बार जप करना चाहिए।

बीज मन्त्र

ऊँ भौं भौमाय नमः।

तान्त्रिक मन्त्र

ॐ क्रां क्रीं क्रौं स: भौमाय नम:।

इसकी भी जप संख्या 10,000 है।

मङ्गल गायत्री मन्त्र

ॐ अङ्गारकाय विद्महे। शक्तिहस्ताय धीमहि। तन्नो भौम: प्रचोदयात्।

मंत्र जप के साथ ऋणमोचक मंगल स्तोत्र एवं रुद्राष्टाध्यायी का पारायण करना विशेष फल दायक होता है। ऋणग्रस्तता से छुटकारा पाने हेतु ऋणमोचक मंगल स्तोत्र का पाठ अति लाभप्रद है, इससे ऋण से मुक्ति मिलती है और धन की प्राप्ति होती है।

इसके अतिरक्त मङ्गल ग्रह के देवता स्कन्द अर्थात् कार्तिकेय एवं हनुमान् जी हैं। अत: इनमें से किसी का भी अधोलिखित मन्त्र-जप मङ्गल-कृत दोष का शमन करता है।

१. ऊँ स्कन्दाय नमः

२. ऊँ नमश्चण्डिकायै नमः,

३. ऊँ हं हनुमते नमः

इसके अतिरिक्त इन देवताओं के अन्य कई मन्त्र पुराणों में वर्णित हैं, जिनका जप मंगल ग्रह की शान्ति में सहायक है।

यदि जातक की कुण्डली से मंगल नीच या शत्रु राशि में हो अथवा लग्न से अप्टम या द्वादश में हो अथवा निर्बल एवं पापयुक्त हो, वक्री या अस्त हो तो उसकी दशा में अचानक धनहानि, दुर्घटना, आपदा तथा शारीरिक कष्ट संभव है। यदि मंगल द्वितीयेश या सप्तमेश हो तो अल्पायु की आशंका बढ़ जाती है। ऐसी स्थिति में मंगल की उपासना की जानी चाहिए। मंगल की उपासना मंगलवार को की जानी चाहिए। मंगलवार का व्रत शुक्ल पक्ष के प्रथम मंगलवार से प्रारम्भ करना चाहिए। कम से कम 21 व्रत और अधिकतम 45 व्रत रखने चाहिए। मंगलवार को व्रत एवं उपवास रखकर अग्रलिखित भौमयन्त्र अथवा पूर्व लिखित भौमयंत्र बनवाकर मंगल की सुवर्णमयी प्रतिमा की प्रतिष्ठा कर उपासना करें। मंगल की पूजा में मुख्य रूप से लाल रंग की वस्तुओं का प्रयोग होता है जैसे लाल आसन, लाल वस्त्र, लाल चन्दन, लाल पुष्प और लाल रंग के नेवैद्य का चढ़ावा चढ़ाया जाता है। दान में लाल मसूर, लाल पुष्प, लाल वस्त्र, मूँगा इत्यादि सामग्री ही दी जाती हैं। यदि जन्मकुण्डली में मंगल अधिक दूषित हो तो मूँगे का दान करना चाहिए एवं ताम्रपत्र अथवा लाल कागज पर भौम यन्त्र बनवाकर सात दिन तक उसकी विधिपूर्वक पूजा करके दान कर देना चाहिए।

८	३	१०
९	७	५
४	११	६

२.७ बुध से सम्बन्धित विविध मान्त्रिक-प्रयोग

बुध, सौम्य या वित् वाणी का कारक देवता है। यह ग्रहों में कुमार है। यह त्रिदोष-युक्त होता है और भू-तत्व-प्रधान है। इसकी निर्बलता मनुष्य में वात-पित्त-कफसम्बन्धी रोगो, मनो-विकार, वात-विकार तन्त्रिका-सम्बन्धी रोग आदि को जन्म देता है। इसकी उपासना हेतु अनेक मन्त्र एवं स्तोत्र विविध निगमों एवं आगमों में वर्णित हैं। मङ्गल की प्रसन्नता के लिए "ऊँ बुधाय नमः" मंत्र का प्रतिदिन 108 बार जप करना चाहिए। इस मंत्र का जप कम से कम 28 बार अथवा 54 बार अथवा 108 बार किया जाना चाहिए। जप हेतु रुद्राक्ष अथवा श्वेत-चन्दन की माला का उपयोग करना चाहिए।

वैदिक मंत्र:

ॐ उद्बुध्यस्वाग्ने प्रतिजागृहि त्वमिष्टापूर्ते स सृजेथामयं च। अस्मिन्त्सधस्थे अध्युत्तरस्मिन् विश्वे देवा यजमानश्च सीदत।।

पौराणिक मंत्र:-

प्रियंगुकलिकाश्यामं रूपेणाप्रतिमं बुधम्।

सौम्यं सौम्यम्यगुणोपेतं तं बुधं प्रणमाम्यहम्।। (९००० जप संख्या)

उपरोक्त मंत्र से यदि यज्ञ करें और यज्ञ में ९०० आहुतियाँ दे तो कष्टों से मुक्ति मिलती है।

बीज मंत्र:-

ॐ बुं बुधाय नम:।

इस बीज मंत्र की 3 या 17 माला का जप करना चाहिए।

तान्त्रिक मन्त्र

ॐ ब्रां ब्रीं ब्रौं सः बुधाय नमः।

ॐ ऐं स्त्रीं श्रीं बुधाय नम:।

इस मन्त्र की जप संख्या ९००० है।

बुध गायत्री मन्त्र

ॐ सौम्यरूपाय विद्महे। वाणेशाय धीमहि। तन्नो बुध: प्रचोदयात्।

ॐ चन्द्रपुत्राय विद्महे। रोहिणीप्रियाय धीमहि। तन्नो बुध: प्रचोदयात्।

बुध शान्ति हेतु **"ॐ नारायणाय नम:"** तथा "**ॐ नमो भगवते वासुदेवाय**" इन मन्त्रों का जप प्रतिदिन 108 बार करना चाहिए।

बुध यदि नीच या शत्रु राशि में होकर लग्न से षष्ठ, अष्टम या द्वादश में पापयुक्त हो तो बुधवार का व्रत करना चाहिए अथवा चतुर्थी का व्रत करना चाहिए। शुक्ल पक्ष के प्रथम बुधवार से या जिस दिन विशाखा नक्षत्र भी हो, उस बुधवार से व्रत का प्रारम्भ करें। व्रत रखने की न्यूनतम अवधि 21 बुधवार और अधिकतम 45 बुधवार है। व्रत के दिन स्नान के उपरांत हरे वस्त्र धारण करें एवं विष्णु सहस्त्रनाम का पाठ करें। व्रत वाले दिन भोजन में नमक रहित घी और चीनी से बने पदार्थ जैसे मूंग की दाल का हलुआ, मूंग की मीठी पंजीरी, मूंग के लडडू का स्वयं सेवन करें एवं दान करें। व्रत के अंतिम दिन हवन आदि करके किसी भिखारी को मूंग के बने पदार्थ खिलाकर, हरा वस्त्र, मूंग और फल दान में दें। गाय को हरी घास डाले। बुध ग्रह की शान्ति के लिए बुधवार के साथ-साथ यदि अमावस्या का भी व्रत करें तो विशेष लाभ होता है। प्रातः सायं गणपति के दर्शन करें। बुध ग्रह जी के निमित्त पन्ना की माला से जाप करने पर विशिष्ट लाभ मिलता है। उपवास करने के पश्चात दान के रूप में साबुत हरी मूंग, हरे वस्त्र, फल-फूल, पीतल के बर्तन इत्यादि का दान करना चाहिए। विष्णु जी, गणेश जी एवं माँ दुर्गा जी की उपासना, बुध ग्रह दोष निवारण एवं शुभफल प्राप्त करने के लिए विशेष वन्दनीय कही गयी है। जब बुध अनिष्टकारी हो तो दुर्गा जी का पूजन करने से, दुर्गा सप्तशती का पाठ करने से तथा दुर्गा जी पर अंकुरित हरा मूंग चढ़ाने से कष्ट दूर होते हैं, विष्णु की प्रतिमा पर हरा केला तथा हरा फल चढ़ाने से भी कष्टों का शमन होता है।

बुध यन्त्र -

निम्न बुध यन्त्र का निर्माण किसी भोज पत्र पर या हरे रंग के कागज पर अनार की कलम से बुधवार के दिन करना चाहिये। अंकन हेतु अष्ट गन्ध अथवा सफेद चन्दन अथवा तुलसी-पत्र के रस का प्रयोग करना चाहए। तालिका में यह ध्यान रहे कि हर तरफ से अंकों का कुल योग २४

आये। बुध यंत्र का निर्माण करने के पश्चात् लगातार 6 दिनों तक उस मंत्र का षोडशोपचार पूजन करें।

९	४	११
१०	८	६
५	१२	७

बोध प्रश्न

प्र.२ निम्नलिखित वाक्यों में सही के आगे (√) का और गलत के आगे (×) का चिह्न लगाएं –

(ट) मङ्गल के मन्त्र की जप संख्या १०,००० है()

(ठ) मङ्गल वाणी का कारक ग्रह है()

(ड) मङ्गल यन्त्र में अङ्को का योग २१ है ()

(ढ) प्रियङ्गुकालिकाश्याम बुध का मन्त्र नहीं है ()

(ण) बुध के मन्त्र की जप संख्या ९,००० है ()

अभ्यास प्रश्न

प्र.२ बुध ग्रह के विविध मन्त्रों का उल्लेख करें।

२.८ बृहस्पति से सम्बन्धित विविध मान्त्रिक प्रयोग -

बृहस्पति ज्ञान का कारक होने के कारण देवताओं में भी गुरु के रूप में पूज्य देवता हैं। यह ग्रहों में मन्त्री है। यह वातदोष एवं कफदोष से युक्त होता है और जल-तत्त्व एवं वायु-तत्व-प्रधान है। इसकी निर्बलता मनुष्य में प्राय: वात अथवा कफसम्बन्धी रोग उत्पन्न करती है। अंतड़ियों के विकार, ज्वर, कफ, शोक, मूर्च्छा, कर्ण रोग, ब्राह्मण के शाप से उत्पन्न रोग, क्षय रोग, किन्नर, नाग आदि देवों द्वारा उत्पन्न हुए रोगों पर बृहस्पति का अधिकार है। उपर्युक्त के अतिरिक्त अन्य मतानुसार जलोदर, यकृत के रोग, फेफडों के रोग मस्तिष्क की रक्तवाहिनियों के रोग, पेट दर्द, रीढ़ की हड्डी में दर्द इत्यादि रोग गुरु के कारण होते हैं। इसकी उपासना हेतु अनेक मन्त्र एवं स्तोत्र विविध निगमों एवं आगमों में वर्णित हैं। गुरु की प्रसन्नता के लिए "ॐ बृहस्पतये नमः" अथवा 'ॐ गुरवे नम:' मंत्र का प्रतिदिन 108 बार जप करना चाहिए। इस मंत्र का जप कम से कम 28 बार अथवा 54 बार अथवा 108 बार किया जाना चाहिए। जप हेतु रुद्राक्ष अथवा श्वेत-चन्दन की माला का उपयोग करना चाहिए।

वैदिक मंत्र:

ॐ बृहस्पते अति यदर्यो अर्हाद् द्युमद्विभाति क्रतुमज्जनेषु। यद्दीदयच्छवस ऋतप्रजात
तदस्मासु द्रविणं धेहि चित्रम्।। (१९,००० जप)

पौराणिक मंत्र:-

देवानां च ऋषीणां च गुरुं कांच्चनसंनिभम्।
बुद्धिभूतं त्रिलोकेशं तं नमामि बृहस्पतिम्।।

बीज मन्त्र

ॐ बृं बृहस्पतये नम: ।

ॐ गुं गुरवे नम: ।

तान्त्रिक-मन्त्र

ॐ ग्रां ग्री ग्रौं सः गुरवे नमः । (१९,००० जप संख्या)

बृहस्पति-गायत्री मन्त्र

ॐ अङ्गिरसाय विद्महे । दण्डायुधाय धीमहि । तन्नो जीव: प्रचोदयात् ।

इस मन्त्र की एक माला प्रतिदिन जप करने से बृहस्पति ग्रह-कृत कष्टों का शमन होता है ।

यदि कुण्डली में गुरु अष्टमस्थ हो तो उसकी शान्ति हेतु बृहस्पति-व्रत करना तथा विष्णु और शिव की प्रतिमा पर हल्दी चढ़ाना आवश्यक होता है। वृहस्पति का व्रत कम से कम 16 बार और अधिक से अधिक 3 साल करना चाहिए। व्रत के दिन पीले रंग के वस्त्र धारण कर बृहस्पति के मंत्र की 3 या 11 माला जपे। विष्णु की स्तुति गुरु दोष के निवारण एवं शुभता के लिए विशेष वन्दनीय कही गयी है।

निम्नलिखित मंत्र का जप कम से कम 108 बार करना चाहिए।

१. ॐ नारायणाय नमः।

२. ॐ नमः शिवाय

बृहस्पति यंत्र

१०	५	१२
११	९	७
६	१३	८

इस प्रकार गुरु-यन्त्र का निर्माण किसी भोज पत्र पर या पीले रंग के कागज पर अनार की कलम से गुरुवार के दिन करना चाहिये। अंकन हेतु अष्ट गन्ध अथवा पीले चन्दन का प्रयोग करना चाहिए । तालिका में यह ध्यान रहे कि हर तरफ से अंकों का कुल योग २७ आये। गुरु यंत्र का निर्माण करने के पश्चात् लगातार ७ दिनों तक उस मंत्र का षोडशोपचार पूजन करें । उसके बाद इसे या तो किसी वेदपाठी ब्राह्मण को दान दे दें अथवा अपने देवालय या पूजास्थल में रखकर उसका नित्य-पूजन करें ।

२.९ शुक्र से सम्बन्धित विविध मान्त्रिक प्रयोग -

शुक्र काम, वासना, भौतिकता से परिपूर्ण होने के कारण असुरों के मन्त्री के रूप में पूज्य हैं। इस भौतिक जगत में मानव को भौतिक संसाधनों की भी आवश्यकता है अत: बृहस्पति के समान यह भी ग्रहों में मन्त्री हैं। यह वातदोष एवं कफदोष से युक्त होता है और जल-तत्त्व एवं वायु-तत्व-प्रधान है। इसकी निर्बलता मनुष्य में प्राय: वात अथवा कफसम्बन्धी रोग उत्पन्न करती है। नेत्रसम्बन्धी विकार, प्रजननसम्बन्धी रोग, प्राय: सभी प्रकार के प्रमेह आदि को जन्म देता है। इसकी उपासना हेतु अनेक मन्त्र एवं स्तोत्र विविध निगमों एवं आगमों में वर्णित हैं। शुक्र की

प्रसन्नता के लिए ''ऊँ शुक्राय नमः'' अथवा 'ॐ भार्गवाय नमः' मंत्र का प्रतिदिन 108 बार जप करना चाहिए। इस मंत्र का जप कम से कम 28 बार अथवा 54 बार अथवा 108 बार किया जाना चाहिए। जप हेतु रुद्राक्ष की माला का उपयोग करना चाहिए।

वैदिक मंत्र -

ॐ अन्नात्परिस्रुतो रसं ब्रह्मणा व्यपिबत्क्षत्रं पयः सोमं प्रजापतिः। ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपान शुक्रमन्धस इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयो अमृतं मधु॥

पौराणिक मन्त्र-

हिमकुन्दमृणालाभं दैत्यानां परमं गुरुम्।
सर्वशास्त्रप्रवक्तारम् भार्गवं प्रणमाम्यहम्॥

बीज मंत्र-

ॐ शुं शुक्राय नमः।

तान्त्रिक मन्त्र –

ॐ द्रां द्रीं द्रौं सः शुक्राय नमः। (जप संख्या १६०००)

शुक्र-गायत्री मन्त्र -

ॐ भृगुजाय विद्महे। दिव्यदेहाय धीमहि। तन्नो शुक्रः प्रचोदयात्।

शुक्र ग्रह की शान्ति एवं प्रसन्नता हेतु इस मन्त्र का १०८ जप प्रतिदिन करें।

शुक्र ग्रह के अन्य मन्त्र -

शुक्र ग्रह की शान्ति हेतु

१. ''ॐ सिद्धिगणेशाय नमः,
२. ॐ नमश्चण्डिकायै,
३. ॐ लक्ष्म्यै नमः मन्त्र का 108 जप प्रतिदिन करना चाहिए।

शुक्र ग्रह यदि कमजोर, अस्त, पापाक्रान्त हो तो उसकी उपासना के साथ-साथ लक्ष्मी दुर्गा तथा शिव-पार्वती की भी उपासना करनी चाहिए। शुक्ल पक्ष के प्रथम शुक्रवार से शुक्र की उपासना हेतु व्रत या अनुष्ठान प्रारम्भ करना विशेष शुभप्रद है। व्रत रखने की अधिकतम अवधि 31 शुक्रवार तथा न्यूनतम अवधि 21 शुक्रवार है। उपवास वाले दिन प्रातःकाल स्नान आदि करके शुक्र के मंत्र की 3 या 31 माला का जप करें। भोजन में दूध और चावल से बने पदार्थ विशेष रूप से लेवे। अंतिम शुक्रवार को हवन करके पूर्णाहुति के साथ खीर या दुग्ध निर्मित खाद्य गरीबों को खिलाना चाहिए तथा इसी के साथ गाय को भी खीर आदि खिलानी चाहिए। शुक्र का पूजन शुक्रवार के दिन श्वेत वस्त्र, चावल, श्वेत पुष्प, श्वेत चन्दन, मिठाई, दही, चीनी, दूध इत्यादि से करना चाहिए। हवन गूलर की लकड़ी से करना चाहिए। शुक्र के मंत्र का सोलह हजार बार जप करना चाहिये तथा दान में चावल श्वेत वस्त्र मिष्ठान, पुष्प, शंख, चंदन, चाँदी दही, चीनी, सफेद गाय इत्यादि को देना चाहिए।

शुक्र यन्त्र

११	६	१३
१२	१०	८
७	१४	९

शुक्र यन्त्र का निर्माण चाँदी का सफेद कागज अथवा भोज पत्र पर किसी निर्दोष शुक्रवार अथवा पुष्य योग वाले शुक्रवार को अनार की कलम से करना चाहिए। शुक्र यन्त्र में किसी भी पङ्क्ति में संख्या का योग 30 अवश्य आना चाहिए।

यदि जन्मकुण्डली में शुक्र लग्नेश पंचमेश, नवमेश, दशमेश अथवा जन्म राशीश हो, अथवा वृष या तुला राशि हो, शुक्र लग्न, पंचम, नवम, दशम या द्वादश भाव में हो तो लक्ष्मी की पूजा से विशेष लाभ मिलता है। यदि जन्म कुण्डली में समराशिस्थ शुक्र अस्त अथवा पापाक्रान्त हो अथवा षष्ठेश, अष्टमेश या द्वादशेश हो तो जातक को भगवती के विविध स्वरूपों यथा अन्नपूर्णा, पार्वती, वैष्णवी, दुर्गा आदि की पूजा करनी चाहिए। यदि शुक्र ग्रह विषमराशिस्थ हो तो शिव की पूजा करनी चाहिए।

बोध प्रश्न

प्र.३ रिक्त स्थान की पूर्ति करें –

(च) बृहस्पति ग्रहों में _____ है।

(छ) बृहस्पति के मन्त्र की जप संख्या _____ है।

(ज) देवानां च ऋषीणां च _____ काञ्चनसन्निभम्।

(झ) ॐ भृगुजाय विद्महे _____ धीमहि।

(ञ) शुक्र के मन्त्र की जप संख्या है। _____

अभ्यास प्रश्न

प्र.३ शुक्र के विविध मन्त्रों का उल्लेख करें।

२.१० शनि से सम्बन्धित विविध मान्त्रिक प्रयोग -

शनि दु:ख का कारक है। यह सेवा का भाव रखने के कारण ग्रहों में सेवक है। इसकी शनै:-शनै: गति इसके वृद्धत्व की ओर संकेत करती है। इसी कारण इसे 'मंद' भी कहा जाता है। इसकी दृष्टि या युति कारों में विलम्ब करती है और दीर्घकालिक रोगों को जन्म देती है। यह वातदोष से युक्त वायु-तत्व-प्रधान ग्रह है। इसकी निर्बलता मनुष्य में प्राय: वातसम्बन्धी रोग उत्पन्न करती है। स्नायुसम्बन्धी विकार, एवं प्राय: सभी प्रकार के वातरोग को शनि जन्म देता है। इसकी उपासना हेतु अनेक मन्त्र एवं स्तोत्र विविध निगमों एवं आगमों में वर्णित हैं। शनि की प्रसन्नता के लिए "ऊँ शनैश्चराय नम:"का प्रतिदिन 108 बार जप करना चाहिए। इस मंत्र का जप कम से कम 28 बार अथवा 54 बार अथवा 108 बार किया जाना चाहिए। जप हेतु रुद्राक्ष की माला का उपयोग करना चाहिए। पश्चिम की दिशा की ओर मुख करके मंत्रों का जाप करना चाहिए। मंत्रानुष्ठान शनिवार को ही पूर्ण होना चाहिए। तत्पश्चात् काली वस्तुओं का दान करना चाहिए और हवन करना चाहिए। हवन में शमी की समिधा एवं देशी घी की आहुति से मंत्रों का जाप करना चाहिए। मन्त्र-जप हेतु शमी अथवा रुद्राक्ष की माला उत्तम होती है।

वैदिक-मन्त्र –

ॐ शन्नो देविरभीष्टय आपो भवन्तु पीतये शन्योरभिस्रवन्तु न:।

शनि ग्रह-जन्य दोष के शमन हेतु इस वैदिक मन्त्र का २३००० जप करना चाहिए।

पौराणिक मंत्र -

नीलाञ्जनसमाभासं रविपुत्रं यमाग्रजम् ।
छायामार्तण्डसम्भूतं तं नमामि शनैश्चरम् ।।

बीज मंत्र –

ॐ शं शनैश्चराय नमः ।

तान्त्रिक मन्त्र -

ॐ प्रां प्रीं प्रौं सः शनैश्चराय नमः

(जप संख्या 23000)

शनिदेव की उपासना में काले रंग की वस्तुयें प्रयुक्त होती हैं जैसे:- लोहा, उड़द, कड़वा तेल, काला वस्त्र, साबुत जामुन, काले कंबल का आसन, काले चने, काली गाय एवं नीलम । शनिदेव की शान्ति के लिए यदि व्रत रखना हो तो शुक्ल पक्ष के शनिवार से विशेष रूप से श्रावण मास के शनिवार से प्रारम्भ करें। कम से कम 19 व्रत और अधिकतम 51 व्रत करने का विधान है। व्रत के दिन स्नान करने के पश्चात काले वस्त्र धारण करके शनि मंत्र की 3 या 19 माला जपे। यदि संभव हो तो लोहे की बनी प्रतिमा को पंचामृत से स्नान कराके उसका पूजन करें। शनिवार को उपवास रखकर दोपहर 12:00 बजे से 03:00 बजे के मध्य नमक एवं मसाले रहित उड़द की दाल की पंजीरी और खिचड़ी का भोजन करना चाहिए। सूर्यास्त के पश्चात अन्न-जल ग्रहण करना वर्जित है । अंतिम व्रत को हवन पूर्णाहुति के पश्चात शनि स्तोत्र का पाठ करे शनि-सम्बन्धी वस्तुएं किसी वृद्ध ब्राह्मण को दान में दें।

शनि यन्त्र

१२	७	१४
१३	११	९
८	१५	१०

२.११ राहु से सम्बन्धित विविध मान्त्रिक प्रयोग -

राहु सिंहिका का पुत्र है और मात्र सिर के रूप में (अर्धकाय) स्थित है। यह अन्त्यज का कारक ग्रह है । यद्यपि यह छाया-ग्रह है अत: जिस राशि में स्थित होता है उस राशि के स्वामी का गुण-धर्म ले लेता है तथापि इसकी स्वाभाविक प्रकृति शनि के समान है । इसकी दृष्टि या युति कार्य में बाधा उत्पन्न करती है और दीर्घकालिक रोगों को जन्म देती है । यह वातदोष से युक्त वायु-तत्व-प्रधान ग्रह है। इसकी निर्बलता मनुष्य में अनेक प्रकार के गुल्म-सम्बन्धी रोगों को जन्म देती है । यह प्राय: वातसम्बन्धी एवं कफ-जन्य रोग उत्पन्न करता है। हृदयसम्बन्धी विकार, रक्त-सम्बन्धी विकार एवं मनोविकारों में इसकी भूमिका प्रमुख तौर पर स्पष्ट दिखाई देती है। इसकी उपासना हेतु अनेक मन्त्र एवं स्तोत्र विविध निगमों एवं आगमों में वर्णित हैं। राहु की प्रसन्नता के लिए "ऊँ राहवे नमः" का प्रतिदिन 108 बार जप करना चाहिए। इस मंत्र का जप कम से कम 28 बार अथवा 54 बार अथवा 108 बार किया जाना चाहिए। जप हेतु रुद्राक्ष की माला का उपयोग करना चाहिए।

वैदिक-मन्त्र –

ॐ कया नश्चित्र आभुवदूती सदा वृध: सखा कया शश्चिष्ठया वृता।

पौराणिक मंत्र:-

अर्धकायं महावीर्यं चन्द्रादित्यविमर्दनम्।
सिंहिकागर्भसम्भूतं तं राहुं प्रणमाम्यहम्॥

राहुग्रह की शान्ति के लिए उपरिलिखित मन्त्रों का १८००० जप करना चाहिए।

बीजमंत्र –

ॐ रां राहवे नमः।

तान्त्रिक मन्त्र

ॐ भ्रां भ्रीं भ्रौं सः राहवे नमः।

चण्डी की उपासना से भी राहु की शान्ति होती है। यदि राहु अशुभप्रद हो तो उसका रत्न धारण करने की बजाए उसकी शान्ति समुचित देवोपासना द्वारा करायी जानी चाहिए।दुर्गा जी के अतिरिक्त हनुमान जी तथा भैरव जी की उपासना से भी राहुकृत कष्ट से शान्ति मिलती है। अत: 'ॐ नमश्चंडिकायै' तथा 'ॐ हनुमते नमः' मंत्र का जप प्रतिदिन 108 बार करना चाहिए। राहु की शान्ति के लिए शनिवार के दिन व्रत रखने का भी विधान है। राहु ग्रह की शान्ति हेतु नारियल, लोहा, नीला कपडा, लाल पुष्प, भूरा कम्बल, घोडा, तिल, कोयला और सरसों का तेल दान में देना चाहिए। पीपल के पेड़ के नीचे सरसों के तेल का दीपक जलाकार राहु के तांत्रिक मंत्र का 3 या 18 माला का जप करना चाहिए। रात्रि को दीपक जलाकर पीपल की जड़ में रखना चाहिए। यदि जन्म पत्रिका में द्वितीयाधिपति अथवा सप्तमाधिपति के साथ राहु संयुक्त हो जाये तो दैहिक पीड़ा प्राप्त होती है ऐसी स्थिति में महामृत्युंजय जाप कराना चाहिए तथा बकरी दान करनी चाहिए। यदि सूर्य में राहु की अंतर्दशा हो और राहु लग्न से या दशापति से अष्टम या द्वादश भाव में हो तो दुर्गा के अलावा हनुमान के पूजन से भी लाभ होता है।

राहु यन्त्र

राहु यन्त्र का निर्माण भोज पत्र अथवा ताम्र पत्र पर करना चाहिए। 108 आहुतियाँ देकर हवन करना चाहिए। यदि यन्त्र का निर्माण भोज पत्र पर किया गया है, तो इस यन्त्र को नीले कपड़े या राँगे अथवा ताँबे के ताबीज में रखकर गले या भुजा पर पहना जा सकता है।

१३	८	१५
१४	१२	१०
९	१६	११

२.१२ केतु से सम्बन्धित विविध मान्त्रिक प्रयोग -

केतु धड़ के रूप में (अर्धकाय) स्थित है। यह म्लेच्छों का कारक ग्रह है। यद्यपि यह छाया-ग्रह है अत: जिस राशि में स्थित होता है उस राशि के स्वामी का गुण-धर्म ले लेता है तथापि इसकी स्वाभाविक प्रकृति मंगल के समान है। इसकी दृष्टि या युति कार्य में बाधा उत्पन्न करती है और दीर्घकालिक रोगों को जन्म देती है। यह मुख्य रूप से पित्तदोष से युक्त एवं गौण रूप में वातदोषज भी है। यह अग्नि-तत्व-प्रधान ग्रह है। इसकी निर्बलता मनुष्य में अनेक प्रकार के रक्त-सम्बन्धी रोगों को जन्म देती है। यह प्राय: पित्तसम्बन्धी एवं वात-जन्य रोग उत्पन्न करता है।

उदरसम्बन्धी विकार, मनोविकार एवं स्नायुविकारों में इसकी भूमिका प्रमुख तौर पर स्पष्ट दिखाई देती है। इसकी उपासना हेतु अनेक मन्त्र एवं स्तोत्र विविध निगमों एवं आगमों में वर्णित हैं। केतु की प्रसन्नता के लिए "ऊँ केतवे नमः" का प्रतिदिन 108 बार जप करना चाहिए। इस मंत्र का जप कम से कम 28 बार अथवा 54 बार अथवा 108 बार किया जाना चाहिए। जप हेतु रुद्राक्ष की माला का उपयोग करना चाहिए।

वैदिक-मन्त्र –

ॐ केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे

पौराणिक मन्त्र –

पलाशपुष्पसंकाशं तारकाग्रहमस्तकम्।
रौद्रं रौद्रात्मकं घोरं तं केतुं प्रणमाम्यहम्॥

बीज-मन्त्र –

"ॐ कें केतवे नमः"।

तान्त्रिक मन्त्र -

ॐ स्रां स्रीं स्रौं, स: केतवे नमः।

केतु के मन्त्रों की जप संख्या १८,००० है जो ४० दिन में पूरा करने का विधान है।

केतु की शान्ति हेतु ॐ गणपतये नमः ॐ गणेशाय नमः आदि मंत्र का जाप प्रतिदिन 108 बार करना चाहिए। मंत्रों का जाप रुद्राक्ष अथवा स्फटिक की माला से करना चाहिये। केतु ग्रह के दोष निवारण एवं शुभता प्राप्त करने के लिए गणेश की पूजा तिल के लड्डुओं से की जानी चाहिए। केतु की शान्ति हेतु दान सामग्री के रूप में बकरी, कस्तूरी, कम्बल, लोहा, शस्त्र, तिल, नारियल इत्यादि का दान देना चाहिए। लहसुनिया का भी दान करने से केतु कृत अरिष्ट-दोष शान्त होकर मनोभिलाषा पूर्ण होती है।

केतु यन्त्र

१४	९	१६
१५	१३	११
१०	१७	१२

जिस प्रकार से राहु यन्त्र का निर्माण किया जाता है ठीक उसी प्रकार से केतु-यन्त्र की भी पूजा की जाती है। केतु यन्त्र में उपर्युक्त अंकों का प्रयोग किया जाता है।

बोध प्रश्न

प्र.४ निम्नलिखित वाक्यों में सही के आगे (√) का और गलत के आगे (×) का चिह्न लगाएं –

(क) शनि का अपर नाम () है। 'मन्द'

(ख) शनि पित्त दोष का कारक है। ()

(ग) '..ॐ कया नश्चित्र आभुवदूती' यह राहु का मन्त्र है। ()

(घ) केतु की शान्ति के लिए शिव के मन्त्र का जप करना चाहिए। ()

(ङ) राहु के मन्त्र की जप संख्या १८,००० है। ()

अभ्यास प्रश्न

प्र.४ राहु के विविध मन्त्रों को लिखें।

२.१३ सारांश –

मनन करने से जो रक्षा करे वह 'मन्त्र' कहलाता है। सभी शारीरिक एवं बौद्धिक विकास एवं ह्रास के मूल में यह 'मन'रूपी अन्त:करण ही है। मन्त्र न केवल स्वनिहित गूढ़ तत्त्व का प्रकाशन करता है अपितु वह बुद्धि और चित्त का विलास भी करता है। चित्त का यह विलास, एक सतत प्रकाश या आनन्द, मन्त्र-जप के अतिरिक्त अन्य मनोवैज्ञानिक-प्रविधियों से कथमपि संभव नहीं है। मन्त्र-जप अनेकानेक जन्मों के पाप-कर्मों की क्षीणता में सर्वाधिक महत्त्वपूर्व साधन है। मन्त्र वैदिक, पौराणिक, बीज इत्यादि भेद से विविध कोटि के होते हैं। सूर्य मंत्र का ७०००, चंद्रमा के मन्त्र का ११,०००, मंगल के मन्त्र का १०,००० जप, बुध के मन्त्र का ९,००० जप, गुरु के मन्त्र का १९,००० जप, शुक्र के मन्त्र का १६,००० जप, शनि के मन्त्र का २३,००० जप एवं रहू व केतु के मन्त्र का १८००० जप करना चाहिए। इसके अतिरिक्त सूर्य आदि ग्रहों के अधिदेवाताओं के मन्त्रों का जप भी ग्रहों की शान्ति एवं प्रसन्नता हेतु उपयोगी होता है।

२.१४ शब्दावली –

प्रमाथि = इन्द्रियों को क्षुब्ध कर देने वाला
प्रतिग्रहात् = दान लेने के कारण
तुषाराभं = ओस की बूँद के समान वर्ण है जिसका
यमाग्रजम् = यमराज के बड़े भाई

२.१५ बोध प्रश्नों के उत्तर -

प्र.१ (क) (×) (ख) (√) (ग) (√) (घ) (×) (ङ) (×)
प्र.२ (क) (√) (ख) (×) (ग) (√) (घ) (×) (ङ) (√)
प्र.३ (क) मन्त्री
(ख) १९०००
(ग) गुरुं
(घ) दिव्यदेहाय
(ङ) १६०००
प्र.४ (क) (√) (ख) (×) (ग) (√) (घ) (×) (ङ) (√)

२.१६ सन्दर्भ ग्रन्थ सूची –

१. श्रीमद्भगवद्गीता, गीता प्रेस, गोरखपुर।
२. जातकपारिजात:, टीका- कपिलेश्वर शास्त्री, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी।
३. उत्तरकालामृत, रंजन पब्लिकेशन, दिल्ली

२.१७ सहायक ग्रन्थ सूची –

१. Ayurvedic Astrology, David frawley, Moti lala Banarasi das publication, new delhi.

२. अध्यात्म ज्योतिष एवं कर्मकाण्ड उपचारीय ज्योतिष, डा. विभा अग्निहोत्री, वेदान्त पब्लिकेशन, लखनऊ

२.१८ निबन्धात्मक प्रश्न –

१. सूर्य के मन्त्रों पर प्रकाश डालिए।

२. राहू के विविध मन्त्रों के अनुष्ठान-विधि का उल्लेख करें।

इकाई -०७ दान के माध्यम से रोग उपचार

इकाई की रूपरेखा

७.१ प्रस्तावना
७.२ उद्देश्य
७.३ दान की परिभाषा एवं महत्त्व
७.४ दान की विधि
७.५ दान का स्थल
७.६ दान का काल
७.७ दान के प्रकार
    ७.७.१ सात्त्विक दान
    ७.७.२ राजसिक दान
    ७.७.३ तामसिक दान
७.८ कूर्मपुराण का अनुसार दान की कोटियां
    ७.८.१ नित्य दान
    ७.८.२ नैमित्तिक दान
    ७.८.३ काम्य दान
    ७.८.४ विमल दान
७.९ विविध रोगों की शान्ति के लिए दान
    ७.९.१ पांडु रोग की शान्ति के लिए दान
    ७.९.२ कुष्ठ रोग की शान्ति के लिए दान
    ७.९.३ आयु एवं बल की प्राप्ति के लिए दान
    ७.९.४ प्रमेह रोग की शान्ति के लिए दान
    ७.९.५ मानसिक रोग की शान्ति के लिए दान
    ७.९.६ गुल्म (व्रण या घाव), अश्मरी रोग की शान्ति के लिए दान
    ७.९.७ रक्तपित्त और संग्रहणी की शान्ति के लिए दान
७.१० ग्रहों की शान्ति के लिए दान
    ७.१०.१ सूर्य ग्रह की शांति हेतु स्नान एवं दान
    ७.१०.२ चन्द्र ग्रह की शांति हेतु स्नान एवं दान
    ७.१०.३ मङ्गल की शांति हेतु स्नान एवं दान
    ७.१०.४ बुध ग्रह की शांति हेतु स्नान एवं दान

७.१०.५ गुरु ग्रह की शांति हेतु स्नान एवं दान
७.१०.६ शुक्र ग्रह की शांति हेतु स्नान एवं दान
७.१०.७ शनि ग्रह की शांति हेतु स्नान एवं दान
७.१०.८ राहु ग्रह की शांति हेतु स्नान एवं दान
७.१०.९ केतु ग्रह की शांति हेतु स्नान एवं दान
७.११ सारांश
७.१२ शब्दावली
७.१३ बोध प्रश्नों के उत्तर
७.१४ सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
७.१५ सहायक ग्रन्थ सूची
७.१६ निबन्धात्मक प्रश्न

७.१ प्रस्तावना –

प्रिय अध्येताओं! चिकित्सा-ज्योतिष डिप्लोमा पाठ्यक्रम के चतुर्थ पत्र के प्रथम खण्ड की सप्तम इकाई में आपका स्वागत है। इस खण्ड में आप भारतीय-चिकित्सा-शास्त्र एवं ज्योतिष-शास्त्र के समन्वित मूल सिद्धान्तों में से एक त्रिदोषाधिकार का अध्ययन कर रहे हैं।

जैसा कि मैने पूर्व में भी इस बात को कहा कि आयुर्वेद के निदान व उपचार की पद्धति आधुनिक-चिकित्सा-शास्त्र से कुछ भिन्नता अवश्य रखती है। इसके साथ ही आयुर्वेद प्रायोगिक-विज्ञान की वह परम्परा है जिसमें शरीर को स्वस्थ और निरोग रखने के उपायों का भी अध्ययन किया जाता है, जो कि इसे आधुनिक-चिकित्सा-पद्धति (मेडिकल साइंस) से अलग करती है। आधुनिक-पद्धति, रोगी के द्वारा बताए गए लक्षणों के आधार पर एवं नैदानिक-उपकरणों के आधार पर ही रोग की प्रकृति, गम्भीरता और उपचार-प्रक्रिया का निर्धारण करती है, जो कि अपने आप में सम्पूर्ण नहीं है। फलत: कई मामलों में, रोग की सर्वथा निवृत्ति नहीं हो पाती है। प्राच्य-चिकित्सा-पद्धति रोग के निदान और उपचार हेतु ज्योतिष-शास्त्र के साथ ही धर्मशास्त्र का भी आश्रय लेती है, जो इस पद्धति को अधिक प्रभावी एवं पूर्ण बनाता है। उपचार के अनेकों पक्षों पर आपने गत इकाइयों में अध्ययन किया है, जिसमें मन्त्र-चिकित्सा, रत्न-चिकित्सा एवं अन्य आनुष्ठानिक उपचार सम्मिलित थे। इसी क्रम में आप इस इकाई में रोगों के उपचार में दान की भूमिका का अध्ययन करेंगे। दान किसे कहते हैं, इसका शास्त्रीय स्वरूप क्या है? यह कितने प्रकार का होता है और इसकी विधि क्या है? इन सभी प्रश्नों का विस्तार पूर्वक समाधान इस इकाई के अध्ययन से आपको मिलेगा।

७.२ उद्देश्य –

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- धर्मशास्त्रीयसिद्धान्तों- के आधार पर दान के स्वरूप को बता सकने में समर्थ हो सकेंगे।
- विविध सन्दर्भों के माध्यम से दान के भेद को बता सकने में समर्थ हो सकेंगे।
- रोगों के निदान में दान की भूमिका को प्रकट करने में समर्थ हो सकेंगे।
- सूर्यादि ग्रहों के दानसम्बन्धी पदार्थों का निरूपण क-र सकने में कुशल हो सकेंगे।

७.३ दान की परिभाषा एवं महत्त्व -

ज्योतिषीय उपचारों में कई प्रकार के उपायों के द्वारा ग्रहों की शान्ति संभव है। इन्हीं उपायों में से अन्यतम उपाय **'दान'** है जिसका स्वरूप नितान्त आधिदैविक है। दान को परिभाषित करते हुए 'शुद्धितत्त्व' कहता है -

अर्थानामुदिते पात्रे श्रद्धया प्रतिपादनम्।
दानमित्यभिनिर्दिष्टं व्याख्यानं तस्य वक्ष्यते॥

अर्थात् धन की प्राप्ति होने पर (धन का अथवा धन के द्वारा वस्तु को क्रय करके उस वस्तु का) पात्र अर्थात् उपयुक्त व्यक्ति को श्रद्धा के द्वारा दिये गए को **'दान'** कहते हैं।

शास्त्रों में दान की अत्यन्त महिमा गाई गई है। गोस्वामी तुलसीदास जी रामचरितमानस में दान की महिमा का बखान करते हुए कहते हैं -

प्रगट चारि पद धर्म के कलि मंह एक प्रधान।

जेन केन विधि दीन्हे दान कराई कल्यान ।।

वस्तुत: दान तो प्रतिदिन किया जाना वाला कर्म है। विशेषकर अन्न-दान का बड़ा महत्त्व है। विशेष संस्कारों के अनुष्ठान एवं काम्य कर्म के विधान में दान अत्यंत महत्त्वपूर्ण पक्ष है। गोदान, सुवर्ण-दान, तुलादान भूमि-दान आदि उपनयन संस्कार, अभिषेक-संस्कार, विवाह-संस्कार, जन्म-मृत्युकाल के सन्निकट, श्राद्ध-कर्म आदि के समय शास्त्र-विहित है। इसके अतिरिक्त कुछ 'इष्टापूर्त कर्म' यथा वापी-कूप-तडाग आदि का निर्माण, देवालय-उपवन-आराम-चिकित्सालय, पशुशाला, अनाथालय आदि के निर्माण हेतु भी व्यय की गयी राशि दान की श्रेणी में आती है। प्रत्येक ग्रह से सम्बद्ध वस्तुओं का सुयोग्य पात्र को यथोचित समय में यथाशक्य किया गया दान एक शास्त्रोक्त अत्यन्त उत्तम उपाय है जिसके द्वारा ग्रहों की शान्ति होती है एवं व्यक्ति ऐहिक व पारलौकिक उन्नति को प्राप्त होता है।

यदि कोई भी ग्रह शुभ या अशुभ होकर निर्बल, पापाक्रान्त, अस्त आदि हो तो सम्बद्ध वस्तुओं का दान उस ग्रह-जन्य कष्ट को दूर करने में सहायक होता है।

७.४ दान की विधि –

दान करने की भी शास्त्रोक्त विधि है। ऐसा नहीं है कि जब मन में आया जो वस्तु हमारे उपयोग की नहीं है उसे जिस किसी को भी दे देने से उसे दान की श्रेणी में मान लिया जाएगा। शास्त्रों में दान के स्वरूप, उसके भेद आदि का विस्तार से वर्णन किया गया है, जिसका संक्षेप स्वरूप आप सबको भी जानना चाहिए। आइए कुछ इसका अध्ययन करते हैं-

मित्रों! दान-कर्म के कुछ अनुबन्ध हैं, अर्थात् यह सम्पूर्ण कर्म की कुछ आवश्यक शर्तें हैं। दान के समय, दान के ६ अंग उपस्थित होने चाहिए, तभी यह शास्त्रीय रीति से 'दान' की श्रेणी में आएगा। ये ६ अंग कौन-कौन से हैं, ऐसी जिज्ञासा आपके मन में भी उठी होगी। इस प्रश्न का समाधान करते हुए शुद्धितत्त्वकार कहते हैं -

दाता प्रतिग्रहीता च श्रद्धा देयञ्च धर्मयुक्।
देशकालौ च दानानामङ्गान्येतानि षड्विदु: ।।

अर्थात् १. दाता (दान करने वाला), २. प्रतिग्रहीता (दान स्वीकार करने वाला), ३. श्रद्धा (प्रतिग्रहीता के प्रति दाता का भाव), ४. धर्म से अर्जित देय वस्तु (धन या जिस वास्तु का दान किया जा रहा है, वह धर्मानुकूल व्यवहार से अर्जित की गई हो), ५. देश (जिस स्थान पर दान-कर्म का आचरण किया जा रहा हो) और ६. काल (दान-कर्म का समय) ये ६ अंग मिलकर दान-कर्म को पूर्ण एवं सफल बनाते हैं।

प्रिय अध्येता! यदि दान-कर्म पर सांगोपांग विचार करें तो इसकी गंभीरता को समझ सकते हैं, अन्यथा नहीं। वर्तमान समय में किए जा रहे इस कर्म का यदि आप विचार करें तो पाएंगे कि इस कर्म के अनुष्ठान में कुछ अंग अनुपस्थित हैं तो कुछ दूषित या विकल।

जिस व्यक्ति के ग्रह-शान्ति की आवश्यकता है उसे दान-कर्म में दाता की भूमिका निभानी चाहिए, किन्तु आजकल लोगों के पास इस कार्य के लिए समय नहीं है क्योंकि इस कर्म से अधिक महत्त्वपूर्ण वो किसी अन्य कार्य को मानते हैं। बहुत हुआ तो दान की वस्तु छू ली और उनके संबंधी (माता, पिता, पत्नी या भाई-बहन इत्यादि) ने उन वस्तुओं का दान कर दिया।

इसलिए 'शुद्धितत्त्व' कहता है –

परोक्षे कल्पितं दानं पात्राभावे कथं भवेत् ।

परोक्ष अर्थात् दाता के अभाव में अथवा पात्र = दान लेने वाले की अनुपस्थिति में दान-कर्म शास्त्रीय विधि से कैसे सम्पन्न हो सकता है। अर्थात् नहीं हो सकता है।

दान तो पात्र के समीप जाकर श्रद्धापूर्वक दी गए कर्म का नाम है। इसलिए शास्त्र कहता है -

गत्वा यद्दीयते दानं तदनन्तफलं स्मृतम् ।
सहस्रगुणमाहूय याचिते च तदर्द्धकम् ।

अर्थात् जाकर (प्रतिग्रहीता या पात्र के समीप) दिया गया दान अनन्त फल को देने वाला कहा गया है। यदि पात्र को घर या अपने पास बुलाकर दाता दान देवे तो यह (अनन्त तप नहीं किन्तु) सहस्र गुणात्मक फल देने वाला होता है। किन्तु यदि कोई याचना करे भिक्षा मांगे तो उसे दिया गया दान आधा ही फल देने वाला होता है।

हरिवंशपुराण के अनुसार भी दान की प्रक्रिया को लक्ष्य करके कहता है -

गत्वा यद्दीयते दानं भक्त्या पात्रे विधानत: ।
तदनन्तफलं विद्धि अवस्थात्रितये नृप!

हे राजन्! पात्र के पास जाकर श्रद्धा पूर्वक जो दान किया जाए उसे अनन्त फल वाला जानो।

यहां जब दाता के पास प्रतिग्रहीता के लिए समय ही नहीं है तो फिर ऐसे में श्रद्धा का प्रश्न कहां उठता है? ऐसी परिस्थिति में देश और काल दाता के लिए कितना महत्त्व रखते होंगे यह सरलता से समझा जा सकता है। ऐसे में धर्म से कमाए गए धन की बात करना तो निश्चय ही दूर की कौड़ी है।

अब आपको यह समझने में कठिनाई नहीं होगी कि दान-कर्म के जो शास्त्रीय फल कहे गए हैं वह वर्त्तमान समय में अनुभूत क्यूँ नहीं हो रहे हैं?

मित्र! यह अनुचित है कि शास्त्रीय विधि-विधान में हम उतने का पालन करें जो हमारे अनुकूल हों और जो हमारे प्रतिकूल हों उनकी उपेक्षा करें और फिर शास्त्रोक्त-फल न मिलने पर शास्त्र को दोष दें।

७.५ दान का स्थल –

दान कहां करना चाहिए, इस विषय पर शुद्धितत्त्व कहता है –

यद् गङ्गायां कृतं सर्वं कोटि-कोटि गुणं भवेत् ।
शिवस्य विष्णोरग्नेश्च सन्निधौ दत्तमक्षयम् ।।
शालग्रामशिला यत्र तत्तीर्थं योजनद्वयम् ।
तत्र दानञ्च होमञ्च कोटिकोटि गुणं भवेत् ।।

दान करते समय स्थान का भी विशेष महत्त्व है। यदि गंगा जी में (अथवा गंगा के तट पर) दान दिया जाए तो यहाँ करोड़ों से भी करोड़ गुना फल देने वाला होता है। इसी प्रकार यदि भगवान् शिव अथवा भगवान् विष्णु के विग्रह के समक्ष (उनको साक्षी मानकर) दान किया जाए तो यह अक्षय फल देने वाला होता है। अर्थात् ऐसे दान के द्वारा अर्जित पुण्य का कभी भी क्षय नहीं होता है। इसी प्रकार शालिग्राम (ठाकुर जी) जी जहां स्थापित हों उससे दो योजन तक की भूमि तीर्थ के

रूप में माने जाने के कारण उस भूमि में किया गया दान करोड़ों से भी करोड़ गुना फल देने वाला होता है।

७.६ दान का काल -

दान कब नहीं करना चाहिए यह यदि स्पष्ट हो जाए तो दान कब करें यह स्वयं ही स्पष्ट हो जाएगा। –

आहारं मैथुनं निद्रां सन्ध्याकाले विवर्जयेत्।
कर्म चाध्ययनञ्चैव तथा दानप्रतिग्रहौ ।।
आपत्काले च कर्त्तव्यं दानं विक्रय एव च।

संध्याकाल के समय मैथुन, निद्रा, आजीविका-सम्बन्धी कार्य, अध्ययन, दान एवं प्रतिग्रह (दान लेना) ये सभी वर्जित हैं। किन्तु यदि आपत्ति का समय हो तब ऐसी परिस्थिति में दान एवं विक्रय का कार्य संध्या के समय भी किए जा सकते हैं।

७.७ दान के प्रकार –

भगवान् श्रीकृष्ण गीता में दान के प्रकार को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि दान – १. सात्त्विक, २. राजसिक एवं ३. तामसिक इन भेदों से तीन प्रकार होता है।

७.७.१ सात्त्विक दान –

दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे।
देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्त्विकं स्मृतम् ।।

अर्थात् दान की जो शास्त्रीय विधि कही गयी है उसके अनुसार यदि दान किया जाए तो इसे 'सात्त्विक' दान कहते हैं। भगवान् कहते हैं कि देश अर्थात् उचित स्थान पर (तीर्थ-स्थल आदि पर), उचित समय में (शात्रोक्त समय पर या किसी की प्राणादि संकट को टालने हेतु), उचित पात्र को एवं अनुपकारिणे = जिसने हमारा कोई उपकार नहीं किया हो ऐसे व्यक्ति को आवश्यकता पड़ने पर किया गया दान 'सात्त्विक' कहलाता है।

७.७.२ राजसिक दान –

यत्तु प्रत्युपकारार्थं फलमुद्दिश्य वा पुनः।
दीयते च परिक्लिष्टं तद्दानं राजसं विदुः ।।

यदि दान प्रत्युपकार हेतु अर्थात् उस व्यक्ति के लिए जिसने कभी दाता के प्रति कोई उपकार किया हो, ऐसे व्यक्ति के उपकार-ऋण को उतारने के लिए अथवा किसी प्रयोजन को ध्यान में रखते हुए (अभीष्ट-पहल की प्राप्ति हेतु) किया गया दान 'राजसिक' दान कहलाता है।

७.७.३ तामसिक दान -

आदेशकाले यद्दानमपात्रेभ्यश्च दीयते।
असत्कृतमवज्ञातं तत्तामसमुदाहृतम् ।।

यदि राजाज्ञा आदि के वशीभूत होकर अपात्र (अयोग्य) हेतु दान दिया जाए अथवा असत्कृतम् = असत् असाधु या दुष्ट कर्मों से अर्जित धन का या, अज्ञातम् = जिस धन के स्रोत का ज्ञान न हो उस धन के द्वारा किया गया दान 'तामसिक' कहा गया है।

बोध प्रश्न

प्र.१ निम्नलिखित वाक्यों में सही के आगे (√) का और गलत के आगे (×) का चिह्न लगाएं –

(क) (×) (ख) (√) (ग) (√) (घ) (×) (ङ) (×)

1 .अपात्र को दिये गए को 'दान' कहते हैं। ()

2. दान() अंग हैं ६कर्म के -

3. अपने पास बुलाकर दाता दान देवे तो यह सहस्र गुणात्मक फल देने वाला होता है।

4. राजा के समक्ष दिए गए दान का अक्षय फल होता है|

5. प्रत्युपकार के लिए किया गया दान तामसिक है|

अभ्यास प्रश्न

प्र.१ दान के प्रकार लिखें।

७.८ कूर्मपुराण का अनुसार दान की कोटियां –

कूर्म पुराण में दान के चार प्रकार बताए गए हैं। ये प्रकार कौन-कौन से हैं आइए इस पर दृष्टि डालते हैं -

नित्यं नैमित्तिकं काम्यं त्रिविधं दानमुच्यते।
चतुर्थं विमलं प्रोक्तं सर्वदानोत्तमोत्तमम्॥

१.नित्य, २. नैमित्तिक, ३. काम्य और ४. विमल; ये दान की ४ कोटियाँ हैं। इनमें 'विमल' संज्ञक दान सभी दानों में उत्तम माना गया है। आइए, क्रमश: इन दानों के स्वरूप पर दृष्टि डालते हैं -

७.८.१ नित्य दान -

अहन्यहनि यत् किञ्चिद्दीयतेऽनुपकारिणे।
अनुद्दिश्य फलन्तत् स्याद्ब्राह्मणाय च नित्यकम्॥

अर्थात् जिस व्यक्ति (ब्राह्मण आदि ने) ने आपका कोई उपकार न किया हो अर्थात् आप जिसके ऋणी न हों ऐसे व्यक्ति या व्यक्तियों को, निष्प्रयोजन अर्थात् बिना किसी अभीष्ट-प्राप्ति की कामना से प्रतिदिन किया जाना वाला दान 'नित्य' कहलाता है।

७.८.२ नैमित्तिक दान –

यत्तु पापोपशान्त्यर्थं दीयते विदुषां करे।
नैमित्तिकं तदुद्दिष्टं दानं सद्भिरनुत्तमम्॥

अर्थात् किसी ने किसी प्रयोजन (अभीष्ट-सिद्धि) को ध्यान में रखकर पाप-कर्मों की शान्ति के लिए सात्त्विक भावना से विद्वानों को जो दान दिया जाए उसे 'नैमित्तिक' दान कहते हैं।

७.८.३ काम्य दान –

अपत्यविनतैश्वर्यस्वर्गार्थं यत् प्रदीयते।
दानन्तत् काम्यमाख्यातम् ऋषिभिर्धर्मचिन्तकै:॥

पुत्र की इच्छा से, पत्नी की कामना से या ऐश्वर्य अथवा स्वर्ग की प्राप्ति की अभिलाषा से किये जाने वाले दान को ऋषि अथवा धर्मोपदेशक लोग 'काम्य' संज्ञक दान कहते हैं।

७.८.४ विमल दान –

यदीश्वरप्रीणनार्थं ब्रह्मवित् स प्रदीयते।
चेतसा धर्मयुक्तेन दानं तद्विमलं शिवम्॥

अर्थात् ईश्वर के प्रेम के वशीभूत होकर उसकी प्रसन्नता के लिए नितान्त धार्मिक चित्त से जो दान दिया जाए वह 'विमल' संज्ञक कल्याणकारी ब्रह्मवेत्ता (की कोटि का) दान कहा गया है।

७.९ विविध रोगों की शान्ति के लिए दान –

आचार्य हारीत ने रोगों की शान्ति के लिए दान को प्रमुख उपचार के रूप में माना है। उन्होंने विविध रोगों की शान्ति के लिए अलग-अलग प्रकार के दान की बात बड़े ही विस्तार से कही है। इसमें से कुछ रोगों की शान्ति हेतु जिन-जिन वस्तुओं के दान की बात आचार्य ने कही है उसे रोग के आधार पर अलग-अलग यहां कहा जा रहा है।

७.९.१ पांडु रोग की शान्ति के लिए दान –

गोदानं भूमिदानञ्च स्वर्णदानं सुरार्चनम्।
कृत्वा पश्चात् प्रतीकारं कुर्यात् पाण्डूपशान्तये॥

अर्थात् पांडु (कठिन पीलिया एवं तत्सम्बद्ध) रोगों की शान्ति के लिए गाय का, भूमि का एवं सुवर्ण का दान करके सूर्य देव की, रोगेश ग्रह की अथवा अभीष्ट देव की पूजा-अर्चना करनी चाहिए। उसके बाद चिकित्सकीय उपचार भी करना चाहिए।

७.९.२ कुष्ठ रोग की शान्ति के लिए दान -

कुर्यात् सर्वं कृतं कर्म कुष्ठरोगोपशान्तये।

कुष्ठ रोग के शान्ति के लिए भी पूर्वोक्त प्रकार से दान देते हुए चिकित्सकीय उपचार पर ध्यान देना चाहिए।

७.९.३ आयु एवं बल की प्राप्ति के लिए दान -

गोभूमिहिरण्यदानञ्च तथा मिष्टान्नभोजनम्॥
चतुर्विधं दानमिदं दत्वा कुर्यात् प्रतिक्रियाम्।
कदाचिदपि सिद्ध्येत ह्यायुषञ्चबलक्रिया॥

अर्थात् गोदान, भूमिदान, सुवर्णदान एवं मिष्ठान्न का भोजन ये चार प्रकार के दान करने पर एवं इसके बाद चिकित्सकीय उपचार के द्वारा कदाचित् (प्रभु की कृपा से) आयु एवं बल की प्राप्ति भी संभव है।

७.९.४ प्रमेह रोग की शान्ति के लिए दान –

मेहे सुवर्णदानञ्च.....

किसी भी प्रकार का प्रमेह रोग हो उसकी शान्ति के लिए सुवर्ण का दान करना चाहिए।

शूल, भागंदा, बवासीर एवं दमा रोग के लिए दान –

..... शूले श्वासे भगन्दरे ।

अर्शोभ्यस्त्वन्नदानेन श्वासात् कासाब्धिमुच्यते ।।

बहुभोजनदानेन शूलरोगाद्विमुच्यते ।।

यदि किसी भी प्रकार का शूल (वेदना, पीड़ा) हो यथा सिरदर्द, पैरदर्द आदि, श्वास से सम्बन्धित दमा आदि रोग हो, भगन्दर या बवासीर रोग हो तो अन्न का दान करने से रोग का शमन होता है । शूल रोग की शान्ति के लिए यह भी कहा गया है कि बहुत लोगों को भोजन कराना चाहिए ।

७.९.५ मानसिक रोग की शान्ति के लिए दान –

मतिदानान्नदानञ्च शास्त्रदानं भ्रमातुरे ।

यदि भ्रम (paranoia) या आतुरता, विकलता आदि मानसिक रोग से पीड़ित हों तो मति का दान अर्थात् कष्ट में विह्वल व्यक्ति की मंत्रणा, योजना परामर्श आदि के द्वारा सहायता करना चाहिए अथवा किसी विद्यार्थी को शास्त्र पढ़ाना चाहिए। इसके साथ ही अन्न दान भी करना चाहिए ।

७.९.६ गुल्म (व्रण या घाव), अश्मरी रोग की शान्ति के लिए दान –

.....कन्यादानञ्च गुल्मके ।।

मेहाश्मरीविनाशाय लवणञ्च प्रदापयेत् ।

किसी भी प्रकार का गुल्म (फोड़ा) हो यथा आंत्रगुल्म, कंठगुल्म आदि तो उसकी शान्ति के लिए कन्यादान करना चाहिए । अर्थात् परिणय-काल में किसी विपन्न व्यक्ति की कन्या हेतु दान करना चाहिए।

७.९.७ रक्तपित्त और संग्रहणी की शान्ति के लिए दान –

घृतमधुप्रदानेन रक्तपित्तं प्रशाम्यति ।

चतुर्विधेन दानेन साध्य: स्याद् ग्रहणीगद: ।।

रक्त में पित्त का मिलना अत्यन्त क्लेश उत्पन्न करता है एवं मृत्यु-तुल्य कष्ट देता है । इस रोग की शान्ति के लिए घी एवं शहद का दान करना चहिए ।

इसी प्रकार संग्रहणी रोग की शान्ति के लिए चारों प्रकार के दान अर्थात् गोदान, भूदान, सुवर्णदान एवं मिष्ठान्न-भोजन-दान करना चाहिए ।

बोध प्रश्न

प्र.२ निम्नलिखित वाक्यों में सही के आगे (√) का और गलत के आगे (×) का चिह्न लगाएं –

(क) (×) (ख) (√) (ग) (√) (घ) (×) (ङ) (×)

(क) कूर्म पुराण के अनुसार दान की ५ कोटियां हैं । ()

(ख) पांडु रोग की शान्ति के लिए गाय का भूमि का एवं सुवर्ण का दान करना चाहिए , ()

(ग) प्रमेह रोग की शान्ति के लिए सुवर्ण का दान करना चाहिए । ()

(घ) मानसिक रोग की शान्ति के लिए पीतल का दान करना चाहिए ()

(ङ) गुल्म की शान्ति के लिए घी एवं शहद का दान करना चहिए()

अभ्यास प्रश्न

प्र.२ कूर्म पुराण के अनुसार दान के प्रकार लिखें।

७.१० ग्रहों की शान्ति के लिए दान

७.१०.१ सूर्य ग्रह की शांति हेतु स्नान एवं दान –

सूर्य की पीड़ा के निवारणार्थ निम्नलिखित उपाय करने चाहिए -

कनेर, मैनसिल, दुपहरिया, इलाइची, नागरमोथा, देवदार, केसर, पद्माक्ष, मुलहटी, महुवा के फल और लालफूल इन सभी को जल में मिश्रित करके स्नान करने से सूर्य ग्रह की शान्ति होती है।

जब सूर्य प्रतिकूल होता है तो हृदय सम्बन्धी कष्ट दता है, पेट का रोग या नेत्र सम्बन्धी कष्ट देता है। इसके अतिरिक्त जातक को आजीविका के क्षेत्र में भी कष्ट उठाना पड़ता है। ऐसी स्थिति में गुड़ और गेहूँ, लाल रंग का ताँबा, लाल वस्त्र या वस्तु का दान करें।

सप्तम भाव में अथवा नीच का सूर्य हो तो रात्रि के समय चूल्हे की आग को दूध से बुझाना चाहिए। जातक मिठाई या शहद खाकर रात्रि में पानी पिये।

सूर्य दशम भाव में पीड़ित होकर बैठा हो तो चलते पानी में ताँबे का सिक्का या ताँबा या धातु जल में प्रवाहित किया जाये या दान दिया जाए तो लाभ होता है।

७.१०.२ चन्द्र ग्रह की शांति हेतु स्नान एवं दान –

यदि चन्द्रमा कुण्डली में पापाक्रान्त, अस्त, कलारहित इत्यादि स्थिति के कारण निर्बल हो तो ऐसी स्थिति में चन्द्रमा के उपचार करने हेतु औषध स्नान, माणिक्य धारण एवं व्रत, मंत्रोपचार, दान एवं अन्य उपाय करने चाहिए।

चन्द्रमा के दोषों का निवारण करने हेतु पंचगव्य, गाय के दूध, चाँदी, दही, मोती, गोबर, सीप, शंख, कुमुद, स्फटिक एवं श्वेत चन्दन इत्यादि को जल में डालकर उसमें स्नान करने से चन्द्रमा का दुष्प्रभाव मिट जाता है।

सफेद फूलों से पूजन करके सफेद चन्दन का तिलक करें। मध्याह्न के समय नमक रहित, दही, चावल, श्रीखण्ड का यथाशक्ति दान करें तत्पश्चात् भोजन करें। दान सामग्री के रूप में चावल, सफेद वस्त्र, कपूर, सफेद चन्दन, चीनी, दही, चांदी, गौ, मोती इत्यादि सम्मिलित हैं। यदि जातक की कुण्डली में चन्द्रमा की अंतर्दशा प्रारम्भ होती है तो शान्ति हेतु महर्षि पराशर गौ और महिषी का दान देने का सुझाव देते हैं। पराशर के अनुसार चन्द्रमा की महादशा में कृष्ण की उपासना से विशेष लाभ संभव है।

७.१०.३ मंगल ग्रह की शांति हेतु स्नान एवं दान –

मंगल की उपासना मंगलवार को की जानी चाहिए। मंगलवार का व्रत शुक्ल पक्ष के प्रथम मंगलवार से प्रारम्भ करना चाहिए। कम से कम 21 व्रत और अधिकतम 45 व्रत रखने चाहिए। मंगल ग्रह की शान्ति हेतु गुड़ के बने हलुए का या लड्डुओं का दान करना चाहिए और स्वयं भी खाना चाहिए। गुड़ से बना हलवा या लपसी आदि बैल को भी खिलायें।

ऋण-मुक्ति के लिए भी मंगलवार का व्रत रखने का विधान है। इससे संतानसुख भी प्राप्त होता है मंगल गृह की शान्ति के लिए लाल वस्त्र, ताँबे के बर्तन, मसूर की दाल,

गुड़ तथा नारियल का दान करें एवं ब्राह्मणों तथा बालकों को मीठा भोजन करायें। मंगल की पूजा में मुख्य रूप से लाल रंग की वस्तुओं का प्रयोग होता है जैसे लाल आसन, लाल वस्त्र, लाल चन्दन, लाल पुष्प और लाल रंग के भोग-वस्तु का चढ़ावा चढ़ाया जाता है। दान में लाल मसूर, लाल पुष्प, लाल वस्त्र, मूँगा इत्यादि सामग्री ही दी जाती हैं।

७.१०.४ बुध ग्रह की शांति हेतु स्नान एवं दान –

बुध के कारण गुदा रोग, खाँसी, हृदय रोग, वात रोग, कोढ़, उदर के रोग भूत कर बाधा इत्यादि होते हैं। इसके अतिरिक्त जब बुध दूषित होता है तो दमा, पागलपन, फिट आना दिमाग में खराबी इत्यादि के विकार भी होते हैं। बुध ग्रह की शान्ति के लिए मूंग के बने पदार्थ, हरा वस्त्र और फल दान में दें। गाय को हरी घास डाले।

हरड़, बहेड़ा, गोमय, अक्षत, गोरोचन, जायफल, आँवले और मधु के साथ मोती, स्वर्ण मिश्रित जल द्वारा स्नान करने से बुधकृत पीड़ा का शमन होता है।

बुध ग्रह की शान्ति के लिए बुधवार के साथ-साथ यदि अमावस्या का भी व्रत करें तो विशेष लाभ होता है। बुध ग्रह के निमित्त पन्ना की माला से जप करने पर विशिष्ट लाभ मिलता है। दान के रूप में साबुत हरी मूंग, हरे वस्त्र, फल-फूल, पीतल के बर्तन इत्यादि का दान करना चाहिए। विष्णु जी, गणेश जी एवं माँ दुर्गा जी की उपासना, बुध ग्रह दोष निवारण एवं शुभफल प्राप्त करने के लिए विशेष वन्दनीय कही गयी है। जब बुध अनिष्टकारी हो तो दुर्गा जी का पूजन करने से, दुर्गा सप्तशती का पाठ करने से तथा दुर्गा जी पर अंकुरित हरा मूंग चढ़ाने से कष्ट दूर होते हैं, विष्णु की प्रतिमा पर हरा केला तथा हरा फल चढ़ाने से भी कष्टों का शमन होता है।

७.१०.५ गुरु ग्रह की शांति हेतु स्नान एवं दान –

गुरु के निर्बल या पापी होने से अंतड़ियों के विकार, ज्वर, कफ, शोक, मूर्च्छा, कर्ण रोग, ब्राह्मण के शाप से उत्पन्न रोग, क्षय रोग, किन्नर, नाग आदि देवों द्वारा उत्पन्न हुए रोग होते हैं। उपर्युक्त के अतिरिक्त अन्य मतानुसार जलोदर, यकृत के रोग, फेफडों के रोग मस्तिष्क की रक्तवाहिनियों के रोग, पेट दर्द, रीढ़ की हड्डी में दर्द इत्यादि रोग गुरु के कारण होते हैं।

गुरु पर पाप प्रभाव डालने वाले ग्रहों की शान्ति हेतु उपचार करना चाहिए। उपचार हेतु औषध स्नान, रत्न धारण, पूजन व्रत, दान, जप एवं अन्य उपाय करने चाहिए।

गुरु पर पाप प्रभाव डालने वाले ग्रहों की शान्ति हेतु श्वेत सरसों, गूलर, मुलहठी, मदपत्ती, चमेली के फूल और नवीन पत्ती के मिश्रित जल द्वारा स्नान करना चाहिए।

पीलिया, ज्चर, गुर्दे, तिल्ली सम्बन्धी रोगों में पुखराज का भस्म शहद अथवा जल के साथ लेने से लाभ हो सकता है। पुखराज की भस्म अन्य रोगों जैसे - बवासीर, कुष्ठ रोग, हड्डी का दर्द, छाती और श्वास सम्बन्धी रोग इत्यादि में भी लाभदायक है।

यदि कुण्डली में गुरु अष्टमस्थ हो तो उसकी शान्ति हेतु बृहस्पति-व्रत करना तथा विष्णु और शिव की प्रतिमा पर हल्दी चढ़ाना आवश्यक होता है। बृहस्पति का व्रत कम से कम 16 बार और अधिक से अधिक 3 साल करना चाहिए। व्रत के दिन पीले रंग के वस्त्र धारण कर बृहस्पति के मंत्र की 3 या 11 माला जपे। पीले फूलों से पूजन करें, भोजन में चने के बेसन की बनी मिठाइयाँ, लडडू, हल्दी से पीले चावल या केसर से पीले चावल

आदि ही खायें। बृहस्पति जी की शान्ति के लिए गुरूवार के साथ-साथ अमावस्या का भी व्रत करना चाहिए।

बृहस्पति की शान्ति हेतु दान सामग्री के रूप में चने की दाल, पीले पुष्प, वस्त्र एवं सोना, फल, हल्दी, घृत, पुस्तक एवं पुखराज इत्यादि का दान करना चाहिए। अन्तिम बृहस्पतिवार को हवन पूर्णाहुति के बाद ब्राह्मण व बालकों को भोजन करायें । दान दक्षिणा देवें। व्रत के दिन केले का पूजन भी शुभ माना जाता है। पाराशर ने गुरु की शान्ति हेतु शिव सहस्रनाम, रुद्रीय जप तथा गौ दान करने का परामर्श दिया है।

बोध प्रश्न

(क) (√) (ख) (√) (ग) (×) (घ) (√) (ङ) (×)

प्र.३ निम्नलिखित वाक्यों में सही के आगे (√) का और गलत के आगे (×) का चिह्न लगाएं –

(च) सूर्य की शान्ति हेतु गुड़ और गेहूँ, लाल रंग का ताँबा, लाल वस्त्र या वस्तु का दान करें ()

(छ) चन्द्र की शान्ति हेतु में चावल, सफेद वस्त्र, कपूर, सफेद चन्दन का दान करें ()

(ज) मङ्गल की शान्ति हेतु काली वस्तुओं का दान करें ()

(झ) बुध की शान्ति हेतु हरी वस्तुओं का दान करें ()

(ञ) गुरु की शान्ति हेतु गुड़ और गेहूँ, ताँबा, लाल वस्त्र या वस्तु का दान करें ()

अभ्यास प्रश्न

प्र.३ मङ्गल ग्रह की शान्ति हेतु दान की वस्तुएँ क्या हैं?

_____

_____

_____

_____

७.१०.६ शुक्र ग्रह की शांति हेतु स्नान एवं दान –

शुक्र के कारण पांडुरोग, कफरोग, वातरोग, आँख के रोग, प्रमेह, गुप्तेन्द्रिय रोग, मूत्रवरोध, कामसुख में बाधक रोग, वीर्य स्त्राव, वेश्यागमन से शरीर का तेजोहीन होना, सूखारोग इत्यादि होते हैं। योगिनी, यक्षी या मातृदेवताओं द्वारा कष्ट, प्रिय मित्रों से सम्बन्ध का टूट जाना आदि का विचार भी शुक्र से होता है।

यदि शुक्र षष्ठ, अष्टम या द्वादशभाव में पाप में युत और दृष्ट हो तथा उस पर कोई शुभ प्रभाव नही हो तो रोग, शत्रुता और द्वेष तथा स्त्री और पुत्र को कष्ट उठाना पड़ता है। अतः शुक्र के दोष का उपचार औषध स्नान, रत्नधारण, दान, मंत्रजप, उपासना, व्रत एवं अन्य उपायों से करना चाहिए।

मूल सहित हरड़, बहेड़ा, आँवला, पीपरामूल, मूली के बीज, जायफल, इलायची, केशर और मैनसिल जल में मिलाकर स्नान करने से शुक्र का दुष्प्रभाव समाप्त होने की सम्भावना है।

दान हेतु चावल श्वेत वस्त्र मिष्ठान, पुष्प, शंख, चंदन, चाँदी दही, चीनी, सफेद गाय इत्यादि वस्तुएं देना चाहिए।

चाँदी के बने यंत्र को अन्य दान सामग्री जैसे चावल, मिश्री, दूध, श्वेत वस्त्र इत्यादि के साथ दान देने से सौभाग्य में वृद्धि होती है।

अगर शुक्र द्वादश भाव में हो तो पत्नी के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है तब पत्नी के नाम का दान करना चाहिए।

यदि शुक्र अनिष्टकारी है तो भोजन में से पहले गाय को भोजन दें साथ ही गाय को चारा दान करने से भी लाभ होता है।

७.१०.७ शनि ग्रह की शांति हेतु स्नान एवं दान –

कुम्भ मकर या धनु लग्न हो और शनि षष्ठ, अष्टम या द्वादश भाव में हो अथवा राहु या मंगल से पीड़ित हो तो ऐसी स्थिति में नीलम या लोहा धारण करना चाहिए।

जातक की कुण्डली में शनि स्थिर राशिगत हो तो जातक खांसी, श्वासनली में उत्ताप, हृदयरोग, मूत्र व्याधि आदि से त्रस्त करता है। यदि शनि चर राशि में हो तो उदर-वक्ष संधि स्थल सम्बन्ध विकार देता है, जबकि द्विस्वभाव की राशि में होने पर श्वास, फेफड़े सम्बन्धी रोग, पैरों की पीडा इत्यादि होती है, परन्तु नीलम धारण करने से उपरोक्त रोगों से मुक्ति मिलती है। आँखों के अन्य रोगों जैसे मोतिया बिन्द इत्यादि में अगर नीलम केवड़े के जल में मिलाकर आँखों में डाले तो शीघ्र लाभ मिलता है।

शनिदेव की उपासना में नीले रंग की वस्तुयें प्रयुक्त होती हैं जैसे:- लोहा, उड़द, कड़वा तेल, काला वस्त्र, साबुत जामुन, काले कंबल का आसन, काले चने, काली गाय एवं नीलम।

शनि ग्रह से सम्बद्ध वस्तुओं के दान में नीले रंग के वस्त्र, उड़द, चाकू किसी वृद्ध ब्राह्मण को दान में दें। तत्पश्चात् काली वस्तुओं का दान करना चाहिए और हवन करना चाहिए।

७.१०.८ राहु ग्रह की शांति हेतु स्नान एवं दान –

जन्म पत्रिका में राहु लग्न से अष्टम या द्वादश भाव में पाप प्रभाव हो अथवा नीच राशि में हो तो राहु की महादशा में अत्यन्त कष्टों का सामना करना पड़ सकता है।

राहु के व्रत की अधिकतम एवं न्यूनतम अवधि 18 शनिवार है। राहु ग्रह की शान्ति हेतु नारियल, लोहा, नीला कपडा, लाल फूल, भूरा कम्बल, घोडा, तिल, कोयला, सप्तधान्य और सरसों का तेल दान में देना चाहिए। पीपल के पेड़ के नीचे सरसों के तेल का दीपक जलाकर राहु के तांत्रिक मंत्र का 3 या 18 माला का जप करना चाहिए।

यदि राहु पंचम भाव में सूर्य के साथ हो तो गोमेद कदापि धारण न करें वरन् ताँबे का दान करने तथा ताँबे के पात्र में गुड़में प्रवाहित करने गेहूँ भरकर बहते जल- से लाभ होता है।

यदि चतुर्थ भाव में राहु हानिकारक स्थिति में हो तो राहु की शान्ति के लिए धनिया या बादाम बहते जल में प्रवाहित करें।

७१०..९ केतु ग्रह की शांति हेतु स्नान एवं दान –

केतु के कारण होने वाले रोगों में मुख्य रूप से खुजली, चेचक, शत्रु का कपट, रोग इत्यादि हैं। उत्तर कालामृत रचयिता कालिदास के अनुसार केतु के कारकत्व शिव, विष्णु या गणेश आदि देवों की उपासना, वैद्यक, कुत्तेमुर्गे-, गीदड़, क्षय, ज्वर, सर्वविद्या

ऐश्वर्य, मुक्ति, गंगातट के स्थान, महान तपस्या, वायु, वनचर, स्नेह, नौकर पत्थर, व्रण मंत्रशास्त्र चपलता, ब्रह्मज्ञान, पेट वा आँख के रोग जड़ता, कांटे, पशु, ज्ञानमौन-, वेदान्त, सर्वप्रकार के उपभोग, भाग्य, दादा, भयंकर शूल, फोड़ेफुन्सियाँ-, शूद्रलोग एवं नीच आत्माओं से कष्ट इत्यादि हैं। अनेक विद्वानो ने केतु को देवोपासना, मंत्र ज्ञान, मौनव्रत, वेदान्त आत्मज्ञान, वैराग्य तथा तप का कारक कहा है।

यदि केतु द्वितीय, अष्टम या द्वादश भाव में पापयुक्त हो तो केतु का उपाय करना आवश्यक होता है इसके लिए औषध स्नान, रत्नधारण, दान, उपासना एवं व्रत, मंत्रोपचार करना चाहिए।

सहदेई, लजालु, बला, मोथा, लाल चन्दन, प्रियंगु से मिले जल से स्नान करने से केतु ग्रह की शान्ति होती है।

केतु का पूजन लाल या काले वस्त्र, कम्बल, लालपुष्प, ध्वज, काले तिल इत्यादि से करना चाहिए। केतु की शान्ति हेतु ॐ गणपतये नमः ॐ गणेशाय नमः आदि मंत्र का जाप प्रतिदिन 108 बार करना चाहिए। मंत्रों का जाप रुद्राक्ष अथवा स्फटिक की माला से करना चाहिये। केतु ग्रह के दोष निवारण एवं शुभता प्राप्त करने के लिए गणेश की पूजा तिल के लड्डुओं से की जानी चाहिए। केतु की शान्ति हेतु दान सामग्री के रूप में बकरी, कस्तूरी, कम्बल, लोहा, शस्त्र, तिल, नारियल इत्यादि का दान देना चाहिए। लहसुनिया का भी दान करने से केतु कृत अरिष्ट-दोष शान्त होकर मनोभिलाषा पूर्ण होती है। धूम वस्त्र (मलेशिया या Steel Grey) का दान दें। गरीबों में मीठे पीले चावल रविवार को बांटने से केतु का भाव या नवांश स्थिति दोष जन्य पीड़ा शान्त होती है।

केतु का अनिष्ट प्रभाव अनुभव में आने पर वर्षभर जन्म नक्षत्र पर चन्द्रमा आने पर हर महीने गणेश जी का पूजन करें तथा गणेश अथर्वशीर्ष उपनिषद् का- पाठ करें।

बोध प्रश्न

प्र.४ निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दें –

1.प्रमेह रोग का कारक _____ ग्रह है।

2.चावल, मिश्री, दूध का दान _____ ग्रह की शान्ति हेतु करना चाहिए।

3._____ की शान्ति के लिए लोहा, उड़द, कड़वा तेल, काला वस्त्र का दान करें।

4. बकरी, कस्तूरी के दान से_____ ग्रह शान्त होता है।

5. सप्तधान्य का दान _____के लिए प्रशस्त है।

अभ्यास प्रश्न

प्र.४ शनि के दान की वस्तुएँ लिखे।

_____

_____

_____

_____

७.११ सारांश –

धन की प्राप्ति होने पर (धन का अथवा धन के द्वारा वस्तु को क्रय करके उस वस्तु का) पात्र अर्थात् उपयुक्त व्यक्ति को श्रद्धा के द्वारा दिये गए को 'दान' कहते हैं। वस्तुत: दान तो प्रतिदिन किया जाना वाला कर्म है। विशेषकर अन्न-दान का बड़ा महत्त्व है। विशेष संस्कारों के अनुष्ठान एवं काम्य कर्म के विधान में दान अत्यंत महत्त्वपूर्ण पक्ष है। गोदान, सुवर्ण-दान, तुलादान भूमि-दान आदि उपनयन संस्कार, अभिषेक-संस्कार, विवाह-संस्कार, जन्म-मृत्युकाल के सन्निकट, श्राद्ध-कर्म आदि के समय शास्त्र-विहित है। दाता (दान करने वाला), प्रतिग्रहीता (दान स्वीकार करने वाला), श्रद्धा (प्रतिग्रहीता के प्रति दाता का भाव), धर्म से अर्जित देय वस्तु (धन या जिस वास्तु का दान किया जा रहा है, वह धर्मानुकूल व्यवहार से अर्जित की गई हो), देश (जिस स्थान पर दान-कर्म का आचरण किया जा रहा हो) और काल (दान-कर्म का समय) ये ६ अंग मिलकर दान-कर्म को पूर्ण एवं सफल बनाते हैं। संध्याकाल के समय दान एवं प्रतिग्रह (दान लेना) वर्जित हैं। किन्तु यदि आपत्ति का समय हो तब ऐसी परिस्थिति में दान किया जा सकता है।

भगवान् श्रीकृष्ण गीता में दान के ३ भेद क्रमशः १. सात्त्विक, २. राजसिक एवं ३. तामसिक कहे हैं। कूर्म पुराण के अनुसार - १.नित्य, २. नैमित्तिक, ३. काम्य और ४. विमल; ये दान की ४ कोटियाँ हैं।

आचार्य हारीत ने रोगों की शान्ति के लिए अलग-अलग प्रकार के दान की बात विस्तार से कही है। उदाहरण के लिए, पांडु (कठिन पीलिया एवं तत्सम्बद्ध) रोगों की शान्ति के लिए गाय का, भूमि का एवं सुवर्ण का दान, कुष्ठ रोग के शान्ति के लिए भी पूर्वोक्त प्रकार से दान, प्रमेह रोग हो उसकी शान्ति के लिए सुवर्ण का दान करना चाहिए। इसी प्रकार सूर्य आदि ग्रहों की शान्ति के लिए तत्-तत् सम्बद्ध वस्तुओं के दान के विषय में भी आपने विस्तार से इस अध्याय में पढ़ा।

७.१२ शब्दावली –

अर्थानामुदिते = धन की प्राप्ति होने पर
प्रतिग्रहीता = दान स्वीकार करने वाला
परोक्षे = दाता के अभाव में अथवा पात्र (दान लेने वाले) की अनुपस्थिति में
सहस्रगुणम् = हज़ार गुना
आहूय = अपने पास बुलाकर
याचिते = यदि कोई याचना करे भिक्षा मांगे
तदर्द्धकम् = उक्त का आधा (फल)
विवर्जयेत् = त्याग करे
अनुपकारिणे = जिसने हमारा कोई उपकार नहीं किया हो ऐसे व्यक्ति के लिए
प्रत्युपकारार्थं = प्रत्युपकार हेतु अर्थात् उस व्यक्ति के लिए जिसने कभी दाता के प्रति कोई उपकार किया हो, ऐसे व्यक्ति के उपकार-ऋण को उतारने के लिए

७.१३ बोध प्रश्नों के उत्तर -

प्र.१ (क) (×) (ख) (√) (ग) (√) (घ) (×) (ङ) (×)
प्र.२ (क) (×) (ख) (√) (ग) (√) (घ) (×) (ङ) (×)
प्र.३ (क) (√) (ख) (√) (ग) (×) (घ) (√) (ङ) (×)

प्र.४ (क) शुक्र
(ख) शुक्र
(ग) शनि
(घ) केतु
(ङ) राहु

७.१४ सन्दर्भ ग्रन्थ सूची –

१. श्रीमद्भगवद्गीता, गीता प्रेस, गोरखपुर।
२. जातकपारिजात:, टीका- कपिलेश्वर शास्त्री, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी।
३. उत्तरकालामृत, रंजन पब्लिकेशन, दिल्ली

७.१५ सहायक ग्रन्थ सूची –

१. Ayurvedic Astrology, David frawley, Moti lala Banarasi das publication, new delhi.
२. अध्यात्म ज्योतिष एवं कर्मकाण्ड उपचारीय ज्योतिष, डा. विभा अग्निहोत्री, वेदान्त पब्लिकेशन, लखनऊ

७.१६ निबन्धात्मक प्रश्न –

१. विविध रोगों की शान्ति के लिए आचार्य हारीत द्वारा बताई गई दान की वस्तुओं पर प्रकाश डालिए।
२. सूर्य, गुरु एवं केतु के दान की वस्तुओं का उल्लेख करें।
३. दान के प्रयोजन एवं महत्व पर प्रकाश डालिए|
४. मंगल ,शुक्र की दान वस्तुओं व दान विधान पर निबन्ध लिखिए|

इकाई -05 रक्त एवं मूत्र जन्य व्याधियों के योग

इकाई की रूपरेखा

5.1 प्रस्तावना
5.2 उद्देश्य
5.3 मुख्य भाग खण्ड एक
    5.3.1 उपखण्ड एक - मूत्र रोग विचार
    5.3.2 उपखण्ड दो - मूत्र रोगों के ज्योतिषीय योग
    5.3.3 उपखण्ड तीन - रक्त विकार
    5.3.4 उपखण्ड चार - रक्त रोगों से सम्बन्धित भाव एवं राशि ग्रह एवं योग
5.4 सारांश
5.5 पारिभाषिक शब्दावली
5.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
5.7 सन्दर्भ ग्रन्थों की सूची
5.8 साहायक उपयोगी सामग्री
5.9 निबन्धात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

पिछले अध्याय में आप विस्तार से पढ़ चुके हैं, कि रोग दो प्रकार के है। जन्मजात तथा आगन्तुक। जन्मजात रोग दो प्रकार के हैं - शारीरिक तथा मानसिक तथा आगन्तुक रोग भी दृष्टनिमित्तजन्य तथा अदृष्टनिमित्तजन्य भेद से दो प्रकार के है। अदृष्टनिमित्त जन्य रोग वे होते है, जिनके कारणों का पता नही चल पाता। आधुनिक यन्त्रों द्वारा विशेष परीक्षण करने के पश्चात चिकित्क भी इनके कारणों का पता नहीं लगा पाते। ये रोग दो प्रकार के हैं - अंगों के रोग तथा त्रिदोष (वात-पित्त-कफ) के विकार से उत्पन्न रोग। अंगों के रागो का सम्बन्ध शरीर के किसि निश्चित अंग से होता है। इस इकाई में मूत्र तथा रक्त से सम्बन्धित रोगों के विषय में आप ज्ञान प्राप्त करेंगे। मूत्र से सम्बन्धित अंगों के रोग तथा मूत्र में उत्पन्न विकार मूत्र के रोग है। इसी प्रकार रक्त में किसि प्रकार की विकृति उत्पन्न हो जाए तो उसे रक्त के रोग होते हैं। ज्योतिषशास्त्र में ग्रह, राशि एवं भावों के सम्बन्ध से निर्मित योगों के द्वारा रोगों का ज्ञान किया जाता है। जन्माङ्ग के माध्यम से मूत्र रोगों के ज्ञान के लिए मूत्र रोग से सम्बन्धित भाव राशि तथा ग्रहों का ज्ञान आवश्यक है। इन भाव राशि तथा ग्रहों के योग से निर्मित योग मूत्र रोगों का कारण बनते हैं। रक्त मानव के सम्पूर्ण शरीर में उपस्थित रहता है। अतः रक्त रोगों का ज्ञान सामान्य रूप से सभी भावों राशियों एवं ग्रहों से होता है, परन्तु ज्योतिषशास्त्र में मंगन को रक्त का कारक माना गया है। अतः इस इकाई में आप मूत्र एवं रक्त रोगों से सम्बन्धित भावों, राशियों, ग्रहों तथा इन तीनों के योग से निर्मित योगों क विषय में विस्तार पूर्वक अध्ययन करेंगे।

5.2 उद्देश्य -

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

1. मूत्र एवं रक्त के रोगों का ज्ञान प्राप्त करेंगे।
2. मूत्र एवं रक्त से सम्बन्धित भावों, राशियों तथा ग्रहों के विषय में विस्तार से ज्ञान प्राप्त करेंगे।
3. मूत्र एवं रक्त के रोगों के ज्योतीषीय कारणों की व्याख्या कर सकेंगे।
4. मूत्र रोगों के ज्योतिषीय योगों का वर्णन कर सकेंगे।
5. रक्त रोगों के योतिषीय योगों का वर्णन कर सकेंगे।

5.3 मुख्य भाग खण्ड एक

5.3.1 उपखण्ड एक - मूत्र रोग विचार

मूत्र वे पदार्थ या अपशिष्ट पदार्थ हैं जिन्हें शरीर से बाहर निकालने की आवश्यकता होती है। आयुर्वेद के अनुसार केवल दोषों, धातुओं और मलों की एक संतुलित स्थिति से आरोग्य (अच्छी स्वास्थ्य या रोग मुक्त स्थिति) उत्पन्न हो सकती है। जिस पानी का हम सेवन करते हैं वह

हमारे शरीर को शुद्ध और साफ करता है और त्वचा, फेफड़ों और मल के माध्यम से बाहर निकलता है। हमारे शरीर की बाहरी सतह को पानी से स्नान करके गंदगी मुक्त रखा जाता है और हमारे शरीर के भीतर रक्त प्लाज्मा आसमाँ या इलेक्ट्रोलाइट परिवहन की प्रक्रिया द्वारा आंतरिक अंगों और ऊत्तकों को साफ करता है। यह रक्त प्लाज्मा मुख्य रूप से गुर्दे (यकृत द्वारा एक निश्चित सीमा तक) द्वारा फिल्टर किया जाता है और इस प्रकार प्राप्त अपशिष्ट उत्पादों को मुत्र के रूप में समाप्त कर दिया जाता है। शरीर में खनिजों और अन्य पदार्थों के संतुलन को बनाए रखने के लिए मूत्र निर्माण एक महत्वपूर्ण आवश्यकता है। सेलुलर चयापचय शरीर के भीतर कई विषाक्त नाइट्रोजन पदार्थों का निर्माण करता है जो मूत्र के माध्यम से हटा दिए जाते हैं। उदाहरण के लिए, शरीर को मूत्र के माध्यम से कैल्शियम की अधिकता से छुटकारा मिलता ह। मूत्र अमोनिया, इथेनॉल और कृत्रिम मिठास भी उत्सर्जित करता है जो शरीर के भीतर रहने के लिए हानिकारक हैं। इसके अलावा, मूत्र शरीर में पानी की उचित मात्रा को बनाए रखने में मदद करता है। मूत्र तंत्र में वृक्क, मूत्रकवाहिनी, मूत्राशय तथा मूत्रमार्ग होते हैं। इनको उत्पत्ति मध्य जनस्तर के मध्यस्थ कोशिका पुंज तथा अवस्कर गुहा के जननमूत्र विवर से होती है। वृक्क उच्च कटि प्रदेश में मेरूदंड के दोनों ओर होते हैं और इनमें मूत्र बनता है। यहाँ से मूत्रवाहिनी के द्वारा मूत्र को मूत्राशय तक पहुँचाया जाता है। मूत्राशय में अल्पकाल क संचय के पश्चात मूत्रमार्ग से मूत्र बाहर निकाला जाता है। मूत्र से सम्बन्धित निम्नलिखित रोग हैं –

मूत्रतंत के संक्रमण - मूत्रतंत्र के संक्रमण सबसे सामान्य मूत्र रोग हैं। यह जीवाणुओं के कारण होता है तथा मूत्र का अवरोध इसके लिये सबसे बड़ा पुरःप्रवर्तक कारक (चतमकपेचवेपदह बिजवत) है। मूत्रतंत्र की प्रमुख समस्याओं में ९० प्रतिशत भाग संयुक्त रूप से संक्रमण तथा अवरोध का होता है।

मूत्रतंत्र के उपघात - ये दुर्घटनाएँ युद्ध तथा उपकरण उपघात से हो सकती हैं। वृक्क, मूत्रवाहिनी, मूत्राशय तथा मूत्रमार्ग में कहीं भी अकेले, अथवा और किसी अंग के समेत, उपघात हो सकता है।

मूत्र अश्मरी रोग - मूत्र अश्मरी फॉस्फेट, कार्बोनेट, यूरिक अम्ल, यूरेट आक्सलेट के प्रकार की होती है। कभी कभी सिस्टिन, जैथीन और अन्य असामान्य प्रकार की भी होती हैं। यह वृक्कद्रोणि, मूत्रवाहिनी तथा मूत्राशय में साधारणतया होती है, पर मूत्रतंत्र के अन्य भागों में भी हो सकती है।

मूत्रजनन तंत्र के अर्बुद - मनुष्य के सारे अर्बुदों में मूत्रजननतंत्र के अर्बुद २०% से 25% तक होते हैं, इस तंत्र के 93% से 95% के अर्बुद दुर्दम्य (उंसपहदंदज) होते हैं।। मूत्राशय के अर्बुदों में पैपिलोमा तथा पैपिलरी कार्सिनोमा उल्लेखनीय है। प्रॉस्टेट ग्रंथि की सुदम्य अधिवृद्धि (इमदपहद लिचमतचसेंप) तथा कैंसर प्रौढ़ों में मूत्र अवरोध के सामान्य कारण हैं। इस संबंध में प्रॉस्टेट ग्रंथीय सूत्रणरोग (पिइतवेपे) तथा मूत्राशय के अग्रभाग में रुकावट का भी स्थान है। अंड ग्रंथि में सेमिनोमा (मउपदवउं) और टेराटोमा अर्बुद प्रायः होते हैं। शुक्राशय, मूत्रमार्ग, शिश्न तथा अन्य भागों में भी सुदम्य तथा दुर्दम्य दोनों ही प्रकार के अर्बुद निकल सकते हैं।

अश्मरी रोग - प्राथमिक मूत्राशय अश्मरी विसंक्रमित मूत्र में बनती है और प्रायः वृक्क से मूत्रवाहिनी के द्वारा मूत्राशय में आती है। द्वितीयक मूत्राशय की अश्मरियाँ आक्सैलेट, यूरिकाम्ल तथा यूरेट सिस्टीन तथा फॉस्फेटी प्रकार की होती हैं। बारंबरता, पीड़ा, शिश्न के अग्रभाग में खुजली, रक्तमेह, थोड़ी देर के लिये मूत्र का रुक जाना आदि, इसके लक्षण हैं।

प्रॉस्टेट ग्रंथि का सुदम्य बढ़ना - यह रोग पुरुषों में प्रायः ५० वर्ष की अवस्था के पश्चात होता है। इसका कारण हॉरमोनों का असंतुलन अथवा सुदम्य अर्बुद होता है। मध्यम तथा पार्श्व खंड ही अधिकांश बढ़ते हैं तथा मूत्रमार्ग, मूत्राशय, मूत्रवाहिनी तथा वृक्क में पीडा उत्पन्न करते हैं। इसके लक्षण मूत्र त्यागने की बारंबरता, विशेष कर रात में, मूत्र कृच्छ तथा रक्तमेह होते हैं। कुछ रोगी मूत्र के तीव्र अवरोधन (बनजम तमजमदजपवद) तथा कुछ वृक्क की अपर्याप्तता के कारण भी देखे जाते हैं। मूत्र करने में प्रक्षेपी शक्ति की कमी हो जाती है। मलाशय परीक्षा से बढ़ी हुई प्रॉस्टेट ग्रंथि का स्पर्श हो जाता है।

प्रॉस्टेट ग्रंथि का कर्कट (पौरुष न्थि का कैंसर) - ६५ वर्ष से अधिक आयु के पुरुषों में यह सामान्य दुर्दम्य रोग होता है। पांच में से एक प्रॉस्टेट ग्रंथीय अवरोधन कर्कट के कारण होता है। पांच में ५ सुदम्य बढ़ी हुई प्रॉस्टेट ग्रंथि में शल्य से निकाले जाने के पश्चात् सूक्ष्मदर्शीय जाँच करने पर कर्कट मिलता है। प्रॉस्टेट ग्रंथीय अवरोधन के लक्षणों के साथ साथ कभी कभी मूत्रधार अथवा अधिजघन क्षेत्र में दर्द भी होता है।

मूत्राशय ग्रीवा संकोच – इसे मध्यम दंड अवरोधन तथा मेरियान (डंतपवदशे) रोग भी कहते हैं। यह दोनों लिंगों में और प्रत्येक आयु में हो सकता है। पुरस्थ ग्रंथीय अवरोधन के समान ही इसके लक्षण तथा चिह होते हैं।

अति लघूत्तरीय प्रश्न -

1. आयुर्वेद में धातुओं और मलों की एक संतुलित स्थिति को क्या कहते है?
2. शरीर में खनिजों और अन्य पदार्थों के संतुलन को बनाए रखने के लिए क्या एक महत्वपूर्ण आवश्यकता ह?
3. गुर्दे में गठित मूत्र को भंडारण के लिए किसके द्वारा मूत्राशय में ले जाया जाता है?
4. मनुष्य के सारे अर्बुदों में मूत्रजननतंत्र के अर्बुद कितने प्रतिशत तक होते हैं?
5. प्रॉस्टेट ग्रंथि का सुदम्य बढ़ना यह रोग पुरुषों में प्रायः कितने वर्ष की अवस्था के पश्चात होता है?

5.3.2 उपखण्ड दो - मूत्र रोगों के ज्योतिषीय योग

मूत्र रोगों से सम्बन्धित राशियां - भारतीय ज्योतिषशास्त्र में काल रूपी की कल्पना कर उसके शरीर के विविध अंगों में मेंपादि द्वादश राशियों की कल्पना की कल्पना की गई है। काल पुरूष के अंगों में मेष राशि शिर का, वृष राशि मुख का मिथुन भुजाओं का, कर्क हृदय का, सिंह उदर का,

कन्या कमर का तुला बस्ति का, वृश्चिक गुप्तांग का, धनु उरु का, मकर जानु का, कुम्भ जंघाओं का तथा मीन राशि पैरों का प्रतिनिधित्व करती है।

रोग परिज्ञान करते समय जो राशि क्रूर ग्रहों से पीडित अथवा दृष्ट को ता उस राशि से सम्बन्धित अंग में रोग होने की सम्भावना होती है। मूत्र रोग से सम्बन्धित राशि तुला एवं वृश्चिक है। ज्योतिष शास्त्र के होरा ग्रन्थों के अनुसार तुला राशि मानव शरीर के बस्ति, मूत्राशय तथा गर्भाशय के उपरी भाग का प्रतिनिधित्व करती है। तुला राशि के स्वाभाविक रोग मूत्राशय स सम्बन्धित रोग, मधुमेह, प्रदर, मूत्रकृच्छ एवं अतिमूत्रादि हैं। इसी प्रकार वृश्चिक राशि से भी मूत्र तथा मूत्राशय से सम्बन्धित रोगों का विचार किया जाता है। मानव शरीर में वृश्चिक राशि गर्भाशय जननेन्द्रिय एवं गुदा का प्रतिनिधित्व करती है तथा इस राशि के स्वाभाविक रोग गुप्तरोग, अर्श, भगंदर, अपदंश शूक एवं संसर्गजन्य रोग है।

मूत्र रोगों से सम्बन्धित भाव - 'जिस प्रकार जातक की कुण्डली में द्वादश राशियां विविध अंगों का प्रतिनिधित्व करती हैं तथा , उसी प्रकार लग्नादि द्वादश भाव भी काल पुरूष के विधि अंगों का प्रतिनिधित्व करते है। ज्योतिषशास्त्र के अनुसार द्वादश भावों में प्रथम भाव शिर का, द्वितीय भाव द्वितीय भाव मुख का तृतीय भाव भुजाओं का, चतुर्थ भाव हृदय का, पञ्चम भाव उदर का, षष्ठ भाव कटि का, सप्तम भाव वस्ति का अष्टम भाव गुप्ताङ्ग का, नवम भाव उरु का, दशम भाव जानु का, एकादश भाव जंघाओं का तथा द्वादश भाव पैरों का प्रतिनिधित्व कारता है। ज्योतिष शास्त्र के अनुसार मूत्र रोगों से सम्बन्धित भाव सप्तम एवं अष्टम हैं। सप्तम भाव मानव शरीर में बस्ति, मूत्राशय तथा गर्भाशय के उपरी भाग का प्रतिनिधित्व करता है तथा अष्टम भाव गर्भाशय जननेन्द्रिय एवं गुदा का प्रतिनिधित्व करता है। सप्म भाव से प्रमेह, मधुमेह प्रदर उपदंश, पथरी, गर्भाशय के रोग तथा बस्ति में होने वाले रोगों का विचार किया जाता है तथा अष्टम भाव से गुप्त रोग वीर्य विकार, अर्श, भगन्दर, उपदंश तथा संसर्ग जन्य रोगों, वृषण रोग तथा मूत्रकृच्छ रोग का विचार किया जाता है।

मूत्र रोगों से सम्बन्धित नक्षत्र - ज्योतिष शास्त्र के अनुसार राशि एवं भावों के समान सत्ताईस नक्षत्र भी मानव शरीर के विधि अंगों का प्रतिनिधित्व करते है। होरागन्थों के अनुसार सत्तईस नक्षत्रों में पूर्वाषाढ़ा तथा श्रवण ये दो नक्षत्र मूत्र रोगों से सम्बन्धित है। पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र से प्रमेह, धातुक्षय, दुर्बलता, तथा अन्य गुप्तरोगों का विचार किया जाता है तथा श्रवण नक्षत्र से अतिसार विचूषिका, मूत्रकृच्छ आदि रोगों का विचार किया जाता है।

मूत्र रोगों से सम्बन्धित ग्रह -

पिछली इकाई में आप पढ़ चुके हैं कि ज्योतिष शास्त्र के अनुसार रोगों का विचार षष्ठ, षष्ठ भाव में स्थित ग्रह, षष्ठ भाव से सम्बन्धित ग्रह, अष्टम एवं व्यय भाव से, के प्रतिनिध ग्रह, लग्न से सम्बन्धित ग्रह, क्रूर षष्ठ्यंश में स्थित ग्रह तथा निर्बल ग्रह इन सब से किया जाता है। ये वो सभी कारण हैं जो ग्रहा को रोगकारक बनाते है। ज्योतिष शास्त्र के अनुसार सात ग्रहों में शुक्र का सम्बन्ध मूत्र रोगों से

होता है। इसके अतिरिक्त चन्द्रमा भी जलीय ग्रह है, अतः मूत्र का सम्बन्ध जल से होने के कारण चन्द्र से भी मूत्र रोगों का विचार किया जाता है।

शुक्र - शुक्र नैसर्गिक रूप से शुभ ग्रह है। शुक्र दैत्य गुरु, ब्राह्मण वर्ण, राजस प्रकृति, स्त्री ग्रह है। यह जल तत्त्व है। इसका रंग मंत्रेश्वर ने दूर्वा (दूब) के समान कहा है। शरीरस्थ सप्त धातुओं में यह वीर्य का कारक है। संसार की जितनी आमोद-प्रमोद, भोग विलास की वस्तुएँ तथा कलाएँ हैं उन सबका यह ग्रह कारक ग्रह है। शुक्र की स्वराशि वृषभ और तुला है। मीन राशि के 27 अंश पर यह परमोच्च और कन्या के इतने ही अंशों पर परम नीच स्थिति में होता है। यह बुध, शनि को मित्र; सूर्य, चन्द्र को शत्रु और मंगल-गुरु को सम मानता है। वृषभ, मिथुन, कन्या, तुला, मकर, कुम्भ लग्न वालों को शुभ फलदायक है। शरीर में यह जननेद्रिय, शुक्राणु, नेत्र, कपोल, चिबुक, स्वर, रस, गर्भाशय एवं संवेग शक्ति को प्रभावित करता है। इसके बली होने पर शरीर सुडौल होता है, मनुष्य की काम शक्ति बलवान होती है तथा वीर्य पुष्ट होता है। शुक्र का सम्बन्ध यदि षष्ठ, अष्टमादि रोगकारक भाववों से हा तो यह पाण्डुरोग, श्लेष्मरोग (कफविकार), वातरोग, नेत्ररोग, तन्द्रा (सुस्ती), श्रम (थकावट), गुप्तरोग (योनि, लिंग, गर्भाशय, डिम्बग्रन्थियों, डिम्बप्रणालियों, शक्र - (Seman के रोग), मूत्रकृच्छु (Dysuria), कामरोग = यौनरोग (Sehual diseases), स्त्रीकष्ट या स्त्रियों के संसर्ग से होने वाले कष्ट, कृषिहानि, देहकान्ति की हानि, शोफ (शरीर में पानी भरकर सूजन आ जाना), योगिनी, यक्षी, मातृगण इनके कोप से उत्पन्न कष्ट, मित्र-बिछोह जन्य कष्टादि को सूचित करता है।

चन्द्र - ज्योतिष शास्त्र मेंचन्द्र से भी मूत्र रोगों का विचार किया जाता है। चन्द्रमा का शरीर स्थूल, युवा, कृश, श्वेत वर्ण, काले केश, सुन्दर नेत्र, रक्त की प्रधानता, जल तत्त्व, मृदुवाणी शरीर से भी मृदु (कोमल) है। मानसिक स्थिति का विचार करने के लिये चन्द्र को देखा जाता है। चन्द्रमा मन और माता का प्रमुख रूप से कारक और स्त्री ग्रह है। हर जलीय पदार्थ का विचार चन्द्रमा से किया जाता है। भारतीय ज्योतिष में इसीलिये चन्द्रमा को लग्न के समान ही महत्त्व है। मनुष्य भौतिक शरीर, मन और आत्मा का समुच्चय है। लग्न से शरीर, चन्द्रमा से मन और सूर्य से आत्मा (आत्मिक बल) का विचार किया जाता है। चन्द्रमा के नक्षत्र के आधार पर ही राशि का नाम तथा विंशोत्तरी दशा का विचार किया जाता है। यह व्यक्ति के (पुरुष के वाम तथा स्त्री के दक्षिण) नेत्र, स्तन, वक्ष, फेफड़ा, मन, मस्तिष्क, उदर, मूत्राशय, रक्त, रस-धातु, शारीरिक पुष्टि एवं कफ को प्रभावित करता है। इसके बली होने पर शरीर में रक्तसंचार ठीक बना रहता है, आरोग्य वृद्धि होती है तथा मनोबल उन्नत रहता है। चन्द्र के दोष से उत्पन्न होने वाले दोष निम्नलिखित है - निदा की अधिकता, आलस्य की अधिकता, कफजन्य रोग (खाँसी, श्वास, जुकामनिमोनियां आदि), अतिसार (दस्त-पेचिश आदि), फाड़े-फंसी होना, शीतज्वर (मलेरिया, बुखार, सींगवाले पशुओं से कष्ट, जलचर प्राणियों से होने वाले कष्ट, अग्निमांद्य (क्लेचमचेपं, प्दकपहमेजपवद), कृशता (शरीर का दुबला होना), स्त्रियों को या स्त्रियों से होने वाले कष्ट या रोग, कामला-पाण्डु (दिमउप, रंनदकपबम), चित्त की अशान्ति (चंचलता एवं मानसिक रोग), रक्तविकार (रक्ताल्पता,

हीमोग्लोबिन की कमी, लोहे की कमी, रक्तहीनता आदि), जल से भय लगना, बालग्रहों के विकार (पूतना आदि), दर्गादि देवियों द्वारा उत्पन्न रोग, किन्नरों एवं यक्षों से कष्ट, सो से भय, धर्मजन्य तथा दैवजन्य व्याधियाँ- ये सब चन्द्रमा के रोग हैं।

मूत्र से सम्बन्धित रोगों के योग -

इस इकाई में अभी तक आपने पढ़ा की मूत्र रोगों का विचार सप्तम एवं अष्टम भाव से, तुला तथा वृश्चिक राशि से, पूर्वाषाढ़ा तथा श्रवण नक्षत्र एवं शुक्र तथा चन्द्र से किया जाता है। इन ग्रह, राशि एवं भावों के सम्बन्ध से उत्पन्न योग इस प्रकार है –

गुर्द के रोग -

यद्यपि गुर्दे में दर्द, सूजन, पथरी आदि गुर्दे के रोग हैं। परन्तु मूत्रकृच्छू भी गुर्दे की खराबी से होता है। अत: मूत्ररोगों में गुर्दे से सम्बन्धित रोगें का का विचार किया जाता है। ये रोग निम्नलिखित ग्रहयोगों के कारण होते हैं -

1- धनु या मीन राशि में बुध हो तथा उस पर रवि की दृष्टि हो तो पथरी होती है।
2- चन्द्रमा जलचर राशि में हो, उस राशि का स्वामी षष्ठ स्थान में हो और उस पर जलीय ग्रहों की दृष्टि हो तो मूत्रकृच्छ होता है।
3- पाप ग्रह षष्ठ या सप्तम में हो तो मूत्रकृच्छ होता है।।
4- क्रूर षष्ठ्यंश में, षष्ठ, सप्तम या अष्टम स्थान में अनेक पापग्रह हों तो जातक मूत्रकृच्छ से पीडित होता है।
5- सप्तम स्थान में जलीय ग्रह हो तथा सप्तमेश भी जलीय ग्रह हो तो मूत्रकृच्छ होता है।
6- पंचम स्थान में पापग्रह होने पर मूत्रकृच्छ होता है ।
7- सप्तम स्थान में जलीय राशि हो, लग्न में जलग्रह हो या उस पर बलवाट जलीय ग्रह की दृष्टि हो तो मूत्रकृच्छ होता है
8- सप्तम स्थान में जलीय राशि में शनि, सूर्य, मङ्गल एवं राहु हों तो मूत्रकृच्छ होता है।
9- अष्टम स्थान में बुध हो तो मूत्रकृच्छ होता है।
10- षष्ठेश या सप्तमेश व्ययेश के साथ हो और उस पर शनि की दृष्टि हो तो मूत्रकृच्छ होता है
11- सप्तम स्थान में अनेक पापग्रहहों तथा सप्तमेश षष्ठ स्थान में हो तो मूत्रकृच्छ होता है।
12- सप्तम स्थान में पापग्रहों से युत दृष्ट मंगल हो तो मूत्रकृच्छ होता है।
13- सप्तम स्थान में शनि हो और उस पर राहु की दृष्टि हो तो मूत्रकृच्छ होता है।

प्रमेह आदि मूत्राशय के रोग -

प्रमेह या मधुमेह वस्ति या मूत्राशय से सम्ब रोगों में प्रमुख है। इस रोग में मूत्र में शक्कर की मात्रा बढ़ जाती है। यह रोग शरीर को क्षीण कर देता है। यह रोग निम्नलिखित ग्रहयोगों के कारण

1- धनु या मीन राशि में स्थित बुध पर सूर्य की दृष्टि हो मधुमेह होता है।

2- शनि, सूर्य एवं शुक्र-ये तीनों पंचम स्थान में हों।

3- लग्न में सूर्य तथा सप्तम में मंगल हो।

4- दशम स्थान में स्थित मंगल शनि से युत या दृष्ट हो।

5- षष्ठ स्थान में मंगल हो तथा षष्ठेश पाप ग्रह के साथ हो।

6- अष्टम भाव पर मंगल की दृष्टि हो तो मूत्रशय में रोग होता है।

नपुंसकता के योग -

सन्तानोत्पादन की शक्ति के अभाव को नपुंसकता कहते हैं। इस शक्ति से हीन पुरुष नपुंसक तथा स्त्री बन्ध्या कहलाती है। नपुंसकता भी दो प्रकार की होती है-१-जन्मजात नपुंसकता एवं २जन्म के बाद में होने वाली नपुंसकता। आचार्य वराहमिहिर ने बृहज्जातक नामक ग्रन्थ में जन्मजात नपुंसकता के निम्नलिखित छः योग बतलाये हैं। इन्हें 'षट्क्लीव योग' कहते हैं। इन योगों का विचार आधान-कुण्डली एवं जन्मकुण्डली दोनों से किया जाता है। व्यक्ति के गर्भाधान या जन्म के समय कुण्डली में निम्नलिखित योगों में से कोई एक योग हो वह जन्मजात नपुंसक होता है। ये योग इस प्रकार हैं -

अन्योऽन्यं यदि पश्यतः शशिरवी यद्यार्किसौम्यावपि
वक्रो वा समगं दिनेशसमे चन्द्रोदयौ चेत्स्थितौ।
युग्मौजर्भगतावपीन्दुशशिजौ भूम्यात्मजेनेक्षितौ
पुम्भागे सितलग्नशीतकिरणाः स्यु क्लीबयोगाश्च षट्।

1. विषम राशि में स्थित सूर्य एवं चन्द्रमा एक दूसरे को देखते हों।
2. विषम राशि में स्थित शनि एवं बुध एक दूसरे को देखते हों।
3. विषम राशिगत मंगल सम राशिगत सूर्य को देखता हो
4. विषम राशिगत मंगल विषम राशिगत लग्न एवं चन्द्रमा को देखता हो।
5. विषमराशि में बुध तथा समराशि में चन्द्रमा हो और दोनों को मंगल देखता हो।
6. विषम राशि तथा विषम राशि के नवांश में लग्न, चन्द्रमा एवं बुध हों तथा उन पर शुक्र एवं शनि की दृष्टि हो।

उक्त छः योगों के अलावा निम्नलिखित योगों में गर्भाधान होने पर नपुंसक व्यक्ति का जन्म होता है-

1. मिथुन या कन्या राशि में लग्न में षष्ठेश हो, लग्नेश भी बुध की राशि में हो तथा इनका शनि एवं मंगल से योग हो।

2. विषम राशि में स्थित चन्द्रमा एवं शनि एक दूसरे को देखते हों।

जन्म के बाद नपुंसक होने के योग - कुछ जातक जन्म के बाद किसि कारण से नपुंसक हो जाते है। इस प्रकार की नपुंकता के निम्न लिखित योग हैं-

1. शुक्र के साथ शनि दशम स्थान में हो ।
2. शुक्र से पष्ठ या व्यय स्थान में शनि हो
3. सूर्य, बुध एवं शनि एक साथ हों
4. सिंह राशि में स्थित बुध पर मंगल की दृष्टि हो।
5. मकर राशि में शुक्र हो।
6. पापग्रह सप्तमेश होकर नवम स्थान में हो।
7. नवमेश अष्टम स्थान में हो।
8. व्ययेश लग्न में हो।
9. कारकांश में केतु हो और उस पर बुध एवं शनि की दृष्टि हो।
10. अष्टमस्थान में शुक्र एवं शनि हो तथा उन पर शुभग्रह की दृष्टि न हो ।
11. पष्ठ या द्वादश स्थान में नीच राशि गत शनि हो ।
12. मिथुन, कन्या, मकर या कुम्भ राशि में लग्न में बुध हो और उस समय पर शनि की दृष्टि हो।
13. शुक्र के साथ शनि तृतीय या लाभ स्थान में हो।
14. शुक्र से द्वादश स्थान में शत्रुराशि में शनि हो।।
15. षष्ठेश लग्न में बुध की राशि में तथा लग्नेश भी बुध की राशि में हो तो इस योग में उत्पन्प पुरुष तथा उसकी पत्नी दोनों नपुंसक होते हैं ।

गुप्त रोगों के योग

जननेन्द्रिय से सम्बन्धित रोग गुप्त रोग कहलाते हैं। इन रोगों के योग निम्नलिखित हैं -

1. अष्टम स्थान में धनु राशि हो।
2. द्वादश स्थान में गुरु हो और उसे शुभ ग्रह न देखता हो।
3. कर्क, वृश्चिक या कुम्भ के नवांश में शनि के साथ चन्द्रमा हो।
4. अष्टमेश की राशि में पापग्रह के साथ चन्द्रमा हो तथा अष्टमेश पर राहु को दृष्टि हो।
5. अष्टम स्थान में तीन या चार पाप ग्रह हों।
6. अष्टम स्थान में पाप ग्रह हों तथा उस पर पाप ग्रह की दृष्टि हो ।

7. अष्टम स्थान में नीच राशि गत ग्रह हो।

वीर्य रोग –

स्वप्नदोष, शीघ्रपतन एवं धातुक्षय आदि वीर्यरोग हैं। इन रोगों के योग निम्नलिखित हैं -

1. शनि, मंगल एवं सूर्य क्रमशः अष्टम, पष्ठ एवं द्वितीय स्थान में हो तो स्वप्नदोष होता है।
2. राहु, शुक्र या शनि उच्चराशि में हो, कर्क में सूर्य तथा मेष में चन्द्रमा हो तो शीघ्रपतन होता है
3. लग्न में चन्द्रमा हो तथा गुरु एवं शनि पंचम में हो तो शीघ्रपतन होता है।
4. कन्या लग्न पर बुध एवं शनि की दृष्टि हो तथा शनि की राशि में शुक्र हो तो शीघ्रपतन होता है।
5. लग्न में विषम राशि में शुक्र हो तो वीर्य विकार होता है।
6. चतुर्थस्थान में चन्द्रमा एवं शनि हो तो वीर्य विकार होता है

लघूत्तरीय प्रश्न -

1. मूत्र रोगों से सम्बन्धित ग्रह, राशियां तथा भाव कौन कौन से हैं।
2. चन्द्र का मूत्र रोगों से सम्बन्धित होने का कारण क्या
3. मंगल के मित्र, सम तथा शत्रु कौन है?
4. अष्टम स्थान में पाप ग्रह हों तथा उस पर पाप ग्रह की दृष्टि हो तो कौन सा रोग होता है?
5. लिंग कट जाने का क्या योग है?

5.3.3 उपखण्ड तीन - रक्त विकार

रक्त एक शारीरिक तरल (द्रव) है जो रक्त वाहिनियों के अन्दर विभिन्न अंगों में लगातार बहता रहता है। रक्त वाहिनियों में प्रवाहित होने वाला यह गाढ़ा, कुछ चिपचिपा, लाल रंग का द्रव्य, एक जीवित ऊतक है। यह प्लाजमा और रक्त कणों से मिल कर बनता है। प्लाजमा वह निर्जीव तरल माध्यम है जिसमें रक्त कण तैरते रहते हैं। प्लाजमा के सहारे ही ये कण सारे शरीर में पहुंच पाते हैं और वह प्लाजमा ही है जो आंतों से शोषित पोषक तत्वों को शरीर के विभिन्न भागों तक पहुंचाता है और पाचन क्रिया के बाद बने हानिकारक पदार्थों को उत्सर्जी अंगो तक ले जा कर उन्हें फिर साफ होने का मौका देता है। रक्तकण तीन प्रकार के होते हैं, लाल रक्त कणिका, श्वेत रक्त कणिका और प्लैटलैट्स। लाल रक्त कणिका श्वसन अंगों से आक्सीजन ले कर सारे शरीर में पहुंचाने का और कार्बन डाईआक्साईड को शरीर से श्वसन अंगों तक ले जाने का काम करता ह। इनकी कमी से रक्ताल्पता (अनिमिया) का रोग हो जाता है। श्वेत रक्त कणिका हानीकारक तत्वों तथा बिमारी पैदा करने वाले जिवाणुओं से शरीर की रक्षा करते हैं। प्लेटलेट्स रक्त वाहिनियों की

सुरक्षा तथा खून बनाने में सहायक होते हैं। मनुष्य-शरीर में करीब पाँच लिटर रक्त विद्यमान रहता है। लाल रक्त कणिका की आयु कुछ दिनों से लेकर १२० दिनों तक की होती हैं। इसके बाद इसकी कोशिकाएं तिल्ली में टूटती रहती हैं। परन्तु इसके साथ-साथ अस्थि मज्जा (बोन मैरो) में इसका उत्पादन भी होता रहता है। यह बनने और टूटने की क्रिया एक निश्चित अनुपात में होती रहती है, जिससे शरीर में खून की कमी नहीं हो पाती। मनुष्यों में रक्त ही सबसे आसानी से प्रत्यारोपित किया जा सकता है।

कार्य - रक्त का कार्य ऊतकों को आक्सीजन पहुँचाना, पोषक तत्वों को ले जाना जैसे ग्लूकोस, अमीनो अम्ल और वसा अम्ल (रक्त में घुलना या प्लाज्मा प्रोटीन से जुडना जैसे- रक्त लिपिड), उत्सर्जी पदार्थों को बाहर करना जैसे- यूरिया कार्बन, डाई आक्साइड, लैक्टिक अम्ल आदि, प्रतिरक्षात्मक कार्य, संदेशवाहक का कार्य करना, इसके अन्तर्गत हार्मोन्स आदि के संदेश देना, शरीर पी. एच नियंत्रित करना, शरीर का ताप नियंत्रित करना।

रक्त के रोग – रक्त रोग निम्नलिखित हैं

एनीमिया - एनीमिया एक अनुवांशिक रक्त रोग है, जिसमें लाल रक्त कोशिकाओं में सामान्य हीमोग्लोबिन के स्थान पर एच.बी.एस. हीमोग्लोबिन होने के कारण लाल रक्त कोशिकाएं टूटने लगती है, जिसके कारण हल्का पीलिया होने से शरीर पीला दिखाई देता है। रक्त गाढ़ा होने के कारण स्थानीय तौर पर छोटे-छोटे थक्के बनते रहते है जिससे शरीर के विभिन्न अंग प्रभावित होते है।

थैलेसीमिया - थैलेसीमिया एक अनुवांशिक रोग है. इस रोग में लाल रक्त कण (त्मक ठसववक ब्मससे) (ठब) नहीं बन पाते हैं और जो बन पाते है वो कुछ समय तक ही रहते है. इस रोग से पीड़ित व्यक्ति को बार-बार खून चढ़ाना पड़ता है. हीमोग्लोबिन और लाल रक्त कणों की कमी होने के कारण रोगी को एनीमिया हो जाता है और बहुत जल्द थकान भी होने लगती है।

रक्ताल्पता - रक्ताल्पता या ड्रीपेनोसाइटोसिस एक आनुवंशिक रक्त विकार है जो ऐसी लाल रक्त कोशिकाओं के द्वारा चरितार्थ होता है जिनका आकार असामान्य, कठोर तथा हंसिया के समान होता है। यह क्रिया कोशिकाओं के लचीलेपन को घटाती है जिससे विभिन्न जटिलताओं का जोखिम उभरता है। नष्ट होता है तो उसे आंतरिक रक्तस्राव कहते हैं।

पैतृक रक्तस्राव या हीमोफिलिया (भंमउवचीपसपं) - पैतृक रक्तस्राव या हीमोफिलिया एक आनुवंशिक रोग है जिसमें शरीर के बाहर बहता हुआ रक्त जमता नहीं है। इसके कारण चोट या दुर्घटना में यह जानलेवा साबित होती है क्योंकि रक्त का बहना जल्द ही बंद नहीं होता। इस रोग का कारण एक रक्त प्रोटीन की कमी होती है, जिसे श्क्लॉटिंग फैक्टर कहा जाता है। इस फैक्टर की विशेषता यह है कि यह बहते हुए रक्त के थक्के जमाकर उसका बहना रोकता है।

श्वेतरक्तता या ल्यूकीमिया - कैंसर का यह रूप हमारे शरीर में श्वेत रक्त सेल्स (ठब) को प्रभावित करता है। श्वेत रक्त सेल्स बहुत महत्वपूर्ण हैं क्योंकि वे इन्फेक्शन से लड़ती हैं और सेल्स का उत्पादन करते हैं जो आपकी बोने मेरो को ब्लाक करते हैं। और अन्य लाभकारी ब्लड सेल्स को

बनाने से रोकते हैं जो स्वस्थ रक्त परिसंचरण और एक संतुलित प्रतिरक्षा प्रणाली के लिए महत्वपूर्ण हैं।

रक्तचाप - रक्तचाप रक्तवाहिनियों में बहते रक्त द्वारा वाहिनियों की दीवारों पर द्वारा डाले गये दबाव और इंद्रियों तक ले जाते हैं। हृदय, रक्त को धमनियों में पंप करके धमनियों में रक्त प्रवाह को विनियमित करता है और इसपर लगने वाले दबाव को ही रक्तचाप कहते हैं। यह रोग दो प्रकार का है। उच्च रक्तचाप तथा निम्न रक्त चाप। १३०/८० से ऊपर का रक्तचाप, उच्च रक्तचाप या हाइपरटेंशन कहलाता है तथा 80 से कम रक्तचाप निम्न रक्तचाप है।

रिक्त स्थान की पूर्ति

1- एनीमिया एक ..... रक्त रोग है।

2- श्वेत रक्त सेल्स बहुत महत्वपूर्ण हैं क्योंकि वे ..... से लड़ती हैं।

3- .....वह निर्जीव तरल माध्यम है।

4- प्लेटलेट्स रक्त वाहिनियों की सुरक्षा तथा .....बनाने में सहायक होते हैं।

5- रक्तवाहिनियों में बहते रक्त द्वारा वाहिनियों की दीवारों पर द्वारा डाले गये दबाव को..... कहते हैं।

5.3.4 उपखण्ड चार –

रक्त रोगों से सम्बन्धित भाव एवं राशि गह एवं योग

आप पिछली इकाईयों में पढ़ चुके है कि बारह राशियां मानव शरीर के विविध अंगों का प्रतिनिधित्व करती है। रक्त मानव के सम्पूर्ण शरीर में होता है, अत: रक्त से सम्बन्धित रोगों का विचार सामान्य रूप से सभी बारह भावों से किया जाता है। रक्त का सम्बन्ध हृदय से हैं तथा रक्त को सम्पूर्ण शरीर में पहुंचाने का कार्य हृदय का है अतः रक्त से सम्बन्धित रोगों का विचार करते समय चतुर्थ भाव का भी विचार करना आवश्य है। इसी प्रकार राशियों का विचार करते समय द्वादश राशियां मानव शरीर के विविध अंगों का प्रतिनिधित्व करती है। कर्क राशि मानव शरीर में हृदय से सम्बन्धित होने के कारण रक्त से सम्बन्धित रोगों का विचार कर्क राशि से किया जाता है।

रक्त विकार से सम्बन्धित ग्रह -

ज्योतिष शास्त्र के अनुसार मानव शरीर में रक्त से सम्बन्धित ग्रह मंगल है। इसकी जाति क्षत्रिय और युवावस्था बताई गई है। यह शक्ति का प्रतीक है। नैसर्गिक पाप ग्रह माना गया है। इसका रंग लाल है। अग्नि तत्त्व का ग्रह है। वीरता, बल, शस्त्र, युद्ध सम्बन्धी विषय वस्तुओं का विचार मंगल से किया जाता है। यह सूर्य, चन्द्र, गुरु को मित्र, शुक्र, शनि को सम और बुध को शत्रु मानता है। इसकी अपनी राशि मेष और वृश्चिक है। मकर के 28 अंश पर परमोच्च और कर्क के 28 अश पर परम नीच होता है। दशम भाव में इसकी स्थिति उत्तम मानी गई है। दशम भाव में यह दिग्बली होता है। मेष, कर्क, सिंह, और धनु लग्न वालों को यह ग्रह शुभ भावों का स्वामी होने से शुभ फलदायक

होता है। मंगल जहाँ बैठता है, वहाँ से चौथे, सातवें, आठवें स्थान पर दृष्टि देता है। यह शरीर में कपाल, कान, स्नायु, जननेन्द्रिय, मज्जा, पुट्ठों को पुष्टता, शारीरिक शक्ति, दाह, शोथ, धैर्य एवं पित्त को प्रभावित करता है। इसके बली होने पर व्यक्ति के शरीर में हड्डियां मजबूत होती हैं, प्रतिरोध शक्ति बढ़ती है तथा साहस एवं धैर्य की वृद्धि होती है। मंगल से होने वाले रोग निम्नलिखित है - तृष्णा = बहुत अधिक प्यास लगना, असृक्कोप-रक्तप्रकोप, रक्तपित्त, नाक-मुख आदि से खून गिरना, पित्तज्वर-पित्त के प्रकोप से होने वाला बुखार, अनलपीड़ा-अग्नि, बिजली आदि तथा घाव लगना, कुष्ठ - अनेक प्रकार के कुष्ठरोग। अक्षिरोग - नेत्रों में होने वाली सभी बीमारियाँ। गुल्म - पेटगैस, बायगोला तथा ट्यूमर आदि, अपस्मार - मृगी के दौरे, मज्जाविहति - अस्थियों के भीतर मज्जा होती है, वह रक्त के निर्माण में सहयोग करती है। मज्जा की कमी से रक्त-निर्माण भी कम होता है, परुषता - शरीर में कठोरता आ जाती है तथा ऊतकों का लचीलापन समाप्त हो जाता है, पामिका - खुजली, अकौंता, छाजन, एक्जिमा आदि, देहभङ्गता - शरीर के अंगों का कटना, फटना तथा टूट जाना देहभंग कहलाता है, भूप (शासक वर्ग) - पुलिस आदि से कष्ट, शत्रुजन्य पीड़ा, तेय पीड़ा = चोरों से भय, भाइयों, पुत्रों तथा वैरियों से लड़ाई छिड़ना, राक्षसों (आतंकवादियों) से पीड़ा, घोर ग्रह (दुष्टात्माओं) से पीड़ा - ये सब मंगल से उत्पन्न होते है।

आयुर्वेद के अनुसार रक्तचाप, रक्तापात, रक्ताल्पता आदि अनेक प्रकार क रक्त के विकार होते। इन सब रोगा का प्रतिनिधि ग्रह मंगल होता है। अत: यदि मंगल पापग्रहों से दुष्ट यता निर्बल हो या अनिष्ट स्थान में स्थित हो तो रक्तविकार होते हैं। रक्तविकारवाले रोग निम्नलिखित ग्रहयोगों के प्रभाववश होते हैं-

1- लग्न, षष्ठ, सप्तम या व्यय भाव में शनि के साथ मंगल हो और उस पर सूर्य की दृष्टि हो।

2- मंगल नीचराशिगत, अस्तंगत या शत्रराशि गत हो।

3- द्वितीय या अष्टम स्थान में गुलिक के साथ मंगल हो।

4- द्वितीयेश मंगल से दृष्ट या युत हो।

5- द्वितीय स्थान में स्थित मंगल पर सूर्य की दृष्टि हो।

6- लग्न में शनि हो तथा षष्ठ या दशम स्थान में स्थित चन्द्रमा पर मंगल की दृष्टि हो।

रक्तपित के योग -

रक्तपित्त के रोग में पित्त दूषित होकर रक्तस्राव कराता है। नाक से खून बहना, मल या मूत्र के साथ खून बहना - इस रोग का लक्षण है। इस रोग का विचार भी मुख्य रूप से मंगल से किया जाता है। इस रोग के योग इस प्रकार हैं -

1. मंगल सप्तम स्थान में हो।
2. मंगल नीच राशि में हो।
3. षष्ट स्थान में पापांशगत मंगल पर पापग्रहों की दृष्टि हो।

4. चन्द्रमा की दशा में मंगल की अन्तर्दशा हो।
5. षष्ठ स्थान में मंगल हो तथा षष्ठेश पापग्रहों से युत-दृष्ट हो।

फोड़ा, फुन्सी, छाले एवं घाव होने के योग –

फोड़ा, फुन्सी, मुंह के छाले एवं घाव आदि भी रक्त के विकार है। जब रक्त किसि कारण दूषित हो जाता है, ता वह फोड़े फुन्सी, छाले आदि के माध्यम से शरीर से बाहर निकलता है। ज्योतिषशास्त्र के अनुसार निम्नलिखित योगों में उत्पन्न होने वाले व्यक्ति के शरीर में फोड़ा, फुन्सी, छाले या घाव होते हैं -

1. लग्न, सप्तम या अष्टम भाव में स्थित सूर्य पर मंगल की दृष्टि हो तो फोड़ा हाता है।
2. लग्न, षष्ठ, सप्तम या द्वादश भाव में स्थित गुलिक एवं मंगल को सूर्य-देखता हो तो फोड़ा होता है।
3. लग्न, द्वितीय, सप्तम या अष्टम स्थान में स्थित मंगल पर सूर्य की दृष्टि हो तो फोड़ा होता
4. वृश्चिक राशि में स्थित मंगल पर गुरु या शुक्र की दृष्टि न हो तो फुसियाँ होती हैं।
5. सप्तम स्थान में केतु एवं मंगल हो तो फुसियां होती हैं
6. लग्नेश एवं मंगल त्रिक स्थान में हों तो शरीर में गांठ तथा उसके फूटने से घाव होते हैं।
7. षष्ठेश चन्द्रमा के साथ लग्न या अष्टम में हो तो मुंह में छाले होते हैं।
8. षष्ठेश मंगल के साथ लग्न या अष्टम में हो तो गले में छाले या घाव होते हैं।
9. षष्ठेश बुध के साथ लग्न या अष्टम में हो तो हृदय या वक्ष पर घाव होता है।
10. षष्ठेश गुरु के साथ लग्न या अष्टम में हो तो नाभि के पास घाव होता है।
11. षष्ठेश शुक्र के साथ लग्न या अष्टम में हो तो आँख में गुहेरी या रोहे होते है।
12. षष्ठेश शनि के साथ लग्न या अष्टम में हो तो पैरों में छाले या घाव होते हैं।
13. षष्ठेश राहु या केतु के साथ लग्न या अष्टम में हो तो होठों पर छाले या घाव होते हैं।
14. व्यय स्थान में चन्द्रमा एवं गुरु तथा त्रिक स्थान में बुध हो तो गुदा में घाव होते हैं।

बहुविकल्पीय प्रश्न -

1. रक्त से सम्बन्धित रोगों का विचार करते समय किस भाव का भी विचार करना आवश्

(क) पंचम (ख) चतुर्थ

(ग) नवम (ग) एकादश

2- निम्नलिखित में कौन सी राशि मानव शरीर में हृदय से सम्बन्धित है -

(क) 1 (ख) 2

(ग) 3 (ग) 4

3- ज्योतिष शास्त्र के अनुसार मानव शरीर में रक्त से सम्बन्धित ग्रह है –

(क) सूर्य (ख) चन्द

(ग) मंगल (ग) बुध

4. रक्तस्राव होता है यदि -

(क) मंगल सप्तम स्थान में हो। (ख) चन्द सप्तम स्थान में हो।

(ग) शनि सप्तम स्थान में हो। (ग) बुध सप्तम स्थान में हो।

5. निम्नलिखित में रत्त का विकार नहीं है -

(क) रक्तचाप (ख) रक्तापात

(ग) कर्करोग (ग) रक्ताल्पता

5.4 सारांश

आपने इस इकाई में विस्तार से पढा कि मूत्र वे पदार्थ या अपशिष्ट पदार्थ हैं जो शरीर में खनिजों और अन्य पदार्थों के संतुलन को बनाए रखने के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है। मूत्र तंत्र में वृक्क, मूत्रकवाहिनी, मूत्राशय तथा मूत्रमार्ग होते हैं। मूत्र मार्ग से सम्बन्धित अंगों में विकार उत्पन्न होना रोग विकार है। मूत्रतंत्र के उपघात, मूत्र अश्मरी रोग, मूत्रजनन तंत्र के अर्बुद, अश्मरी रोग, प्रॉस्टेट ग्रंथि का सुदम्य बढ़ना, प्रॉस्टेट ग्रंथि का कर्कट, मूत्राशय ग्रीवा संकोच, नपुंसकता, वीर्यविकार आदि मूत्र से सम्बन्धित प्रमुख रोग है। जन्मकुण्डली में मूत्र से सम्बन्धित रोगों का विचार सप्तम एवं अष्टम भाव से किया जाता है। काल पुरूष के अंगों में मूत्र रोग से सम्बन्धित राशि तुला एवं वृश्चिक, मूत्र रोगों से सम्बन्धित भाव सप्तम एवं अष्टम तथा पूर्वाषाढ़ा तथा श्रवण ये दो नक्षत्र मूत्र रोगों से सम्बन्धित हैं। ज्योतिष शास्त्र में रोगों का विचार षष्ठ, षष्ठ भाव में स्थित ग्रह, षष्ठ भाव से सम्बन्धित ग्रह, अष्टम एवं व्यय भाव से, के प्रतिनिध ग्रह, लग्न से सम्बन्धित ग्रह, क्रूर षष्ठ्यंश में स्थित ग्रह तथा निर्बल ग्रह इन सब से किया जाता है। ग्रहों में शुक्र का सम्बन्ध मूत्र रोगों से होता है। इसके अतिरिक्त चन्द्रमा भी जलीय ग्रह है, अतः मूत्र का सम्बन्ध जल से होने के कारण चन्द्र से भी मूत्र रोगों का विचार किया जाता है। ज्योतिष शास्त्र के ग्रन्थों में में गुर्द के रोग, प्रमेह आदि मूत्राशय के रोग, उपदंश, शूक आदि लिङ्ग रोग, नपुंसकता, गुप्त रोगों के योग, वीर्य रोग इन सभी रोगों के योग प्राप्त होते हैं, जिनका अध्ययन विस्तार से आपने इस इकाई में किया।रक्त एक शारीरिक तरल (द्रव) है जो रक्त वाहिनियों के अन्दर विभिन्न अंगों में लगातार बहता रहता है। एनीमिया, थैलेसीमिया, रक्ताल्पता, आंतरिक रक्तस्राव , पैतृक रक्तस्राव या हीमोफिलिया, श्वेतरक्तता या ल्यूकीमिया, रक्तचाप आदि रक्त के प्रमुख रोग है। रक्त मानव के सम्पूर्ण शरीर में होता है, अतः रक्त से सम्बन्धित रोगों का विचार सामान्य रूप से सभी बारह भावों से किया जाता है। रक्त का सम्बन्ध हृदय से हैं अत: रक्त से सम्बन्धित रोगों का विचार करते समय चतुर्थ भाव का भी विचार करना आवश्य है। इसी प्रकार राशियों का विचार करते समय द्वादश राशियां मानव शरीर के विविध अंगों का प्रतिनिधित्व करती है। कर्क राशि मानव शरीर में हृदय से सम्बन्धित होने के

कारण रक्त से सम्बन्धित रोगों का विचार कर्क राशि से किया जाता है। ग्रहों में मानव शरीर में रक्त से सम्बन्धित ग्रह मंगल है। ज्योतिषीय ग्रन्थों में रक्तचाप, रक्तापात, रक्ताल्पता, रक्तपित, फोड़ा, फुन्सी, छाले एवं घाव आदि रक्त के रोगों के योग प्राप्त होते हैं जिनके विषय में आपने विस्तार से अध्ययन इस इकाई में किया।

5.5 पारिभाषिक शब्दावली

चयापचय - बढ़ना तथा घटना

रीसायकल - पुनरावृत्ति करना

मूत्रवाहिनी - मूत्र को ले जाने वाली नली

सांद्रता - किसि विलाक में विलेय की घुली हुई निश्चित मात्रा

उपघात - प्रहार, चोट

अर्बुद - अरब , सौ करोड़

सुदम्य - जिसका आसानी से दमन किया जा सके।

देहकान्ति - शरीर की सुन्दरता

रक्तपित - एक रोग जिसमें नाक से खून बहना

5.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अति लघूत्तरीय प्रश्न

1. आरोग्य 2.मूत्र निर्माण 3. मूत्रवाहिनी 4. २०% से 25% 5. ५०

लघूत्तरीर प्रश्न

1. मंगल तथा चन्द्र ग्रह, तुला तथा वृश्चिक राशियां, सप्तम तथा अष्टम भाव।
2. बुध एवं राहु के साथ षष्ठेश लग्न में हो
3. बुध - शनि मित्र; सूर्य-चन्द्र को शत्रु और मंगल-गुरु
4. मूत्रकृच्छ रोग।
5. चन्द्र एक जलीय ग्रह है।

रिक्त स्थान की पूर्ति

1- अनुवांशिक 2. इन्फेक्शन 3. प्लाजमा 4. खून 5. रक्तचाप

बहुविकल्पीय प्रश्न -

1. (ख) 2. (ग) 3. (ग) 4. (क) 5.(ग)

5.7 सन्दर्भ ग्रन्थों की सूची

1. जातकांलकारः - श्रीगणेशदैवज्ञविरचित, डा- सुरेशचन्द्रमिश्रः, रंजन पब्लिकेशन्स 16, अन्सारी रोड, दरियागंज नई दिल्ली-110002, संशोधित संस्करण- 2009

2. जातकपारिजातः -लेखक दैवज्ञवैद्यनाथ, व्याख्याकार प. कपिलेश्वरशास्त्रो, चौखम्बा संस्कृत संस्थान वाराणसी-20041
3. ताजिकनीलकण्ठी नीलकण्ठविरचित -, केदारदतदतजोशी, मोतीलालबनारसीदास - बंगलो रोड, दिल्ली -110007
4. प्रश्नमार्गः शुकदेव चतुर्वेदी .प्रो - व्याख्याकार -, रंजन पब्लिकेशन दिल्ली, 1978
5. फलदीपिका मन्त्रेश्वरविरचित -, व्याख्याकारः गोपेशकुमार ओझा -, मोतीलालबनारसीदास बंगलो रोड, दिल्ली -110007 द्वितीय संस्करण -1975
6. बृहज्जातकम् वराहमिहिरविरचित -, भट्टोत्पलीटीकासहित पं सीतारामझा सावित्री ठाकुर प्रकाशन, रथयात्रा चौराहा वाराणसी सन् -2006।
7. बृहत्पाराशरहोराशास्त्रम् पाराशर -, पपद्मननाभ शर्मा .,चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी
8. मानसागरी श्रीमधुकान्तझा - व्याख्याकार -, चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी संस्करण - 2045
9. लघुजातकम् वराहमिहिरविरचित -, टीकाकारकमलाकान्तपाण्डेय-, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, प्रथम संस्करण -2009।
10. सारावली कल्या -णवर्माविरचित, डासुरकान्त झा ., चौखम्बा कृष्णदास अकादमी वाराणसी प्रथम संस्करण वि -.सं .2061।

5.8 साहायक उपयोगी सामग्री

1. उत्तरकालामृतम् – कालिदास, ज्योतिर्विद् जगन्नाथ भसीन, रंजन पब्लिकेष्ठान्स 16, अन्सारी रोड, दरियागंज नई दिल्ली-110002, 2009।
2. ग्रह और नक्षत्र - डा. बी.डी. अवस्थी, राजकमलप्रकाष्ठान प्राइवेट लिमिटेड, फैजबाजार, दिल्ली।
3. ज्योतिर्विज्ञानम् - श्रीधूलिपाल, सम्पूर्णानन्द संस्कृतविश्वविष्ठवविद्यालय वाराणसी - 1806। देहली -16 प्रथमसंस्करण -2005। १.१५

5.9 निबन्धात्मक प्रश्न -

1. मूत्र तंत्र एवं मूत्र से सम्बन्धिक रोगों का विस्तार से वर्णन कीजिए।
2. मूत्र रोगों से सम्बन्धित ज्योतीषीय योगों का वर्णन कीजिए।
3. रक्त रोगों कौन कौन से हैं? वर्णन कीजिए।
4. रक्त से सम्बन्धित भाव, राशि, ग्रह एवं ज्योतिषीय योगों का प्रतिपादन यथा शास्त्रकीजिए।